चन्दवरदाई कृत

[पृ]थ्वीराज रासो

[प]दमावती समय

[...पाठ, आलोचना एवं व्याख्या]

— डा. हरिहरनाथ टंडन

चन्दवरदाई कृत—

पृथ्वीराज रासो

(पद्मावती समय)

[मूल पाठ, विस्तृत आलोचना एवं टीका सहित]

M.A. (N) HINDI
KASHMIR UNIVERSITY

डा० हरिहरनाथ टण्डन

बिनोद पुस्तक मन्दिर
हॉस्पिटल रोड, आगरा

uminium ingot
f February and
il, 1980, for
d completing a
with the concern
e on the date o
No further extens
stances.

Sd/-
M. K. Sriniva
Senior General Ma

HER STRENGTH
IST SYSTEM
COUNTRY

Session of the Fifth Supre
Democratic People's Republ
72

of production but also literature and art in the hands of the people, and thus opened up a highway for the development of literature and art and made them true literature and art which serve the working masses.

Today broad sections of our working people take an active part in literary and artistic activities and enjoy them to their hearts' content. Because of their popular and revolutionary character our literature and art develop into full bloom, enjoying the boundless love of the people.

It is one of the essential advantages of the socialist system that the politico-ideological unity of the masses of the people is strengthened and the relationship of comradely cooperation between the working people develops day by day.

Elimination of the exploiting

Lal Kaul
M.A P.H.D
n Hindi
Division
niversity
(Kashmir)

चन्दवरदाई कृत—

पृथ्वीराज रासो
(पद्मावती समय)

[मूल पाठ, विस्तृत आलोचना एवं टीका सहित]

डा० हरिहरनाथ टण्डन

बिनोद पुस्तक मन्दिर
हॉस्पिटल रोड, आगरा

प्रकाशक :
विनोद पुस्तक मन्दिर,
हॉस्पिटल रोड, आगरा

संशोधित एवं परिवर्द्धित
नवीन षष्टम् संस्करण
सन् १९६४
मूल्य २.५०

मुद्रक :
कैलाश प्रिंटिंग प्रेस
डा० रांगेय राघव मार्ग
आगरा

अपनी बात

प्रस्तुत पुस्तक चन्दवरदाई के प्रसिद्ध महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' के एक सर्ग 'पद्मावती समय' पर आलोचनात्मक एवं व्याख्यात्मक दृष्टिकोण से लिखी गई है। इसमें 'पद्मावती समय' का मूलपाठ, उसकी सारगर्भित विस्तृत व्याख्या, काव्य-सौन्दर्य को उद्घाटित करने वाली टिप्पणियाँ आदि सभी आवश्यक काव्य सामग्री को सुचारु रूप से संयोजित किया गया है। आलोचनात्मक प्रश्न प्रायः 'पृथ्वीराज रासो' (सम्पूर्ण), चन्दवरदाई की काव्यशक्ति आदि से ही सम्बन्धित रहते हैं।

अपने प्रस्तुत रूप में यह पुस्तक 'पृथ्वीराज रासो' को आलोचनात्मक दृष्टि से तथा 'पद्मावती समय' को व्याख्यात्मक दृष्टि से अपनी परिधि में समेट लेती है। इसमें प्रस्तुत विषय से सम्बन्धित नवीनतम् साहित्य का अध्ययन कर उसे अपनी मौलिक विवेचना के साथ प्रस्तुत किया गया है। आलोचना भाग प्रो० ओम् दीक्षित की पुस्तक 'पृथ्वीराज रासो : एक आलोचनात्मक अध्ययन' पुस्तक से उद्धृत किया गया है। आशा है अपने इस नवीन संस्करण में यह पुस्तक विद्यार्थियों एवं विद्वत् समाज में समान रूप से समादरित होगी।

—प्रकाशक

विषय-सूची

पद्मावती समय

कवि-परिचय

रासो : एक विश्लेषण

रासो काव्य-परम्परा और पृथ्वीराज रासो

हुआ निड्डुर कनवज्ज जैत सलषं अब्बूगढ़ ।
मंडोवर परिहार करषि कंगुर हाहुलि ढिढ़ ।
बलिभद्र सु नागौर चंद उप्पजि लाहौरह ।
दिल्लय अत्ताताइ वियाधर सामत सोरह ।
राम दे राव जालौर धर, गोंइद गढ्ढ धामनि ग्रसै ।
दाहिम्म बयाने उप्पनौ, प्रिथिराज परिग्रह बसै ।

—छंद ५८४, समय १

महाभहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री की तीन यात्राओं (सन् १६०६ से १६२३ तक) का ऐतिहासिक विवरण बंगाल की 'रॉयल एशियाटिक सोसायटी' द्वारा सम्पादित हुआ था जिसमें चंदवरदाई के पूर्वज मगध के बतलाए गए हैं। आचार्य शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में इसका विशेष उल्लेख किया है ।

पृथ्वीराज रासो के आधार पर चन्दवरदाई को दानव क्षत्रिय-वंश में उत्पन्न काशी में अपने अङ्गों को काट कर हवन कर देने वाले ढूँढाराक्षस की जिह्वा का अवतार भी माना है। पृथ्वीराज रासो में तत्सम्बन्धी तीन स्थल मिलते हैं—

(१) दिय वीसल वरदान कुष्प उपजै माहा भर ।
वीरा रस उत्तान जुद्ध मंडै न कोइ नर ।
वीर जोति अवतार भट्ट जिह्वा तन भारिय ।
नयन जोति संजोगि पत्ति कुल पिता संघारिय ।
दिष्षे सु नयन पुहुकर प्रसिध, कियौ पाप इन ध्रूव करि ।
उप्पजै नारि अति रूप तिन, तेन लिन्न जायै सुघर ।

—छंद ५८२, स० १

(२) दानव कुल क्षत्रीय नाम ढुंढा रष्षस वर ।
तिहि सु जोत प्रथिराज सूर सामंत अस्तिभर ।
जीह जोति कवि चंद रूप सजोगि भोगि भ्रम ।
इक्क दीह ऊपन्न इक्क दीहै समाय क्रम ।

पद्मावती समय

कवि-परिचय

चन्दवरदाई : जीवन-वृत्त

अनेक प्राचीन महापुरुषों, महाकवियों एवं महान् कलाकारों के जीवन-वृत्त प्रायः अंधकार से आवृत रहते आए हैं। उनके जन्म-स्थान तथा जन्म-काल इत्यादि के विषय में अशंकात्मक दृष्टिकोण किसी का नहीं रहा है। शील संकोच के कारण वे अपनी महानता का वर्णन भी तो प्रस्तुत न कर सके और विवाद के विषय बने। यही बात अक्षरशः हिन्दी के आदि महाकवि चंदवरदाई के विषय में भी लागू होती है। यद्यपि पृथ्वीराज रासो के निर्माण काल से ही समस्त काव्य-प्रेमी उस पर अत्यन्त अनुराग प्रदर्शित करते आए हैं तथापि काव्यकार चन्द के कुल, गोत्र, जन्म एवं जीवन-चरित्र के विषय में यथेष्ट रूप से कुछ नहीं लिखा गया। विद्वानों ने 'पृथ्वीराज रासो' पर लिखित भिन्न-भिन्न टीकाओं में प्राप्त चंद-विषयक स्फुट वाक्यों, किंवदंतियों एवं आख्यायिकाओं के आधार पर यत्र-तत्र बिखरी हुई सामग्री एकत्र कर चंदवरदाई का जीवन-वृत्त प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

१. जन्म स्थान तथा जन्म सम्वत्

पृथ्वीराज रासो का निम्नोल्लिखित छंद चंदवरदाई का जन्म-स्थान निर्देशित करता है—

रथ्य कथ्थ होइ निर्मये, जोग भोग रजिन लहिय।
त्रङ्ग बाहु अरि दल मलन, तासु कीत्ति चंदह कहिय।

—छं० ६२ समय १

ढ़ रूप दानव उतंग बौलि आना नरिंद दिय।
स्ति सकल सामंत तेज प्रथिराज वीर विय।
विक्रम अति सूर जीह कवि चंद प्रमानं।
ठान उप्पजै एक थल मरन निधानं।
दैाल दिल्ली रह्यौ चौसट्ठा टोडर समनि।
देवान गति, डैव गेत्ति जोगा सघनि।

—छं० ५५७, स० ६७

उपर्युक्त ...ों में दूसरा उदाहरण सिद्ध करता है कि दानव क्षत्रिय वंश में ढुंड़ा नाम...ठ राक्षस उत्पन्न हुआ, उसकी ज्योति से पृथ्वीराज, हड्डियों से शूर स...जिह्वा से कविवर चन्द और रूप से संयुक्ता की उत्पत्ति हुई।

उक्त तीनों स्थलो...चन्द और पृथ्वीराज की समवयस्कता का भी उद्घाटन हो जाता है। "इ...दीह ऊपन्न, इक्क दीहै समाय क्रम" के आधार पर पृथ्वीराज और चन्दवरदा...ा जन्म सम्वत् एवं जन्म दिन एक ही ठहरता है। इसका समर्थन रासो में अन्य...भी मिलता है—

ज्यों भयौ जनम कवि चंद कौ, भयौ जनम सामन्त सब।
इक धान जनम मरनह सुइक चलहि कित्ति ससि लगि रव।

इतिहास का इस विषय पर कोई मत नहीं। यदि ...न्द और पृथ्वीराज का जन्म साथ-साथ होना माना जाय तो पृथ्वीराज ... जन्म अनन्द विक्रम शाक १११५ ठहरता है--

एकादस सै पं... दह, विक्रम साक अनन्द।
तिहि रिपु ...पुर, हरन कौ भय प्रिथिराज नरिंद।

—छं० ६६४, स० १

इस प्रकार चन्द का १२०६ वि० सं० निकलता है। म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा इस 'भटायत' सम्वत् को विवा हैं। इस पर उन्होंने अपने 'आनन्द संवत् की कल्पना' नामक वस्तार प्रकाश डाला है। अन्य ग्रन्थ जैसे 'बीजोलिया के वि० सं शिला लेख', 'पृथ्वीराज विजय', 'प्रबन्ध कोष', 'हमीर महाकाव्य न काव्य' इत्यादि में भी सम्वत् की ओर कोई इङ्गित नहीं किया इस प्रकार वहिरंग प्रमाणों के अभाव वश चन्दवरदाई का जन्म स ना के गर्त में चला जाता है।

'पृथ्वीराज विजय' नामक ग्रन्थ में पृथ्वीराज का ठ मास द्वादशी उल्लिखित है। सम्वत् का निर्देश नहीं किया गया। विलास' नामक ग्रन्थ में पृथ्वीराज का जन्म माघ शुक्ला त्रयोदशी, शु संवत् ११३२ दिया हुआ है। इस सम्वतानुसार चन्द की आयु ११७ व ती है क्योंकि उनका मृत्यु सम्वत् १२४९-५७ (ई० सन् ११९२) सुनिश्चि[1] कुछ भी हो, चन्दवरदाई का जन्म १२०६ वि० ही मानना अधिक स है।

२. नाम तथा उपाधि

चन्दवरदाई ने अपने नाम का संकेत 'चन्द' से ही दिया है। वास्तव में उसका पूरा नाम पृथ्वी चन्द अथवा पृथ्वी भट्ट। 'चन्द' नाम का उल्लेख रासो में भी मिलता है। अजमेर नरेश सोमेश ने पृथ्वीराज के जन्म के अवसर पर उन्हें अपनी ससुराल से अजमेर न के लिये चन्द और लोहाना को भेजा था—

> तब बुलाय सोमेस बर, लहानौ अरु चन्द।
> लै ह अजमेर घर, पहुँते परहु सु इन्द।

यहाँ एक बात स्मरण है कि चन्द और पृथ्वीराज का जन्म दिन एक ही था फिर नवजात शिशु को लाने लिये नवजात शिशु ही कैसे जा सकता है? यह विचारणीय है। ऐसे ही स्थलों के ण हमारी कल्पना पंगु हो जाती

---

[1] चन्दवरदाई और उनका काव्य—विपिन बिहारी त्रिवेदी

है। संभवतः यह छन्द क्षेपक के रूप में जोड़ा गया होगा। चन्दवरदा
नाम का संक्षिप्त रूप 'चन्द' ही प्रयोग में लाता था।

शङ्कर गर विष कंद जिम, वड़वा अगनि समन्द।
तै रहषहु चहु आन तिम, षाँ हुसेन कहि चन्द।

—छं० १७ स० ६

रासो में यत्र-तत्र चंदवरदाई के लिये 'पहुमि वंदीजन' अथवा 'पृथ्वी कवि
इत्यादि नामों का उल्लेख भी मिलता है।

'चंद वरदाई' को 'वरदाई' उपाधि मिली हुई थी। चंद को देवी की सिद्धि
प्राप्त थी और उसने देवी के दर्शन भी किए थे—

गुरं सब्ब कब्बी लहू चंद कब्बी, जिनै दंसिय देवि सा अंग हब्बी।
कवी कित्ति कित्ती डकत्री सुदिख्खी, तिनै की ऊचिष्टी कवी चंद भख्खी।

—छं० १०, स० १

देवी सरस्वती का वरदानी चन्द आगे चल कर चन्दवरदाई कहलाया। चंद
के वरदाई होने का प्रमाण निम्नाङ्कित वाक्यों में मिल जाता है।

(१) चन्द की स्त्री के वाक्य—

तुम देवी वरदान, दान दीजै मुहि कब्बिय।
अष्टादसह पुरान, नाम परिमानह अब्बिय।

—छं० २० स० १

(२) पृथ्वीराज के वाक्य—

हस झूझत रजपूत रिन, जंपत सम्भरि राव।
अमर कित्ति सामैत करन, वरदाई घर जाव।

—छं० १८७२ स० ६१

(३) मंत्री कैमास के वाक्य—

कथ्थिय वर कैमासं, देवी वरदाय चन्द भट्टायं।
अस तिन चवै असेसं, सत्यं रूप सत्य अवतारं।

—छं० १४४ स० ६१

(४) चन्द के वाक्य—

कल छोरि न जाइ अभागरौ, गाड्यौ गुन गहि अग्गरौ।
इम जंपै चन्द वरद्दिया, कहा निघट्टै इय प्रलौ।

—छं० २१६ स० ५७

(५) देवी के वाक्य—

विजै है मति राज, उक तिजौ बहु धरयौ।
मोहि चन्द वरदाय, सु अन्तर मति करयौ।

—छं० १२६ स० ५८

(६) हमीर के वाक्य—

पुनि अष्षिय हमीर, सुनहु देविय वरदाइय।

—छं० ७०७ स० ६६

उक्त वाक्यों से सिद्ध हो जाता है कि 'चन्द' देवी सरस्वती का वरदान प्राप्त किए हुए था। किन्तु हरप्रसाद शास्त्री अपनी प्रारम्भिक खोज रिपोर्ट, परिशिष्ट, पृ० २५ पर 'वरदायी' शब्द का स्पष्टीकरण निम्न प्रकार से करते हैं—"चन्द की वरदाई उपाधि का अर्थ है कि उसने एक देवी से कवि होने का वरदान प्राप्त किया था। ये ज्वाला देवी थी और ज्वाला नामक स्थान में प्रतिष्ठित थीं, जिसे पृथ्वीराज ने चन्द को दिया था। वरदायी संभवत अशुद्ध है, उसे वरदिया होना चाहिए। पठानों में वरदायी नामक एक जाति होती है। ये लोग अपने को चन्द का वंशज कहते हैं और अपने पूर्व पुरुषों का बलात् मुसलमान बना लिया जाना बतलाते हैं।"

हर प्रसाद जी शास्त्री के कथनानुसार वह ज्वाला देवी का वरदानो था। पृथ्वीराज रासो के आधार पर तो वह दुर्गा का वरदानी भी था और सरस्वती का भी। वस्तुतः कवि होने का वरदान तो उसे देवी सरस्वती से ही मिला था—

या पुच्छी कवि चन्द को, हिय हरष्षय सुषदाय।
जु कछु भयो सु कहौ तुम, तुम वानी वरदाय।

—छं० ४ स० २२

अतः वाणी से वरदान प्राप्त कर चन्द 'चन्दवरदायी' नाम से प्रख्यात हुआ। देश-विदेश में वह चन्द वरदायी नाम से सम्बोधित होता रहा।

३. चन्दवरदायी के माता-पिता

पृथ्वीराज रासो में चन्दवरदायी की माता के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं मिलता। पिता के विषय में अवश्य रासो में कोई स्थल आए हैं।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा सम्पादित पृथ्वीराज रासो के सम्पादकों ने निम्न छन्द के आधार पर वेन कवि को चन्दवरदाई का पिता बतलाया है—

अग्गे सुचक्र लिन्नो गुविंद, अग्गे सु वज्र कर चढ़ी छन्द।
बिहु बाह सूर सज्जे सम्मत, बेने बिरह बंधे अनन्त।

—छं० ६२२, स० १

पृथ्वीराज रासो का एक अन्य छन्द भी चन्द वरदाई का पिता 'वेन' को ही सिद्ध करता है किन्तु उसमें चन्द ने अपने पिता का नाम स्पष्ट नहीं लिखा, बस राव कह भर दिया है। वह छन्द निम्नांकित है—

अनगेस पुत्रि हुअ जन्म, विज्जल चमंकि जनु मेघ घन।
वद्धाइ राव सोमेस दीन, इक सहस हेम हुकम कीन।

—छं० ६९७, स० १

उपर्युक्त छन्दों में ६२२ वाँ छन्द प्राचीन रासो की हस्त लिखित प्रतियों में नहीं मिलता। और ६९७ वाँ छन्द केवल राव शब्द के आधार पर वाह्य प्रमाण प्रस्तुत करता है। वेन शब्द उसमें किसी परवर्ती ग्रन्थ से जोड़ दिया गया होगा। इस प्रकार चन्द के पिता का नाम राव वेन होना शंकात्मक एवं संदिग्ध है।

वैसे पृथ्वीराज रासो में चन्द के पिता का नाम स्पष्टतः मल्ह सिद्ध होता है—

(१) **विन आयस प्रथिराज कै, धाय नबयो बाज।**
को रहषे सुत मल्ह कौ, सूर नूर मुख लाज।

—छं० १८६४, स० ६१

(२) चल्यौ रह अप्पन मल्ह सुतनं,
रच्यो निरकार बिलीयन भन ।
धरयौ मन अप्पन सूनि सुभाय,
सुषंपति धाम धरयो निज भाय ।।

—छं० ५, समय ६७

उक्त उदाहरणों में कोई भी भेद नहीं जो चन्द के पिता का उल्लेख करते समय अस्पष्ट प्रतीत हो। उपर्युक्त दोनों छन्दों के आधार पर चन्दवरदायी के पिता 'मल्ह' ही प्रतीत होते हैं। वेन को चन्दवरदायी का पिता मानना भ्रमपूर्ण है।

४. चन्दवरदाई की जाति और धर्म

महाकवि 'चन्द' पृथ्वीराज के अंतरंग सखा थे। एक बार वे उनके साथ शिकार खेलने गये। रास्ते में पथभ्रष्ट हो एक ऋषि के पास जा पहुँचे। ऋषि द्वारा पूँछने पर उन्होंने अपना परिचय निम्नोलिलखित छन्द में दिया—

भट्ट जाति कवियन नृपति, नाथ नाम मो चन्द ।
आलस में गंगा बही, अब्ब गए सब दंद ।

—छं० २५, स० ६

ऐसा ही एक स्थल और आता है जिसमें सिंह के धोखे महाराज पृथ्वीराज ने वन की एक कंदरा में धुआँ भरवा दिया था। दुर्भाग्य अथवा सौभाग्य से उसी कंदरा में एक ऋषि रहते थे। उन्होंने पृथ्वीराज को शाप दिया था तब चन्द ने उन ऋषि को सन्तुष्ट करने के लिये अनेक स्तुतियाँ कीं और अपना परिचय दिया—

तबहि भट्ट भाषंत, स्वामि मो नाम चन्द कबि ।
वह नरिंद प्रथिराज, लज्ज भरि रहयौ देव दबि ।

—छं० १६८, स० ६६

चन्द भट्ट जाति के थे, यह सर्व विदित है और पृथ्वीराज रासो में उसके अनेक उदाहरण मिल सकते हैं।

कुछ विद्वानों का कथन है कि चन्दवरदायी भट्ट जाति के जगात गोत्र में
उत्पन्न हुए थे। नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' के

सम्पादक भी इस मत का समर्थन करते हैं। किन्तु वास्तव में पृथ्वीराज रासो में इसका कोई निर्देश नहीं मिलता। डा० त्रिवेदी भी इसका समर्थन करते हैं।

चन्दवरदाई का धर्म उनके स्वामी पृथ्वीराज का धर्म था। अतः वे शैव मतानुयायी कट्टर हिन्दू धर्म का अनुसरण करते थे। वैसे अनेक देवताओं की स्तुतियाँ उनके रासो में मिलती हैं। अन्ततः वे शैव थे।

५. चन्दवरदाई का विवाह एवं वंशज

चन्दवरदायी के दो विवाह हुए थे। उनकी पत्नियों के नाम कमला अर्थात् मेवा और गौरी अर्थात् राजोरा थे। कवि चन्द अपनी दूसरी पत्नी गौरी पर अधिक प्रेम रखते थे क्योंकि वह उनके काव्य की प्रेरणा थी। गौरी ही पृथ्वीराज रासो के सृजन की मूल प्रेरणा है—

समयं इक निसि चन्द। वाम वत्त वद्दि रस पाई।
दिल्ली ईस गुनेयं। किती कहो आदि अन्ताई।

—छं० ७६१, स० १

चन्दवरदाई की उक्त दोनों पत्नियों से १० पुत्रों का जन्म हुआ था जिनका नाम निम्नोल्लिखित पद में मिलता है—

दहति पुत्र कवि चन्द,[१] सुन्दर[२] सुजानं[३]।
जलह[४] वल्द[५] बलिभद्र[६] कविय केहरि[७] वष्यानं।
वीरचन्द[८] अवधूत[९], दसम नंदन गुनराज[१०]।
अप्प अप्प क्रम जोग बुद्धि भिन्न-भिन्न कटिकाजं।
जल्हन निहाज गुन साज कवि चन्द छन्द सामर तिरन।
अप्पौ सुहित्त रासौ सरस, चल्यौ अप्प रंजिन सरन।

—छं० ८६, स० ६२

दस पुत्र—१ सूर, २ सुन्दर, ३ सुजान, ४ जल्ह, ५ वल्ह, ६ बलिभद्र, ७ केहरि, ८ वीरचन्द, ९ अवधूत, १० गुनराज। उनके एक पुत्री—राजाबाई भी थी, ऐसी विद्वानों की धारणा है किन्तु उसका उल्लेख रासो में कहीं नहीं मिलता। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के सम्पादकों ने 'राजाबाई' नामक चन्द की पुत्री का उल्लेख पृथ्वीराज रासो के एक संस्करण में दिया है। इन

सब पुत्रों में जल्हन चन्द को सर्वाधिक प्रिय था क्योंकि वह अत्यन्त गुणग्य एवं विद्वान था। चन्द को सब पुत्रों में जल्हन पर अधिक भरोसा था अतः चन्द जल्हन को पुस्तक सौंप राज-कार्य में हाथ बटाने गजनी चला गया था—

दहति पुत्र कवि चन्द कै सुन्दर रूप सुजान।
इक जल्लह गुन बावरो, गुन समदं ससि मान।

—छं० ८४, स० ६७

आदि अन्त लगि वृत्त मन, वृन्नि गुनी गुन राज।
पुस्तक जल्हन हस्त दै, चलि गज्जन नृप काज।

—छं० ८५, स० ६७

प्रो० रमाशङ्कर त्रिपाठी एम० ए० ने 'सरस्वती' नवम्बर १९२९ के अङ्क में 'महाकवि चन्द के वंशधर' शीर्षक लेख लिखा था जिसमें नानूराम ब्रह्म भट्ट से प्राप्त चन्दवरदायी का वंश वृक्ष है। महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री की खोज रिपोर्ट भी इस विषय पर सराहनीय प्रकाश डालती हैं। उनका कथन है कि चन्दवरदाई के वंशधर अब तक नागौर (राजस्थान) में रहते हैं। वह वृक्ष इस प्रकार है—

खेमचंद
गोविन्दचंद
जयचंद
मानचंद
शिवचंद
बलदेवचंद
चाथचंद
वेनीचंद
गोकुलचंद
वसुचंद
लेखचंद
गुणचंद
मोहनचंद
जगन्नाथ
रामेश्वर
गंगाधर
भगवानसिंह
कर्मसिंह
मथुरासिंह
वाग्गोविन्दसिंह
मानसिंह
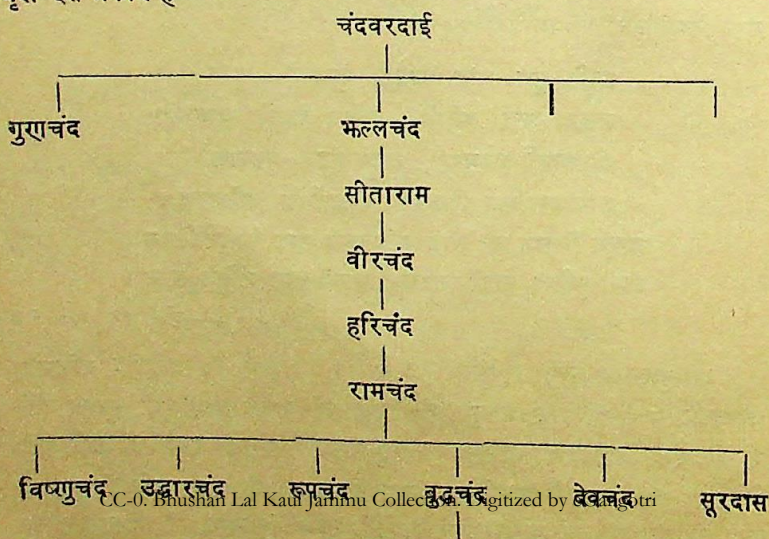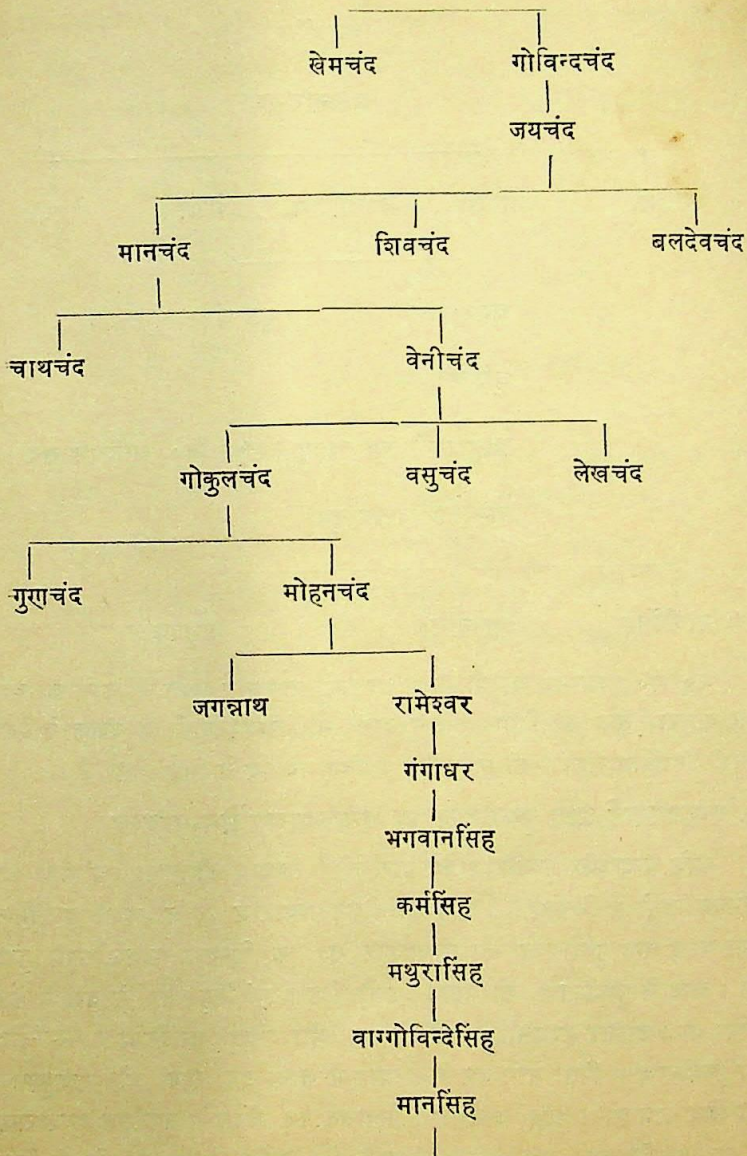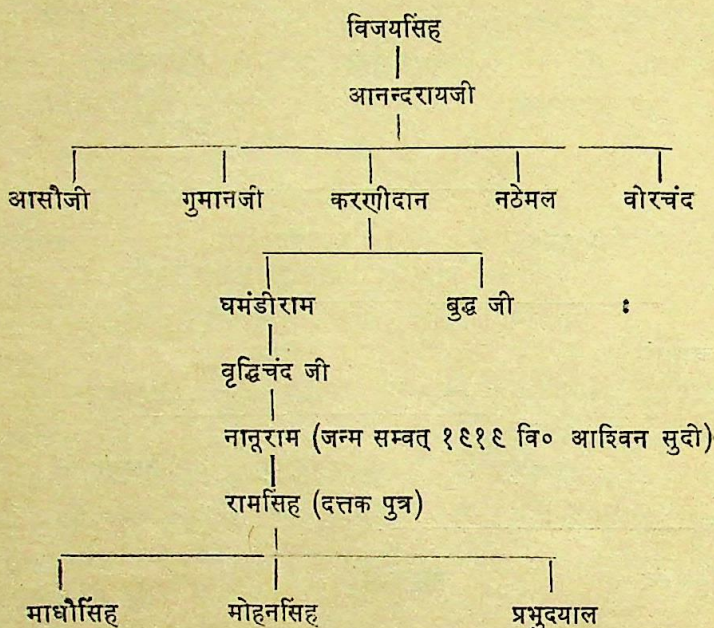
म० म० हरप्रसाद शास्त्री तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने चन्द का वंश वृक्ष नानूराम तक ही दिया है। सूरदास भी चन्दवरदाई के वंशज थे ऐसा उनकी 'साहित्य लहरी' की एक टीका में दिए गये पद से सिद्ध होता है।

६. चन्दवरदाई और पृथ्वीराज का अन्योन्याश्रय प्रेम-सम्बन्ध

कवि चन्द और पृथ्वीराज के पारस्परिक सम्बन्ध की दृढ़ता एवं मैत्री का परिचय रासो में मिलता है। चन्द का जीवन पृथ्वीराज के जीवन से घुल-मिल गया था। चन्द पृथ्वीराज का सलाहकार, सहायक, विश्वास-भाजन सभी कुछ था। चन्द ने पृथ्वीराज को अपने कला-कौशल एवं निपुणता से वश में कर लिया था। डाक्टर हरप्रसाद शास्त्री ने इस ओर संकेत भी किया है—"चन्द का पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के दरबार में जाना तथा राजा और राजकुमार का प्रिय पात्र होना कहा जाता है। सिंहासन पर बैठने के उपरान्त पृथ्वीराज ने नागौर और खाटू बसाये। उन्होंने चन्द को नागौर में विस्तृत भूमि दी जिस

पर कवि के वंशजों का अब तक अधिकार है।* चन्दवरदायी और पृथ्वीराज के अन्योन्याश्रय प्रेम सम्बन्ध की झाँकी निम्नोल्लिखित छन्द में हो जाती है। कवि चन्द पृथ्वीराज के स्नेह बन्धन का स्मरण कर दुख प्रगट करते हैं—

कहै तास कवि चन्द, अट्ठौ बीराधि वीर सुनि।
हम मनुच्छ भय मोह, उदधि बुड्डे सुतत्त तुनि।
हमंहि राज इक बास, सथ्थ उपपन्ने संग सदि।
नेह बंध बँधियै, करिय अति प्रीति राज रिदि।
सामंत संकल्प अति प्रेम तर, बाल नेह उर धुर कियौ।
बलि भद्र-नेह संसार सुष, किस सुनेह छंडे जियौ।

—छं० १७०२, स० ६६

तात्पर्य यह कि बाल्यावस्था से लेकर मृत्यु-पर्यन्त चन्दवरदायी का जीवन चौहान राजाओं के दरबारों में ही व्यतीत हुआ। पृथ्वीराज के दरबार में उनके गुरु राम पुरोहित के समान चन्द का आसन सदैव रहता था—

गुरु राम विट्ठ विराजयं। जनु वेद ब्रह्म सु साजयं।
मुष अग्ग चंद सु भूषनं। रज रोति हद्दसु रष्षनं।

—छं० १८, स० ५६

और वह महाराज पृथ्वीराज के समान ही ठाठबाट का जीवन व्यतीत करता था—

देइ सइस हैवर विसाव सत बारुन सथ्थह।
सत् गयंद रथ रूढ़ साज आसन प्रथि रज्जह।
पलक वेद जोजन प्रमान घटै संघल कृत पाइय।
सजि लष्ष तन लष्ष सकल बल जोर सजाइय।
धानुक्क धार सत अट्ठ चलि, करन तिथ्थ जबिह चलिए।
सत सुभट दान दिय तुटिन गज, मनहु जनम सागर मिलिय।

—छं० २, स० ४२

---

* डा० हरप्रसाद शास्त्री—खोज रिपोर्ट परिशिष्ट ५, पृष्ठ संख्या २५.

७. चन्दवरदाई की मृत्यु

चन्द की मृत्यु के विषय में एक लम्बी कहानी है। कहते हैं, शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमण की सूचना ज्योंही पृथ्वीराज को मिली त्योंही उसने चन्द को काँगड़ा दुर्ग के सामन्त हाहुली हम्मीर को जो किसी कारणवश पृथ्वीराज से अप्रसन्न होगए थे, मना लाने के लिये भेजा। किन्तु हम्मीर ने चन्द की एक न मानी और उसे धोखे से जालंधरी देवी के मन्दिर में बन्द करवा दिया तथा स्वयं गोरी का सहायक बन पलायन कर गया। फलस्वरूप पृथ्वीराज पराजित हुआ। गोरी ने उसे गजनी के अंध कारागार में बन्द करवा दिया। इधर चन्दवरदाई जालंधरी देवी के मन्दिर से मुक्ति पाकर दिल्ली (योगिनीपुर) आया और ढाई मास में 'रासो' की रचना की[1] और शेष रासो रचना के लिये अपने परमप्रिय प्रतिभासम्पन्न पुत्र जल्हन को सौंप,[2] स्त्री एवं अन्य पुत्रों से विदा ले योगी वेष धारण कर गजनी आया। गजनी पहुँचकर चन्दवरदायी ने पृथ्वीराज से मिलना चाहा। चन्द ने पृथ्वीराज द्वारा सात लोहे के तवे वेधे जाने का कौशल गौरी से कहा और उसके द्वारा शब्द वेधी वाण का अद्भुत चमत्कार दिखाने की आज्ञा माँगी। गोरी चन्द के वाक चातुर्य एवं पटुता के वशीभूत हो उसके प्रस्ताव से सहमत हो गया। वह दिन जुमेरात (गुरुवार) का था। कौशल देखने के लिये काफी भीड़ एकत्र हुई। गोरी एक मंच पर बैठा शब्द वेधी वाण का कौशल देखने को लालायित था। पृथ्वीराज बुलाए गए। चन्दवरदायी ने संकेत द्वारा सुलतान गोरी के मंच का निर्देश कर दिया।[3] आज्ञा

१ उमै मास दिन अद्धवर, किय रासौ चहुआन।
रसना भह सु चन्द की, बोलि उमा परमान।

—छन्द ४६, समय ६७

२ आदि अन्त लग वृत्त मन, वूनि गुनी गुन राज।
पुस्तक जल्हन हस्त दै, चलि गज्जन नृप काज।

—छन्द ८५, स० ६७

३ चार बाँस, चौबीस गज अँगुल अष्ट प्रमान
ता ऊपर सुलतान है, मत चूकै चौहान—अज्ञात

मिलते ही पृथ्वीराज ने कान तक खींचकर वाण चलाया जो सुलतान गोरी के दाँत, रसना, तालु आदि को बेधता हुआ पार निकल गया। गोरी के अंग रक्षक मीर और खान, इन दोनों को मारने के लिये दौड़े। तब तक दोनों आपस में एक दूसरे के कटार मार कर संसार से जा चुके थे—

छुरिका कविंद जट सझक थी, कट्टि भट्ट कटि सीस श्रप।
ता पाछे चन्दवरदाय नै, दइय राज वर हथ्थ नृप।

—छं० ५५४, स० ६७

इस प्रकार हिन्दी के आदि कवि भट्ट चन्दवरदायी ने स्वामि-धर्म एवं पृथ्वीराज की कीर्ति का विमल यश वर्णन कर उन्हें शत्रु से प्रतिशोध दिला उनके साथ ही इस संसार से महा प्रयाण किया—

'इक्क दीह उपन्न इक्क दीहै समायक्रम'

अथवा

इक थान जनम मरनइ सु इक
चलहि किति ससि लग्गि रव।

चन्दवरदाई और तत्कालीन परिस्थितियाँ

प्रत्येक कवि अथवा लेखक परिस्थिति प्रसूत होता है। समकालीन एवं पूर्ववर्ती परिस्थितियों का प्रभाव उस पर अवश्य ही पड़ता है। अतः कवि या लेखक उन परिस्थितियों के वशीभूत हो अपनी कृतियों में उनका चित्रांकन करता है।

कवि चन्दवरदायी का जन्म हिन्दी-साहित्य में एक अभूतपूर्व घटना है। वह काल संघर्षमय था और परिस्थितियाँ बहुत ही अधिक परिवर्तनशील थीं। इन परिवर्तनशील परिस्थितियों में पले हुए महाकवि चन्द ने युग की परिस्थितियों का भरसक प्रभाव ग्रहण किया। पृथ्वीराज रासो उन परिस्थितियों का दर्पण है। इन परिस्थितियों के प्रति उनकी जागरूकता का परिचय रासो में मिलता है। यह ग्रन्थ उस युग का विशालकाय महान् ग्रन्थ है और हिन्दी का आदि ग्रन्थ। कर्नल टाड ने इसे युगीन 'विश्व इतिहास' (Universal history of the period) के नाम से सुशोभित किया है।

आचार्य शुक्ल ने हिन्दी के आविर्भाव काल को आदि काल नाम दिया है। उनका कथन है—"प्राकृत की अन्तिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिन्दी साहित्य का आविर्भाव माना जा सकता है। +++ अपभ्रंश या प्राकृताभास हिन्दी के पद्यों का सबसे पुराना पता तांत्रिक और योगमार्गी बौद्धों की साम्प्रदायिक रचनाओं के भीतर विक्रम की सातवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में लगता है। मुंज और भोज के समय (संवत् १०५० के लगभग) में तो ऐसी अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी का पूरा प्रचार शुद्ध साहित्य या काव्य रचनाओं में पाया जाता है। अतः हिन्दी-साहित्य का आदि काल संवत् १०५० से लेकर सम्वत् १३७५ तक अर्थात् महाराज भोज के समय से लेकर हम्मीरदेव के कुछ समय पीछे तक माना जा सकता है।" कतिपय विद्वान हिन्दी साहित्य का अभ्युदय सम्राट हर्षवर्धन के निधन के पश्चात् ईसा की ७ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से मानते हैं और इसे 'अपभ्रंश काल' की संज्ञा से विभूषित करते हैं। विषय वस्तु के आधार पर इसे—'सिद्ध सामन्त युग' भी कहा गया है।

इस काल की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों का न्न्द पर क्या प्रभाव पड़ा, हमें यह देखना है।

राजनीतिक परिस्थितियाँ

हिन्दी साहित्य का आविर्भाव काल घोर संघर्ष का युग था। चतुर्दिक युद्ध की ज्वालाओं में वीरों के रक्त की आहुतियाँ दी जाती थीं। पृथ्वी में तलवारों की खनखनाहट का शब्द गूँजता रहता था। राजघरानों में युद्ध की घटनाएँ ही घटती रहती थीं। साम्राज्यों की स्थापना, राज्य विस्तृतीकरण, वंश परम्परा प्राप्त शत्रुता, शौर्य, बल एवं आत्मगौरव प्रदर्शन आदि के कारण खण्ड राज्य पारस्परिक द्वेष एवं कलह से जर्जर थे। आए दिन युद्ध होते रहते थे। इन्हीं युद्धों के पीछे राज्याश्रित कवि वीर-रसात्मक कविता का सृजन कर रहे थे। आचार्य शुक्ल कहते हैं—"राज्याश्रित कवि और चारण जिस प्रकार नीति श्रृंगार आदि के फुटकल दोहे राज सभाओं में सुनाया करते थे उसी प्रकार अपने आश्रयदाता राजाओं के पराक्रम पूर्ण चरितों या गाथाओं का वर्णन भी किया करते थे। यही प्रबन्ध-परम्परा रासो के नाम से पायी जाती है+++।"

इसी परम्परा के आधार पर चन्दवरदायी ने भी अपने ग्रन्थ का नामकरण 'रासो' किया था। इसमें पृथ्वीराज के शौर्य, पराक्रम और प्रताप का अनूठा वर्णन चन्दवरदायी ने वीरोल्लास भरे छन्दों में किया है।

धार्मिक परिस्थितियाँ

जैन और बौद्ध धर्म युद्ध-प्रिय राजाओं के मनोनुकूल नहीं थे अतः ब्राह्मण धर्म का पुनः प्रतिष्ठापन हुआ और उसकी अभिवृद्धि भी हुई। मौर्य और कुषाण राजाओं ने अवश्य ही बौद्ध धर्म की काफी उन्नति की थी, किन्तु उनके बाद उसका ह्रास भी उसी प्रकार तीव्र गति से हुआ। गुप्त राजाओं ने ब्राह्मण धर्म को प्रश्रय दिया। देवी-देवताओं की उपासना फिर से जीवित हो गई। हूणों के काल में बौद्ध विहार, मठ, मन्दिर एवं बौद्ध मूर्तियों का विनाश किया गया। हर्षवर्द्धन के समय में पुनः बौद्ध धर्म को प्रश्रय मिला और पाल वंश में बौद्ध धर्म के प्रचार के साधन जुटाये गये। पालवंश में बोध गया, नालन्दा, ओदन्ती-पुर, विक्रम शिला आदि बौद्ध धर्म के प्रचार केन्द्र बने। परन्तु कालान्तर में १२ वीं शताब्दी के अन्त तक बौद्ध धर्म का ह्रास हो चुका था और इन समस्त केन्द्रों पर सेन वंशी राजाओं का अधिकार हो गया था अतः हिन्दू धर्म का प्रचार एवं प्रसार हुआ। सेन स्वयं कट्टर हिन्दू थे।

जैन धर्म भी धीरे-धीरे प्रचलित हो रहा था। पश्चिमी भारत जैन धर्म का गढ़ बन चुका था। प्रारम्भिक चालुक्य, राष्ट्रकूट, गंग तथा कदम्ब आदि द्वारा जैन धर्म की उन्नति हुई। महाकवि चन्दवरदायी पर भी जैन धर्म की प्रतिक्रिया हुई थी। उस समय गुजरात में जैन धर्म का बड़ा प्रचार था। वहाँ का राजा भीमदेव चालुक्य जैनी था—

श्रोतान राग लग्ग लिषैं, पट्टनवै पट्टँ सरां।
जै जैन ध्रंम उग्गाइयाँ, तेन क्रूर लग्गी करां।

—छंद ११

भीमदेव जैन धर्म का प्रसारक भी था। इसका राजमन्त्री अमरसिंह सेवरा हिन्दुओं के प्रति अश्रद्धा रखता था और जैन धर्म के प्रसार की सदैव चेष्टा

किया करता था। वह अत्यन्त चमत्कारी था अतः अनेक राज्यों के निवासियों को जैन धर्मानुयायी बनाने में सफल हुआ। वह मारण, मोहन, वशीकरण, तंत्र-मंत्र आदि में निष्णात था। चन्दवरदायी भी उससे किसी प्रकार कम न था। वह अमरसिंह सेवरा के इस मिथ्या प्रचार को रोकना चाहता था। एक बार चालुक्य नरेश ने अपने जैन मन्त्री सेवरा को चन्द से शास्त्रार्थ करने के लिये प्रेरित किया जिसमें सेवरा की हार हुई। जैन साधुओं के विपरीत आचरण, उनके मिथ्या धर्म प्रचार को नित्य प्रति चन्द ने देखा और अपने तीव्र विरोधी उद्‌गार प्रकट किये। रासो के अनेक स्थल इसके उदाहरण दिए जा सकते हैं।

कलचुरियों तथा होयसालों ने भी जैनमत का अनुकरण किया।

शैव और वैष्णव धर्म का प्रचार पाण्ड्य तथा चोल राजा कर रहे थे। जैन धर्मावलम्बी मनुष्यों का सामूहिक रूप में पाण्ड्य राजाओं ने वध करवाया। इधर गुजरात तथा राजपूताने में मुसलमानी प्रभाव बढ़ रहा था। अतः जैन धर्म का ह्रास हुआ किन्तु ये वाह्य प्रभाव उसे समूल नष्ट न कर सके। दो धर्मों की समान अवनति के फलस्वरूप ब्राह्मण धर्म सफलीभूत हुआ। अवतारवाद मूर्ति पूजा का प्रवर्तन किया गया और बुद्ध तथा ऋषभदेव को अवतारी पुरुष माना जाने लगा। सर्वदेवोपासना आरम्भ हुई। ब्राह्मण धर्म सम्बन्धी अनेक सम्प्रदाय बने किन्तु दो को (शैव और वैष्णव) प्रमुखता मिली। अब शैव धर्म उत्तर भारत का प्रधान धर्म बन गया था। तिरूमल ने शैवागम को ईश्वरीय ज्ञान की पुस्तक बतलाया। नयनार संतों ने दक्षिण भारत में इसका प्रचार किया। पाण्ड्य, चोल, सेन कलचुरि आदि राजाओं ने शैव मत का विशेष प्रचार किया। शशांक तथा हर्षवर्द्धन भी शिव के उपासक बने। शैवों के तीन सम्प्रदाय इधर-उधर फैल गए—(१) पाशुपत, (२) कापालिक, (३) कालामुख। इनमें से पाशुपत और कापालिक विशेष उल्लेखनीय हैं।

ब्राह्मण धर्म का दूसरा सम्प्रदाय वैष्णव था। अवतारवाद इसकी प्रमुख विशेषता है। भक्तिवाद एवं अहिंसा का भी प्रचलन इसकी उल्लेखनीय विशेषताएँ रहीं। भक्ति की प्रतिष्ठा में नाथमुनि, यामुनाचार्य तथा रामानुजाचार्य का विशेष नाम है। अलवार संतों ने दक्षिण भारत में वैष्णव मत का प्रचार

किया। चालुक्य, होयसाल तथा गुप्त राजाओं ने वैष्णव धर्म की अभिवृद्धि की। राजपूतों ने शैव मत का प्रचार किया। इनसे पूर्व शैव धर्म का प्रचार नयनार सन्तों द्वारा बहुत अधिक हुआ था। राजपूती शक्तियों के ह्रास के पश्चात वैष्णव धर्म में राम और कृष्ण के अवतार को लेकर राम एवं कृष्ण सम्बन्धी साहित्य का सृजन हुआ।

सामाजिक परिस्थितियाँ

वैदिक युग में ही हिन्दू समाज चार बड़े-बड़े वर्गों में विभाजित हो गया था। यह विभाजन कर्म के आधार पर किया गया था। चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य एवं शूद्र कार्य-परम्परा के आधार पर बनाये गये थे। मध्यकाल में ब्राह्मण धर्म की विशेष उन्नति के साथ-साथ समाज में वर्ग विभाजन होने लगा था। समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए और अनेक जातियाँ-उपजातियाँ प्रादुर्भूत हुईं। मुसलमानों के सम्पर्क के कारण समाज में संकीर्णता प्रवेश कर गई। जीविका भिन्न-भिन्न साधन, अनुलोम-प्रतिलोम विवाह इत्यादि ने भी उपजातियों को जन्म दिया। किन्तु ब्राह्मण अब भी पूज्यनीय थे। मध्ययुग में ब्राह्मणों की पूजा बहुत कम हो चली थी और क्षत्रियों को पूजनीय माना जाने लगा था। आत्मोन्नति, आत्मगौरव की भावना को इस युग में प्राधान्य मिला। अपमान की अपेक्षा मृत्यु को वरण करने वाले मनुष्यों का प्रादुर्भाव हो चला था। तलवार के बल से समाज शासित हो रहा था। साथ ही विलासिता के पङ्क में भी लोग पड़ रहे थे। एक-एक राजवंशी अनेक स्त्रियों से विवाह करता था। युद्धों का मुख्य विषय स्त्रियाँ ही थीं। आचार्य शुक्ल लिखते हैं "जैसे, योरोप में वीरगाथाओं का प्रसंग 'युद्ध' और -प्रेम' रहा वैसे ही यहाँ भी। किसी राजा की कन्या के रूप का सम्वाद पाकर दलबल के साथ चढ़ाई करना और प्रतिपक्षियों को पराजित कर उस कन्या को हरकर लाना वीरों के गौरव और अभिमान का काम माना जाता था। इस प्रकार इन काव्यों में शृङ्गार का भी थोड़ा सा मिश्रण रहता था, पर गौणरूप में। प्रधान रस वीर ही रहता था। शृङ्गार केवल सहायक रूप में रहता था। जहाँ राजनीतिक कारणों से भी युद्ध होता था, वहाँ भी उन कारणों का

उल्लेख न कर किसी रूपवती स्त्री को ही कारण कल्पित करके रचना की थी। जैसे शहाबुद्दीन के यहाँ से एक रूपवती स्त्री पृथ्वीराज के यहाँ आना लड़ाई की जड़ लिखी गई है। हम्मीर पर अलाउद्दीन की चढ़ाई का भी ऐसा ही कारण कल्पित किया गया है। इस प्रकार इन काव्यों में प्रथानुकूल कल्पित घटनाओं की बहुत अधिक योजना रहती थी।"

नारी के नारीत्व का सम्मान तो किसी को प्रिय ही न था। वह तो विषय वासना की पूर्तिमात्र थी। उपभोग की एक वस्तु मात्र। उसी युग में चाटुकार, विदूषक, कलाकार, कवि, चित्रकार, मूर्तिकार एवं संगीतकार अपने राजाओं की प्रशंसा करने में ही निमग्न रहते थे। विभिन्न कलाओं की उन्नति इस युग में अवश्य हुई। आचार्य शुक्ल कहते हैं—"राज्याश्रित कवि अपने राजाओं के शौर्य, पराक्रम और प्रताप का वर्णन अनूठी उक्तियों के साथ किया करते थे और अपनी वीरोल्लास भरी कविताओं से वीरों को उत्साहित किया करते थे। ऐसे राज्याश्रित कवियों की रचनाओं के रक्षित रहने का अधिक सुभीता था। वे राजकीय पुस्तकालयों में भी रक्षित रहती थीं और भट्ट चारण जीविका के विचार से उन्हें अपने उत्तराधिकारियों के पास भी छोड़ जाते थे।" कहने का तात्पर्य यह कि इस काल में सर्वाधिक सुविधा इन्हीं लोगों को थी।

दूसरा वर्ग ब्राह्मणों का था। ब्राह्मण और महन्त मन्दिरों के अधिपति होते थे। अन्ध विश्वास बढ़ चला था अतः मंदिर जनता से धन का शोषण कर रहे थे। राजा लोग तो प्रजा का धन-शोषण वैसे ही कर रहे थे। मठ-महन्त और पुरोहित फिर कैसे चूकते! मंदिरों में नर्तन, वादन, गायन के साथ ईश्वरोपासना होती थी। देशवासियों की प्रथा का प्रचलन भी मंदिरों में होने लगा था, अतः ईश्वरोपासना के स्थान मन्दिर व्यभिचार एवं विलास के मंदिर बन गए। राजन्य वर्ग और पुरोहित-महंत वर्ग दोनों मिलकर जनता के शोषण पर तुले हुए थे।

तीसरा वर्ग धनिक व्यापारियों का था। ये धन के वैभव एवं मद में किसी को गिनते ही न थे। इनका जीवन विलास से परिपूर्ण था।

शूद्र वर्ग का जीवन अवश्य ही अत्यन्त दुखद था। उक्त तीनों वर्ग इस वर्ग को प्रताड़ित करते थे यद्यपि उनके सुख-साधन एवं विलास-सामग्री प्रस्तुत करने

में इस वर्ग का प्रधान हाथ था। शूद्रों का समाज में कोई मान ही न था। वे तो सेवक थे।

कहने का तात्पर्य यह कि सामाजिक दृष्टि से वह युग पारस्परिक संघर्ष का युग था। सामाजिक उत्सवों का भी युद्ध में ही अन्त होता था। समाज में अराजकता फैल रही थी। समाज में जाति-पाँति, गोत्रादि बहुत बढ़ गये थे। छुआछूत की भावना ने समाज को और भी संकीर्ण बना दिया था।

हिन्दी साहित्य का 'वीरगाथाकाल' उक्त परिस्थितियों से बहुत प्रभावित था। इन परिस्थितियों से आरम्भकालीन ग्रंथ 'खुमान रासो', 'वीसलदेव रासो' तथा 'पृथ्वीराजरासो' पूर्णरूपेण प्रभावित हैं। हिन्दी साहित्य के आदिकाल का एक मात्र प्रतिनिधि ग्रंथ 'पृथ्वीराजरासो' उन परिस्थितियों का प्रदर्शन करता है। भावुक एवं प्रतिभा सम्पन्न पाठकों के लिये इस ग्रंथ में विशेष आकर्षण है। यह हिन्दी साहित्य का प्रथम महाकाव्य है।

उस काल में संस्कृत, प्राकृत, महाराष्ट्री, अपभ्रंश, पैशाची, मागधी और शौरसेनी का अत्यधिक प्रचार था। कवि चन्द भी इन भाषाओं से प्रभावित थे। उन्होंने 'रासो' के एक स्थल पर इसका उल्लेख भी किया है—

संस्कृतम् प्राकृतम् चैव, अपभ्रंशा पिशाचिका।
मागधी शूरसेनी च, षट भाषाश्चैव जायते।

—छं० ७४६, स० १

रासो : एक विश्लेषण

रासो शब्द की व्युत्पत्ति

"वीरगाथा काल में अनेक चरित काव्य लिखे गए। इन चरित्र काव्यों के नामकरण 'रूपक, विलास, प्रकाश अथवा रासो' आदि किए गए। वैसे वीरगाथाएँ दो रूपों में मिलती हैं—प्रबन्ध-काव्य के साहित्यिक रूप में और वीर गीतों (Ballads) के रूप में। साहित्यिक-प्रबन्ध के रूप में जो सबसे प्राचीन ग्रंथ उपलब्ध है, वह है 'पृथ्वीराज रासो'। वीर-गीत के रूप में हमें सबसे पुरानी पुस्तक 'वीसलदेव रासो' मिलती है, यद्यपि उसमें समयानुसार भाषा

परिवर्तन का आभास मिलता है।"[१] आचार्य शुक्ल के इस कथन से स्पष्ट है कि वीरगाथा काल में वीरगाथाएँ 'रासो' नाम से प्रचलित थीं। अब विचारणीय यह है कि 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति किस प्रकार हुई। इन वीर काव्यों का नाम 'रासो' किस प्रकार पड़ा और 'रासो' शब्द के प्रयोग से क्या तात्पर्य है ?

हिन्दी साहित्य में 'रासो' की व्युत्पत्ति के प्रश्न को हल करने के लिये कुछ भ्रान्त एवं काल्पनिक धारणाएँ प्रचलित हैं। नीचे हम तत्सम्बन्धी कुछ विद्वानों के कथनों का विवेचन प्रस्तुत करते हैं—

(१) **रहस्य**—'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'रहस्य' शब्द से हुई है। कविराज श्यामलदास तथा डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल रासो की व्युत्पत्ति रहस्य' शब्द से बताते हैं। हिन्दी-शब्द-सागर के सम्पादकों का भी यही मत है। वे रासो को "किसी राजा का पद्यमय जीवन चरित्र, विशेषतः वह जीवन चरित्र जिसमें उसके युद्धों और वीरता का वर्णन हो" मानते हैं।

(२) **रसायण**—रसायण शब्द से 'रासो' की व्युत्पत्ति मानने में आचार्य शुक्ल का मत उल्लेखनीय है। उन्होंने वीसलदेव रासो की निम्नांकित पंक्तियों के आधार पर रसायण से रासो बना दिया है।

वे कहते हैं—"'वीसलदेव रासो' में काव्य के अर्थ में रसायण शब्द बार-बार आया है। अतः हमारी समझ में इसी रसायण शब्द से होते-होते 'रासो' हो गया।"[२]

बारह सै बहोत्तरां मंझारि।
जेठ बदी नवमी बुधवारि॥
नाल्ह रसायण आरम्भइ।
सारदा तूठी ब्रह्मकुमारि॥

(३) **रास**—(१) काशी-नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित 'रासो' के सम्पादकों ने 'रास' नामक संस्कृत शब्द से रासो शब्द व्युत्पन्न बतलाया है। 'रास' शब्द संस्कृत में शब्द, ध्वनि, क्रीड़ा, शृंखला-विलास, गर्जन-नृत्य एवं कोलाहल आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है।

---

[१] हिन्दी साहित्य का इतिहास (आचार्य शुक्ल) पृष्ठ स० २७-२८
[२] हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ० सं० २८

(२) डा० दशरथ शर्मा—"रासो मूलतः गानयुक्त नृत्य विशेष से क्रमशः विकसित होते-होते उपरूपक और फिर उपरूपक से वीर रस के पद्यात्मक प्रबन्धों में परिणत हो गया। उक्त गान-युक्त नृत्य-विशेष से तात्पर्य 'रास' से है। रास ब्रज प्रान्त का महत्वपूर्ण अभिनय है। उत्तर भारत में सर्वत्र रास लीला का प्रचलन मिलता है। गीत-नृत्य के साथ 'रास' रचाने का उल्लेख हमारे ग्रंथ श्रीमद्भागवत में भी मिलता है। कृष्ण और राधा की 'रास लीला' हमारे लिए अपरिचित नहीं। अतः 'रास' शब्द से रासो का विकास हुआ होगा।"

(३) तीसरा मत 'रास' नामक शब्द से रासो की उत्पत्ति के विषय में 'हिन्दी-अनुशीलन', अक्टूबर-दिसम्बर १९५५ ई० के 'रासो की परम्परा' नामक निबन्ध में इस प्रकार दिया गया था—"रासो शब्द की व्युत्पत्ति रस धातु से मानी जाती है। रास का अर्थ है गर्जन। इसमें उत्साह और उल्लास की भावना प्रधान है। रास अपने प्रारम्भिक काल में एक नृत्य के रूप में ही था। इसको लोग एक नृत्य के रूप में मण्डली बनाकर नाचते थे, और बीच-बीच में गर्जन भी करते जाते थे, यह नृत्य आज भी वर्तमान है। सम्बन्ध पशुपालन नृत्य से माना जाता है। वही नृत्य धीरे-धीरे परिष्कृत होकर गीत-काव्य और अभिनय से पूर्ण हुआ। इस प्रकार रास ने गेय रूपक के तत्व प्राप्त किये और फिर उसमें जब चरित्र का समावेश हुआ तब वह प्रबन्ध के रूप में विकसित हुआ। यही चरित्र प्रधान रास गेय रूपक के तत्वों से युक्त होकर अपने कथानक को केवल काव्य मय प्रबन्ध के रूप में लेकर विकसित हुआ और रासो कहलाया।"

(४) **रासक**—रासक से भी कुछ विद्वान रासो की व्युत्पत्ति मानते हैं। चन्द्रवली पाण्डेय, पंडित विश्वनाथप्रसाद मिश्र तथा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का यही मत है।

(१) **चन्द्रवली पाण्डेय**—रासो का संस्कृत रूप 'रासक' बताते हैं। रासक की गणना अठारह उपरूपकों में की गई है। रूपक अथवा दृश्य काव्य का जैसे नायक-नायिका अथवा नट-नटी के सम्वाद से आरम्भ होता है वैसे ही पृथ्वी-राज रासो में चन्द ओर गौरी का सम्वाद उल्लेखनीय है। शैली की उसी

समानता के आधार पर रासो को रासक से निकला हुआ स्वीकार करते हैं। संस्कृत में 'रासक' का अर्थ दृश्य काव्य है।

(२) **पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र**—पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र 'रासक' शब्द का अर्थ बताते हैं और उनका कथन है कि जिस प्रकार संस्कृत घोटक शब्द ब्रजभाषा में 'घोड़ों', खड़ी बोली में 'घोड़ा' तथा अवधी में 'घोड़' हो जाता है वैसे ही रासक से रासो, रासा तथा रास बना। किन्तु स्मरण रहे रास का सम्बन्ध ब्रजप्रदेश से है, अवधी प्रदेश से कदापि नहीं।

(३) **हजारी प्रसाद द्विवेदी**—ने रासो शब्द की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत करते हुए कहा है—"पृथ्वीराज रासो चरित्रकाव्य तो है ही। वह रासो या रासक भी है। हेमचन्द ने काव्यानुशासन में रासक को गेय रूपक माना है। ये गेय रूपक तीन प्रकार के होते थे—मसृण अर्थात् कोमल, उद्धत, और मिश्र। रासक मिश्र गेय रूपक है। × × × × रासक आरम्भ में एक प्रकार के उद्धत-प्रयोग-प्रधान गेय-रूपक को कहते थे। जिसमें थोड़े बहुत मसृण या कोमल प्रयोग भी मिले होते थे। इनमें बहुत सी नर्तकियाँ विचित्र ताल लय के साथ योग देती थीं। यह मसृणोद्धत ढंग का गेय रूपक था। सन्देश रासक इसी प्रकार का रूपक है। यह मसृण अधिक है। पृथ्वीराज रासो यदि अवश्य ही पृथ्वीराज के काल में लिखा गया था तो उसमें 'रासक' काव्य के कुछ न कुछ लक्षण भी अवश्य रहे होंगे। सन्देश-रासक का जिस ढंग से आरम्भ हुआ उसी ढंग से रासो का भी आरम्भ हुआ है × × × × सन्देश रासक में युद्ध का कोई प्रसंग नहीं है। पर उद्धत-प्रयोग-साधन गेय रूपक में युद्ध का प्रसङ्ग आना प्रयोगानुकूल ही होगा और युद्धों के साथ प्रेमलीलाओं का मिश्रण भी प्रयोग और वक्तव्य-विषय के मिश्र के अनुकूल ही होगा। इससे लगता है कि पृथ्वीराज रासो आरम्भ में ऐसा कथा काव्य था जो प्रधान रूप से उद्धत-प्रयोग-प्रधान मसृण प्रयोग युक्त गेय रूपक था। उसमें कथाओं के भी लक्षण थे और रासकों के भी × × × ×। जिस प्रकार 'विलास' नाम देकर चरित्र काव्य लिखे गए, 'रूपक' नाम देकर चरित्र काव्य लिखे गए, 'प्रकाश' नाम देकर भी चरित्र काव्य लिखे गए, उसी प्रकार 'रासो' या 'रासक' नाम देकर भी चरित्र काव्य लिखे गए। × × × × स्पष्ट ही रूपक शब्द किसी

अभिनेयता की ओर संकेत करता है। यह शब्द केवल इस बात की ओर संकेत करके विरत हो जाते हैं कि ये काव्य रूप किसी समय गेय और अभिनेय थे। 'रासक' का तो इस प्रकार का लक्षण भी मिल जाता है। परन्तु धीरे-धीरे ये भी कथा काव्य या चरित काव्य के रूप में ही याद किये जाने लगे। इनका पुराना रूप क्रमशः भुला दिया गया, × × ×।" तात्पर्य यह कि 'रासक' से 'रासो' बना।

(५) **राजसू**—फ्रांसीसी विद्वान गार्सां द तासी ने 'राजसूर्य' शब्द के आधार पर 'रासो' की उत्पत्ति बताई है। 'राजसूय' का तात्पर्य एक महान यज्ञ से होता है जिसमें बलिदान किया जाता है। उनका कथन है—"पृथ्वीराज के युद्धों, उनकी मैत्रियों, उनके अनेक शक्तिशाली सहायकों तथा उनके निवासों और वंशावलियों के कारण चंद की रचना इतिहास, भूगोल, पौराणिक गाथाओं तथा प्रथाओं आदि की दृष्टि से अमूल्य ठहरती है। इसीलिए उसका नाम 'प्रिथुराज-राजसू' अथवा 'पृथ्वीराज का विशाल बलिदान' है।[1]

(६) **राजयश**—म० म० प० हरप्रसाद शास्त्री तथा श्री विन्ध्येश्वरी प्रसाद पाठक 'रासो' को उत्पत्ति 'राजयश' से सम्बन्धित बतलाते हैं।

(७) **रभस**—कतिपय विद्वान 'रासो' की उत्पत्ति रभस नामक शब्द से मानते हैं किन्तु कोई नियम एवं आधार प्रस्तुत नहीं करते। यदि रभस और रासो की प्रधान भावना को देखा जाय तब अर्थ दोनों का एक ही निकलता है। रासो की प्रधान भावना उत्साह है और 'रभस' भी उसी का द्योतक है।

(८) **रासउ**—'सन्देश रासक' में एक पंक्ति है—

'कह बहुरु विणि वदउ रासउ भासियइ'

इसमें प्रयुक्त 'रासउ' शब्द 'रासक' और 'रासो' के बीच की कड़ी मालूम पड़ता है। सम्भवत: 'रासक' से 'रासउ' और 'रासउ' से रासो शब्द बना लिया गया होगा।

---

[1] **(गार्सां द तासी, इस्तवार द ला लितरात्यूर ऐन्दुई ए ऐन्दुस्तानी। द्वितीय संस्करण, प्रथम भाग, पेरिस, पृ० ३८२-८६) चन्दवरदायी और उनका काव्य (डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी) पृष्ठ सं० ३५२-३५३।**

उपर्युक्त 'रासो' के समानार्थक शब्दों के अतिरिक्त अन्य रासो, रासु, राइसौ, रायसौ, रासा, रायसा, राजादेश से भी रासो की व्युत्पत्ति बताने वाले विद्वानों का अभाव नहीं। किन्तु जितनी भी कल्पनाएँ 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति बताने के सम्बन्ध में की गई हैं वे सब भ्रामक ही हैं। तथ्यपूर्ण निर्देशन कोई भी विद्वान नहीं कर सके। इस विषय पर आज भी अनुसंधान आवश्यक है। इतना अवश्य है कि रासो शब्द का इतिहास एवं विकास अथवा यों कहिए कि व्युत्पत्ति इन शब्दों से परे नहीं। इन्हीं शब्दों के इतिहास में 'रासो' शब्द का इतिहास भी छिपा पड़ा है।

'पृथ्वीराज रासो' का साहित्यिक मूल्यांकन → (1)

हिन्दी साहित्य का आदि महाकाव्य पृथ्वीराज रासो है। विद्वानों का मत है कि काव्य के सृजन में मूलतः तीन वस्तुएँ सहायक होती हैं—

(१) मानव चेतना

(२) अनुभूतियाँ

(३) अभिव्यक्ति

इन तीनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। तात्पर्य यह है कि मानव चेतना के सहारे अनुभूतियों का जन्म होता है और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति, उनका विस्तृतीकरण एवं प्रसार मानव जब स्वयं करता है तब कला का जन्म होता है। काव्य भी एक कला है। अतएव काव्य कला के भी दो पक्ष हुए—भाव पक्ष एवं कला पक्ष। इनको क्रम से अनुभूति पक्ष एवं अभिव्यक्ति पक्ष भी कहते हैं। इन दोनों पक्षों के आधार पर हम पृथ्वीराज रासो का साहित्यिक मूल्यांकन करेंगे।

भाव पक्ष—काव्यानंद ब्रह्मानंद-सहोदर कहा गया है। काव्य की उपयोगिता शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध दृढ़ करने में निहित है। काव्य के द्वारा हमारे मनोभाव उच्छ्वसित होकर नवीन स्फूर्ति प्रदान करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो समस्त प्रकृति हमारे साथ आनन्दानुभव कर रही है। कविता का मुख्य उद्देश्य समष्टि के साथ व्यष्टि का तादात्म्य है। वैसे कविता भाव प्रधान कला है। कला का उद्देश्य सौन्दर्यादर्श का प्रत्यक्षीकरण है। भाव प्रधानता के कारण काव्य प्रेम और सौन्दर्य का चित्रण करता

है। सर्वश्रेष्ठ काव्य में प्रेम और सौन्दर्य का सामंजस्य होता है। किन्तु वह युग वीरता का था। फिर भी पृथ्वीराज रासो में नवरस चेतना के द्वारा मार्मिकता आ गई हैं। 'आदि पर्व' तथा 'वान वेध प्रस्ताव' में यह सुनिश्चित है कि चन्दवरदायी ने भाव पक्ष के अन्तर्गत नवरस योजना का सुन्दर सामंजस्य स्थापित किया है—

उक्ति धर्म विसालस्य, राजनीति, नवं रसं।
षट भाषा पुराणं च कुरानं कथितंमया॥

—आदि पर्व

रासो असंभ नव रस सरस, चन्द छन्द किय अमिय सम।
शृङ्गार बीर करुना बिभछ, भय अद्भुत हंसत सम॥

—वान वेध प्रस्ताव

"पृथ्वीराज रासो' भारत के अन्तिम हिन्दू सम्राट महाराज पृथ्वीराज चौहान का वीरत्व पूर्ण आदर्श एवं दर्प प्रदर्शित करता है। इसमें उनके जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त के संघर्ष एवं युद्ध की कहानी है। इसमें उनके सूर सामन्त आदि के युद्ध कौशल एवं वीरत्वपूर्ण दर्प की झाँकी मिलती है। महाराज पृथ्वीराज के प्रतिद्वन्द्वी गुर्जर नरेश भीमदेव चालुक्य, कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द तथा गजनी के सुलतान शहाबुद्दीन गोरी की युद्ध विषयक क्रियाओं का सविस्तार उल्लेख किया गया है। अत: यह मूलत; वीररस प्रधान काव्य है और इसमें तत्कालीन आदर्श वीरत्व का सुन्दर चित्रण किया गया है।

वीर रस—रासो वीर रस प्रधान काव्य है, यह हम पहले कह चुके हैं। पृथ्वीराज रासो में वीर रस का आश्रय पृथ्वीराज है; आलम्बन पृथ्वीराज के घोर प्रतिद्वन्दी गुर्जरनरेश भीमदेव चालुक्य, कान्य कुब्जेश्वर जयचन्द तथा गजनी के अधिपति सुलतान शहाबुद्दीन गोरी हैं। पृथ्वीराज का इन तीन प्रतिद्वन्दियों से युद्ध कौशल, शौर्य, आतंक एवं हस्तलाघव आदि के वीररस पूर्ण चित्र 'पृथ्वीराज रासो' में आदि से अन्त तक भरे पड़े हैं। पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन गोरी से १२ युद्ध किए थे। इन्हीं युद्धों में वीररस का सुन्दर परिपाक हुआ है। एक उदाहरण से हम इसको प्रमाणित करेंगे।

गजनी के अधिपति शाहबुद्दीन गोरी के आक्रमण का समाचार ज्योंही पृथ्वीराज ने सुना त्योंही अपने शूर सामन्तों को बुलाकर युद्ध की तैयारी की—(समय ९, छन्द ७६—७७)

कहत सब्ब सामंत मति, चढ़ि दल सजौ समंकि ।
सुनिव मंत्र कैमास कहि, करहु निसान टमंकि ।

—छं० ७८

भय टामंक निसानै, पत्त निज ग्रेह सूर सामंतं ।
बाजे बज्जि अनेक, हय मंगे राज चहु आनं ।

—छं० ७९

इस प्रसंग में गोरी आलम्बन है, आक्रमण का समाचार पाना उद्दीपन, शूर सामन्तों की गर्वोक्तियाँ तथा इस उदाहरण के ७८ छं० में 'चढ़ि दल सजौ समंकि' तथा 'करहु निसान टमंकि' अनुभाव है और शत्रु दल को पराजित करने के लिए धैर्य एवं विश्वास संचारी है। युद्ध के जुझाऊ नगाड़ों पर चोट पड़ना, अन्य युद्ध वाद्य यंत्रों का बजना एवं पृथ्वीराज का घोड़े का माँगना उत्साह की व्यंजना कराकर वीर रस का परिपाक करते हैं।

रौद्र रस—वीर रसानुभूति के लिए रौद्र रसानुभूति परमावश्यक है। रौद्र रस को वीर रस का सहायक रस माना गया है। वीररस प्रधान काव्य में रौद्र रस खोजने का प्रयत्न करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। अतः हम कह सकते है कि वीर रस और रौद्र रस की अजस्र धारा पृथ्वीराज रासो में आदि से अन्त तक प्रवाहित हो रही है। वीर रस और रौद्र के अतिरिक्त और किसी रस का वर्णन चन्दवरदायी ने उतनी सफलता से नहीं किया। युद्ध-आरम्भ के किसी भी स्थल पर रौद्र रस सुलभता से देखा जा सकता है। युद्ध वर्णन में रौद्र रस की श्रेष्ठ अभिव्यंजना हुई। कोई-कोई स्थल तो युद्ध के अतिरिक्त भी अच्छे बन पड़े हैं। एक उदाहरण हम यहाँ बानगी के लिए उद्धृत करते हैं—

सुनत पंग कवि वयन, नयन श्रतु बदन रत्तबर ।
[illegible] अधर, [illegible] ठर उसासि सास झर ।

कोयल कलमंलि तेन, सुनत विक्रम अरि क्रंमह।
सगुन विचार कमंध, दिष्षि दिसि कंद सु पिम्मह।
आदर सुभट्ट राजिंद किय, अङ्ग ऐंडाइ बिसतारि करि।
नन मिलत मोहिं सभरि धनिय, कहौ बत मुष बिरद वर।

—छं० ५८६ स० ६१

उक्त उदाहरण में कान्यकुब्जेश्वर के दरबार में कवि चन्द ने राजा जयचंद की व्यंग्योक्तियों एवं कटूक्तियों का जो उत्तर दे दिया है वह वर्णित है। चन्द ने पृथ्वीराज के विपुल बल एवं वैभव का भी वर्णन जयचन्द से किया था जिसे सुनकर उसका क्रोध उभर आया था। इसमें पृथ्वीराज और उनका विपुल यश एवं पराक्रम आलम्बन है। सुलतान गोरी, भीमदेव चालुक्य, मेवाती आदि का मान-मर्दन किया जाना उद्दीपन है (यह इसके पूर्व के छन्द में वर्णित है), जयचन्द के नेत्र, कान आदि का फड़कना एवं लाल होना, भृकुटी टेढ़ी होना, होंठ चबाना आदि अनुभाव हैं। पृथ्वीराज के विक्रम को सुनकर अमर्ष से कलमलाना संचारी है। यह सब रौद्र रस का परिपाक करते हैं।

युद्ध स्थल पर वीर के साथ रौद्र रस का प्रतिफलन अवश्यम्भावी है। अतः वीर रस और रौद्र रस संगी रस हैं।

शृङ्गार-रस—पृथ्वीराज रासो में उक्त दो रसों के पश्चात् शृङ्गार रस ही प्रमुख है। वीर रस के साथ-साथ जैसे रौद्र रस का परिपाक हुआ है वैसे ही शृंगार की धारा भी पृथ्वीराज रासो में आद्यंत प्रवाहित हो रही है। वीर प्रायः रति प्रेमी होते ही हैं और फिर पृथ्वीराज रासो पर यह युगीन प्रभाव ही माना जायगा। वह युग युद्ध और विवाह, विवाह और युद्ध का युग था। आल्हा की एक पंक्ति ही इसका विश्लेषण कर देती है—

जाई घर देखी सुघर महरिया।
ताई घर धरहिं बरौना जाय॥

अथवा

जेहि की बिटिया सुन्दर देखी।
तेहि पर डारि धरैं हथियार॥

तात्पर्य यह कि किसी रूपवती कन्या का समाचार पाकर उसका अपहरण करने की प्रवृत्ति प्रत्येक राजा के मन में थी। फलस्वरूप भयंकर युद्ध होते थे। विजित राजा अपनी कन्या से विजयी राजा का पाणिग्रहण कर देता था। पृथ्वी-राज रासो से यह स्पष्ट है कि पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गोरी का पारस्परिक शत्रुता एक स्त्री के कारण ही हुई थी।

पृथ्वीराज रासो में श्रृङ्गार रस के दोनों रूप संयोग एवं वियोग मिलते हैं। किन्तु संयोग श्रृङ्गार की प्रधानता रही है। संयोग श्रृङ्गार की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं का चित्रण कवि चन्दवरदायी ने बड़ी कुशलता से किया है। प्रथम साक्षात्कार एवं प्रथम स्पर्श का मार्मिक चित्रण शशिव्रता के प्रसंग में मिलता है।

दिठ्ठि दिठ्ठि लग्गी समूह। उतकण्ठ सुभग्गिय ॥
निष लज्जनिय नयन। मयन माया रस पग्गिय ॥
छल बल कल चहुग्रान। बाल कुग्रंरप्पन मंजे ॥
बोष त्रीय मिट्टयो। उभय भारी मन रंजे ॥
चौहान हथ्थ बाल गहिए। सो ग्रोपम कवि चन्द कहि ॥
मानों कि लता कंचन लहरि। मत्त वीर गजराज गहि ॥

कवि ने इच्छिनी के प्रसंग में पृथ्वीराज तथा इच्छिनी के परिणय के पश्चात् के मधुर और श्रृंगार पूर्ण अनेक चित्र उतारे हैं।

वियोग श्रृंगार के वर्णन में चन्दवरदायी ने पूर्व राग को हो प्रधानता दी है। पृथ्वीराज के रूप सौन्दर्य, शौर्य, वीर्य आदि गुणों के कारण उसे वर रूप में पाने की कामना उस काल की युवतियों में रही थी। अतः पूर्वानुराग का वर्णन करने में कवि को काफी अवकाश मिल गया था। वैसे मान, प्रवास और करुण बियोग के स्थल भी रासो में मिल जाते हैं।

वियोग श्रृंगार का एक अत्यन्त हृदयग्राही स्थल छन्द ६३३, समय ६६ में मिलता है। सुलतान शहाबुद्दीन के आक्रमण को सुनकर उससे युद्ध करने के निमित्त पृथ्वीराज चले जाते हैं। संयोगिता (नव परिणीता) विरह संतप्त हो बेसुध हो जाती है और भूमि पर पछाड़ खाकर गिर जाती है। उस समय की संयोगिता की विरह दशा और व्यथा का अतीव मार्मिक चित्रण चन्दवरदायी ने निम्नोल्लिखित शब्दों में किया है—

त्रय पपान पोमिनि परषि, घटि साहस घटि एक ।
सुकथ केलि पियूष पिय, जतन करहि सषि केक ।
जतन करहि ससि केक, हाय करि जय जय जंपहि ।
दंत कष्ट कर मिडि, थरकि थरहर जिय कंपहि ।
इह प्रयान त्रय कटत, परी संजोगि धरा छवि ।
सषी करत सव जतन, चलत सयान तहाँ त्रप ।

—छं ६३३, स० ६६

यहाँ वियोग के वास्तविक रूप के दर्शन होते हैं। संयोगिता का यहाँ घड़ी भर में साहस घटना, शरीर थरथराना, दाँत बन्द होना, हृदय धड़कना, अंट शंट मुँह से बकना तथा धरती पर वेसुध हो गिर पड़ना वियोग की मार्मिकता को प्रदर्शित करते हैं।

भाव व्यंजना एवं भाव सौन्दर्य की प्रतिष्ठा करने में कवि चन्द ने कुछ उठा नहीं रखा। वैसे तो रासो में सभी रसों का परिपाक अत्यन्त सुन्दरता से हुआ है किन्तु वीर, रौद्र और शृंगार ही प्रधान हैं। अब हम एक ही उदाहरण देकर भाव व्यंजना का प्रसंग समाप्त करना चाहते हैं।

नव रस

समय १२ में ३५८, ३५९ तथा ३६० छंद एक साथ ही नव रसों की व्यंजना करते हैं। उदाहरणार्थ हम नीचे उन्हें उद्धृत करते हैं—

हय हय हय उच्चार, देव देवासुर भज्जिय ।
हय हय हय उच्चार, धाइ धाइ घट वज्जिय ।
त्रह त्रह त्रह त्रासंत, बहुल षग षंगा गट्टन ।
ठुक ठुक उत्तरिय, बाजि नर नर भर पट्टन ।
हर हार वास हरु भुलिय, ध्रुव मंडल सद्दह डुलै ।
मंगल धनेव मारथ्थ किय, जिन सु ब्रह्म साधन षुले ।
सर्वं ध्यानं बधन सु ब्रह्म, पंच पंच ले तत्त ।
पंच पंच पंचह मिले, अप्प भूत अह बत्त ।
नव जंपि नऊ रस वीर नचै,
भमरा वलि छंद सुकृत्ति सचै ।

रस भौ छह तीय नवं नव थान,
दिष्यो मुष रूप सु चालुक पांन ।
भयौ मुष वीर सू भूप नरिंद,
भयो रस कारुन कट्टत कङ्ग ।
भयौ अदभूत भयानक बत्त,
भयौ रस हास उमा ऋत पत्त ।
भयौ रस रुद्र अदभूत युद्ध,
भयौ तिन मध्य सिगार विरुद्ध ।
भयो रस सन्त भई तिन मुत्ति,
दिषै जनु पल्लव लालित गति ।
टङ्ग टग चाह रहे पल हार,
उठे तहाँ हंकि सुबीर हँकार ।

पृथ्वीराज के मुख पर युद्ध करने का उत्साह था अतः वीर रस हुआ। कंध काटने का दृश्य शोक की व्यंजना करता है अतः करुण रस हुआ। अद्भुत और भयानक प्रगट ही हो रहे थे। उमा के हृदय में हँसी गुदगुदा रही थी अतः हास्य हुआ। अद्भुत के साथ रौद्र का अस्तित्व प्रत्यक्ष प्रगट हो रहा था। वीर रस का विरोधी शृंगार भी झलक रहा था। जो वीर गति प्राप्त कर चुके थे उनके हृदय में शान्त रस दृढ़ हो गया था (तभी वे वीर गति को प्राप्त हुए)।

चन्दवरदायी ने इस प्रकार समस्त भावों (उत्साह, क्रोध, जुगुप्सा, भय, हास्य, आश्चर्य, निर्वेद, रति, शोक,) की अनुपम व्यंजना की है जो आदि कवि के लिए अनूठी है और स्पृहणीय भी।

ऋतु-वर्णन प्रस्तुत करने में कवि ने विशेष कौशल से कार्य लिया है। प्राकृतिक सौन्दर्य के मनोरम एवं मनोहर दृश्यों का स्पष्टीकरण कवि ने अत्यन्त स्वाभाविकता से किया है। प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर चन्दवरदायी आनंदातिरेक से विह्वल हो उठे और विलक्षण नूतनता से 'कनवज्ज समय' में षट ऋतुओं का लालित्य पूर्ण मोहक वर्णन प्रस्तुत करने में समर्थ हुए हैं। यदि

यह वर्णन 'पृथ्वीराज रासो' में से निकाल दिया जाय तो प्रकृति-सौन्दर्य का अभाव 'पृथ्वीराज रासो' की एक महान क्षति होगी। दरबारी कवि होने के कारण चन्द जितना सुन्दर वर्णन शृंगार का कर सके हैं उतना प्रकृति का नहीं। उनकी मनोवृत्ति प्रकृति के मनोरम दृश्यों की ओर नहीं गई। उन्हें तो युद्ध और वीरत्व ही प्रिय लगा है।

कला पक्ष—काव्य का कला पक्ष अथवा अभिव्यक्ति पक्ष भाषा, अलङ्कार, छन्द, रीति, गुणादि से समन्वित होता है। भावों को काव्य की आत्मा, कला को शरीर, मनोगत भावों का प्रकटीकरण करने वाला साधन भाषा है। यही तीनों कला पक्ष के विषय हैं। कला अथवा कुशलता अथवा प्रतिभा द्वारा कवि अपने काव्य का कला पक्ष सुगठित, सुन्दर एवं सुव्यवस्थित बना सकता है। काव्य में रस अंगी है यह हम पहले कह चुके हैं। इस अंगी के अंग छंद, अलंकार, गुण, रीति, एवं व्यंग्य आदि हैं, जो काव्य के उत्कर्ष एवं पूर्णत्व में सहायक होते हैं। हम रस के इन्हीं अंगों के दृष्टिकोण से 'पृथ्वीराज रासो' का मूल्यांकन करेंगे।

अलंकार विधान—"भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी-कभी सहायक होने वाली युक्ति अलंकार है।"[१] केशवदास तो यहाँ तक कहते हैं—"भूषण बिनु न विराजई, कविता, बनिता मित्त", तात्पर्य यह कि बिना अलंकारों से कविता का उत्कृष्ट रूप प्रकट नहीं हो सकता। अलंकारों द्वारा भावों का उत्कर्ष होता है।

चन्दवरदायी ने 'पृथ्वीराज रासो' में अलंकारों के प्रयोग में स्वाभाविकता की रक्षा की है। पाण्डित्य प्रदर्शनार्थ अलंकारों का व्यवहार उसने कहीं नहीं किया। 'पृथ्वीराज रासो' में प्रयुक्त अलंकार भाव-सौंदर्य एवं अभिव्यक्ति-कौशल का प्रतिनिधित्व करते हैं। अलंकारों के लिए चन्दवरदायी को माथा पच्ची करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। उसके काव्य में अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। चन्द ने अपनी कविता में कामिनी की सहज सुन्दरता को शब्दा-

---

[१] **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल**

लंकारों एवं अर्थालंकारों द्वारा अतीव भार से नहीं दबाया वरन उतने ही अलंकार पहनाए जो उसके स्वाभाविक रूप को द्विगुणित करने में सहायक रहें। व्यर्थ की भरमार से सौन्दर्य को नष्ट करने की प्रवृत्ति चंद की कभी नहीं रही।

शब्दालंकारों में विशेष रूप से अनुप्रास या वृत्यनुप्रास प्रयुक्त किया गया है वैसे यमक एवं वक्रोक्ति की भी कमी नहीं है। वर्णनात्मक काव्य में अनुप्रास का बाहुल्य सराहनीय होता ही है।

अर्थालंकारों में चन्द को विशेष प्रेम उत्प्रेक्षा से रहा है। रूपक, उपमा आदि का स्थान दूसरा रहा है। अर्थालंकार भावोत्कर्ष में बहुत अधिक सहायक होते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' में मुख्य अर्थालंकार उत्प्रेक्षा, रूपक, उपमा, रूपकातिशयोक्ति, स्मरण, प्रतीप, भ्रान्तिमान, सन्देह, उदाहरण, अतिशयोक्ति एवं दृष्टान्त हैं। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि 'पृथ्वीराज रासो' में इन अलंकारों के अतिरिक्त अन्य अलंकारों का प्रयोग ही नहीं किया गया। अन्य अलंकार भी प्रयोग में आये हैं, किन्तु न्यून मात्रा में।

छन्द विधान—वर्ण, मात्रा, लय, गति, यति आदि के नियमों से समन्वित शैली को छन्द कहते हैं। कविता के लिये छन्द उतना आवश्यक नहीं जितना भाव आवश्यक है। उच्च कोटि की कविता में छन्द का बन्धन नहीं होना चाहिए। कॉलरिज का कथन स्पष्ट ही है—

"Poetry of highest kind may exist without meter."

किन्तु कॉलरिज के सिद्धान्त का प्रतिपादन 'पृथ्वीराज रासो' में नहीं मिलता। रासो में प्रयुक्त छन्दों पर कवि का मानो अधिकार रहा है। छन्द-विधान में उसकी छन्द-योजना-प्रतिभा का स्पष्टीकरण हो जाता है। डा० नामवर सिंह की पंक्तियाँ चन्दवरदायी के छन्द योजना के कौशल पर प्रकाश डालती हैं—

"वस्तुतः हिन्दी में चंद को छन्दों का राजा कहा जा सकता है। भाव भंगिमा के साथ-साथ दनादन भाषा नए-नए छन्दों की गति धारण करती चलती है और विशेषता यह कि बल खाती हुई नदी में, बहते हुए चित्त में कोई मोड़ नहीं खटकता। छन्द-परिवर्तन के प्रवाह में सहज आत्म-विस्मृति का ऐसा

सुख अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। रासो एक ही साथ संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश की छन्द-परम्परा के पुनरुज्जीवन तथा हिन्दी के नूतन छन्द संगीत के सूत्रपात की संधिबेला है। इस तमाम छन्द-संघठन में भी रासो का अपना हिन्दी काव्योचित संगीत सर्वोपरि है।

ध्यान पूर्वक अध्ययन करने पर रासो में ७२ प्रकार के छन्दों का प्रयोग मिलता है किन्तु छप्पय छन्द को प्रमुखता दी गई है। हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं—"चन्दवरदाई छप्पयों का राजा था।..........वैसे तो हर तलवार की झंकार में चन्दवरदायी त्रोटक, तोमर, पद्धरी और नाराच पर उतर आते हैं, पर जमकर वे छप्पय और दूहा ही लिखते हैं।" छन्दों के दृष्टिकोण से 'पृथ्वीराज रासो' एक उत्कृष्ट महाकाव्य है।

भाषा विधान—पृथ्वीराज रासो में भाव, रस एवं पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग सर्वत्र मिलता है। यह सब चन्द के भाषाधिकार एवं भाषा-औचित्य का प्रकाशन है। भाषा में शब्द-चयन, पदप्रयोग की सार्थकता, भाव-प्रतिफलन, एवं ध्वन्यात्मकता तथा नाद-सौदर्न्य आदि विधेय लक्षरण हैं। ये सब 'कनवज्ज समय' के अन्तर्गत ऋतु-वर्णन में एक साथ ही बैठा दिए गए हैं। चन्द की शब्द-योजना इतनी समर्थ है कि वर्णनीय वस्तु का चित्र सा खड़ा हो जाता है। शब्दों पर उनका पूर्ण नियन्त्रण है मानो शब्द उनके इशारे पर नाचते हों। 'पृथ्वीराज रासो' भाषा के दृष्टिकोण से भी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण काव्य है।

अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रासो साहित्यिक दृष्टि से एक उत्कृष्ट महाकाव्य है। चन्दवरदायी की दूरदर्शिता, वाह्य एवं अन्तरंग प्रकृति-पर्यवेक्षण शक्ति, भाव माधुरी, व्यापक ज्ञान गरिमा एवं सजीव भाव प्रतिभा का अत्युत्तम उदाहरण 'पृथ्वीराज रासो' है। सजीव अलंकृत, मधुर, प्रांजल भाषा, सजीव शब्दचित्र निर्माणकारिणी कुशलता और कहाँ मिल सकती है। तात्पर्य यह है कि 'पृथ्वीराज रासो' भाव-पक्ष एवं कलापक्ष के सामंजस्य का अनूठा निदर्शन है।

रासो-काव्य-परम्परा और 'पृथ्वीराज रासो'

रासो-काव्य-परम्परा

चन्दवरदायी हिन्दी-परम्परा के आदि कवि और अपभ्रंश-परम्परा के अन्तिम कवि थे। अपभ्रंश-परम्परा में रासो का विकास हुआ जिसका सबल

प्रमाण कवि अहमाण (अब्दुल रहमान) कृत 'सन्देश रासक' है। तब से रासो अथवा रासक की परम्परा आधुनिक युग तक चली आ रही है। अपभ्रंश से पूर्व प्राकृत एवं संस्कृत में रासो का मूल नहीं मिलता। अपभ्रंश से गुजराती में रासो की परम्परा आई और फिर राजस्थानी एवं हिन्दी में फैलती गई।

संदेश रासक—रासो-परम्परा में प्रथम प्रामाणिक कृति 'संदेश रासक' है। इसका प्रणयन मुलतान के मुस्लिम कवि अब्दुल रहमान ने किया था। राहुल सांकृत्यायन इस कृति का रचनाकाल विक्रम सम्वत ११ वीं शताब्दी मानते हैं और मुनि जिनविजय के अनुसार इसकी रचना वि० सं० की १२ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध अथवा १३ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मानी जाती है। इसकी कहानी अत्यन्त सरल एवं हृदय स्पर्शी है। प्रोषितपतिका नायिका का अभूतपूर्व विरह अत्यन्त भावुकता से वर्णित किया गया है। मुलतान जाते हुए किसी पथिक को एक ऐसी प्रोषितपतिका मिलती है जिसका पति भी कार्यवश मुल-तान गया हुआ है। उसी पथिक के साथ प्रोषितपतिका अपने प्रवासी पति को प्रेम-सन्देश भेजती है। यह सन्देश अत्यन्त करुण है। इसमें वेदना है, टीस है और है अमर प्रेम की झाँकी। आन्तरिक अनुभूति की व्यंजना बड़ी ही मार्मिक है। ऋतु-वर्णन भी अत्यन्त सुन्दर एवं स्वाभाविक है।

मंजुरास—डाक्टर विपिनबिहारी त्रिवेदी ने 'सन्देश रासक' से भी पूर्व के एक ग्रन्थ 'मंजुरास' का उल्लेख अपने 'रेवातट' नामक ग्रन्थ में किया है। हेमचन्द्रकृत 'सिद्धहेमशब्दानुशासनम्' तथा मेरुतुंग कृत 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में 'मंजुरास' के कतिपय छन्द मिलते भी हैं। 'मंजुरास' में मालवा के राजा मुंज और कर्नाटक के राजा तैलप की बहिन मृणालवती की प्रेम कहानी वर्णित है।

भरतेश्वर बाहुबलीरास

सं० १२४२ में इसी परम्परा के दो ग्रन्थ और मिलते हैं जिनकी रचना शालिभद्र सूरि ने की है—'भरतेश्वर बाहुबलो रास' तथा 'बुद्धिरास'।

'भरतेश्वर बाहुबली रास' अत्यधिक महत्वपूर्ण है। उसमें ऋषभदेव के दो पुत्र भरतेश्वर तथा बाहुबली के युद्ध का सविस्तार वर्णन किया गया है। दोनों

भाइयों के पारस्पिरिक युद्ध एवं गृह-कलह का वास्तविक सुन्दर चित्रण शालिभद्र सूरि की विशेषता है । शालिभद्र सूरि ने युद्ध कला का बड़ी कुशलता से वर्णन किया है ।

इसी बीच में एक अन्य ग्रन्थ 'उपदेश रसायन रास' और लिखा गया जिसके रचयिता जिनदत्तसूरि हैं । यह ग्रन्थ वीरकाव्य-परम्परा की कोटि में नहीं माना जाना चाहिए क्योंकि यह नीति-काव्य-शैली में लिखा गया है। और इसमें जैन-धर्म सम्बन्धी सामग्री का बाहुल्य है । यह ग्रन्थ जैन धर्माचारों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करता है ।

इसी काल के कुछ अन्य ग्रन्थ :—

(१) कवि आसगु कृत 'जीवदया रास' तथा 'चंदन बाल रास',

(२) कवि देल्हणकृत 'गयसुकुमाल रास',

(३) जीवंधरकृत 'मुक्तावलि रास'

आदि विशेष उल्लेखनीय हैं ।

डिंगल तथा पिंगल में रास या रासो नामक ग्रन्थों की परम्परा मिलती है । इन ग्रन्थों में भी चरित्र प्रधान है किन्तु कथानक एवं शैली में भिन्नता है । अपभ्रंश की विषय बस्तु एवं शैली इन ग्रन्थों से मेल नहीं खाती ।

१२ वीं शताब्दी से १५ वीं शताब्दी के बीच रासो-परम्परा का पर्याप्त विकास हुआ । कुछ रासो ग्रन्थों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं—

(१) बीसलदेव रास

(२) जम्बू स्वामी रास

(३) रेवन्तगिरि रास

(४) कछूली रास

(५) गोतम रास

(६) दशार्णभद्र रास

(७) वस्तुपाल-तेजपाल रास

(८) श्रेणिक रास

(९) पेथड़ रास

(१०) समरसिंह रास

बीसलदेव रासो—यह रासो-परम्परा का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके रचयिता कवि नरपति नाल्ह हैं। यह ग्रन्थ केवल १०० पृष्ठों का है और गीत के रूप में है। आचार्य शुक्ल के अनुसार यह ग्रन्थ वीरगीत के रूप में सबसे प्राचीन है। इसमें समयानुसार भाषा के परिवर्तन का आभास भी मिलता है।[1] इसे वीर-काव्य परम्परा का ग्रन्थ न मानकर प्रेम-गीत परम्परा का ही मानना चाहिए। क्योंकि इसमें वीर-भावों का चित्रण कहीं भी नहीं मिलता।

इस ग्रन्थ में कवि ने प्रेम और विरह के मधुर चित्र खींचे हैं। वियोग का वर्णन अत्यन्त मार्मिक है। कवि की सहृदयता एवं भावुकता का दिग्दर्शन राजमती का विरह ही है। कलापक्ष का निर्वाह कवि ने अच्छी तरह नहीं किया है। छन्द-दोषों का तो बाहुल्य है।

कुछ रासो ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियों की खोजों में पं० मोतीलाल मेनारिया, पं० नरोत्तम स्वामी, डाक्टर दशरथ शर्मा तथा श्री अगरचन्द नाहटा के कार्य स्तुत्य हैं। इन्होंने १७-१८ तथा १९ वीं शताब्दी में रचित कतिपय रासो ग्रन्थों का पता लगाया है।

१—सत्रहवीं शताब्दी के रासो ग्रन्थ—

(१) 'कुमार पाल रास' रचयिता ऋषभदास
(२) 'राम रासो' रचयिता माधौदास
(३) 'विनोद रास' रचयिता सुमतिहंस

२—अठारहवीं शताब्दी के रासो ग्रन्थ—

(१) 'छत्रसाल रासो' रचयिता डूँगर सी
(२) 'सगतसिंह रासो' रचयिता गिरधर चारण
(३) 'खुम्माण रासो' रचयिता दलपति विजय

३—उन्नीसवीं शताब्दी के रासो ग्रन्थों में 'श्रीपाल रास' विशेष उल्लेखनीय है।

खुम्माण रासो—के सम्बन्ध में शुक्ल जी का कहना है कि—"यह नहीं कहा जा सकता कि इस समय जो खुमान रासो मिलता है, उसमें कितना अंश

[1] आचार्य शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २८

पुराना है। उसमें महाराज प्रतापसिंह तक का वर्णन मिलने से यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि जिस रूप में यह ग्रन्थ अब मिलता है, वह उसे वि० सं० की १७ वीं शताब्दी में प्राप्त हुआ होगा। यह नहीं कहा जा सकता कि दलपति विजय असली खुमान रासो का रचयिता था अथवा उसके परिशिष्ट का।"[१]

अतः उस ग्रन्थ के विषय में पर्याप्त उपलब्ध सामग्री का अभाव है। रचना काल के विषय में भी भिन्न-भिन्न मत मिलते हैं।

इन्हीं तीन शताब्दियों के बीच कुछ हास्य मिश्रित रासो-ग्रन्थों का भी प्रणयन हुआ है :—

(१) माकड़ रासो
(२) ऊँदर रासो
(३) खीचड़ रासो
(४) गोधा रासो

उपर्युक्त समस्त रासो ग्रन्थ डिंगल में लिखे गए हैं। अब हम वीरगाथा काल के ऐसे ग्रन्थों का उल्लेख करेंगे जो पिंगल अथवा राजस्थानी तथा ब्रज भाषा अथवा प्राचीन ब्रजभाषा में लिखे गए हैं। कतिपय ग्रन्थ नीचे उद्धृत हैं :—

(१) हमीर रासो—शार्गंधर कृत
(२) परमाल रासो—अज्ञात
(३) विजैपाल रासो—नल्ल सिंह भट्ट
(४) करहिया को रायसो— गुलाब कवि कृत
(५) कायम रासो—जान कवि कृत
(६) रतन रासो—कुंभ कर्ण चारण कृत
(७) राणा रासो—सिघायच दयाल दास कृत
(८) हम्मीर रासो—जोधराज कृत
(९) बुद्धि रासो —जल्ह कवि कृत
(१०) राउ जैत सी रौ रासो—अज्ञात

---

[१] हिन्दी साहित्य का इतिहास, (आचार्य शुक्ल) पृ० सं० ३९

उक्त रासो काव्यों में प्रथम तीन विशेष ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। 'परमाल रासो' के रचयिता का नाम अभी तक अन्धकार से आवृत्त है। युद्धों के विशेष वर्णन के साथ प्रेम के सौन्दर्य-चित्र भी इन काव्यों में मिलते हैं।

'पृथ्वीराज रासो' का रासो-परम्परा के काव्यों में स्थान

'पृज्वीराज रासो' की रचना वि० सं० १५१७ और १६४२ के मध्य में हुई थी, ऐसा डाक्टर हीराचन्द गौरीशंकर ओझा का कथन है। इसके पूर्व रासो काव्यों में 'मंजुरास, संदेश रासक, भरतेश्वर बाहुबली रास, बीसलदेव रास,' की रचना हो चुकी थी। 'पृथ्वीराज रासो' के परवर्ती रासो काव्यों में तीन ही प्रमुख हैं यथा हम्मीर रासो, परमाल रासो तथा विजैपाल रासो। परवर्ती एवं पूर्ववर्ती रासो काव्य 'पृथ्वीराज रासो' की बराबरी नहीं कर सकते। 'पृथ्वीराज रासो' विशाल काव्य ग्रन्थ है। यह महाकाव्य है। महाकाव्य के समस्त लक्षणों का निर्वाह इसमें मिलता है। 'पृथ्वीराज रासो' का सर्वाधिक मान है। इतना मान उस काल के अन्य किसी भी ग्रन्थ का नहीं। मिश्रबन्धु कहते हैं—"चन्दवरदायी की कविता से प्रकट होता हैं कि वह प्रौढ़ रचना है और छंद आदि की रीतियों पर उसमें ऐसा अनुगमन हुआ है, जान पड़ता है यह महाशय दृढ़ रीतियों पर चलते थे, और स्वयं इन्हीं ने **हिन्दी काव्य रचना की नींव डाली**।"

हिन्दी के आदि कवि चन्दवरदायी की रचना 'पृथ्वीराज रासो' रासो-काव्य-परम्परा का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। कवि चन्द ने इसमें सजीवता, भाव माधुरी, व्यापक ज्ञान गरिमा आदि का चित्रण कर अपने को कृत कृत्य कर लिया। रासो काव्य परम्परा में ऐसा अद्भुत ग्रन्थ अन्य कोई भी नहीं।

पृथ्वीराज रासो : एक सफल महाकाव्य

भारतीय लक्षण ग्रन्थों के आधार पर 'पृथ्वीराज रासो' को एक सफल महाकाव्य माना जा सकता है। अनेक विद्वान 'पृथ्वीराज रासो' को हिन्दी का प्रथम महाकाव्य मानते आए हैं। जैसे—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बाबू गुलाबराय, पं० मोतीलाल मेनारिया, डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी, काशी नागरी प्रचारिणी

सभा द्वारा प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' के समस्त सम्पादक (डा० श्यामसुन्दरदास को छोड़कर) पृथ्वीराज रासो को महाकाव्य मानते हैं।

आचार्य शुक्ल उसे 'हिन्दी का प्रथम महाकाव्य' कहते हैं। गुलाबराय 'स्वाभाविक विकास शील महाकाव्य (Epic of growth)' मानते हैं। मोतीलाल मेनारिया ने उसमें 'महाकाव्य की भव्यता और दृश्य काव्य की सजीवता' देखी है। डा० विपिनबिहारी ने कतिपय त्रुटियाँ होने पर भी हिन्दी के इस प्रबन्ध काव्य को निर्विवाद रूप से महाकाव्य सिद्ध करने में कुछ उठा नहीं रखा। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के सम्पादक भी 'साहित्य दर्पण' में निर्देशित लक्षणों के आधार पर उसे महाकाव्य मानते हैं।

किन्तु कुछ विद्वान ऐसे भी हैं जो 'पृथ्वीराज रासो' को महाकाव्य मानने में हीनत्व की भावना रखते हैं। उनके मत हम क्रमशः नीचे उद्धृत करते हैं :—

१. डाक्टर श्यामसुन्दरदास का मत

"वीर गाथा सम्बन्धी प्रबन्ध-काव्यों में दूसरी प्रसिद्ध पुस्तक चन्दवरदायी कृत पृथ्वीराज रासो है। इस विशालकाय ग्रन्थ को हम महाकाव्यों की उस श्रेणी में नहीं गिन सकते जिसमें यूनान के प्रसिद्ध महाकाव्य इलियड आदि तथा भारतवर्ष के रामायण, महाभारत आदि की गणना होती है। ये महाकाव्य तो एक समस्त देश और एक समस्त जाति की स्थायी सम्पत्ति हैं—इनमें जातीय सभ्यता तथा संस्कृति का सार अन्तर्निहित है। यह सत्य है कि पृथ्वीराज रासो भी एक विशाल काव्य ग्रन्थ है और यह भी सत्य है कि महाकाव्यों की ही भाँति इसमें भी युद्ध की प्रधानता है, पर इतने ही साम्य के आधार पर उसे महाकाव्य कहलाने का गौरव नहीं प्राप्त हो सकता। महाकाव्य में जिस व्यापक तथा गम्भीर रीति से जातीय चित्तवृत्तियों को स्थायित्व मिलता है, उनका पृथ्वीराज रासो में सर्वथा अभाव है। महाकाव्य में यद्यपि एक ही प्रधान युद्ध होता है, तथापि उसमें दो विभिन्न जातियों का संघर्ष दिखाया जाता है और उसका परिणाम भी व्यापक तथा विस्तृत होता है। पृथ्वीराज रासो में न तो कोई एक प्रधान युद्ध है और न किसी महान परिणाम का उल्लेख ही है। सबसे प्रधान बात तो यह है कि पृथ्वीराज रासो में घटनाएँ एक दूसरे से

असम्बद्ध हैं तथा कथानक भी शिथिल और अनियमित हैं; महाव्यों की भाँति न तो घटनाओं का किसी एक आदर्श में संक्रमण होता है और न अनेक कथानकों की एकरूपता ही प्रतिष्ठित होती है। ऐसी अवस्था में पृथ्वीराज रासो को महाकाव्य न कहकर विशालकाय वीर काव्य कहना ही संगत होगा।"[1]

२. डाक्टर उदयनारायण तिवारी का मत

"इसमें सन्देह नहीं कि लक्षण ग्रन्थों के अनुसार 'रासो' को महाकाव्य कहना उपयुक्त होगा। यह ६९ समयों में विभक्त है। इसमें कवित्त, दूहा, तोमर, त्रोटक, गाहा, आर्या आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। इसके नायक पृथ्वीराज क्षत्रिय-कुल-भूषण वीर पुरुष हैं। अन्य वर्णन-विस्तार भी, जो महाकाव्य के लिये अनिवार्य हैं, पृथ्वीराज रासो में मिल जाते हैं, किन्तु जहाँ तक महाकाव्य में जातीय-चित्तवृत्ति तथा कार्य-कलाप की अभिव्यक्ति का प्रश्न है 'रासो' को एक विशाल काय वीर काव्य ग्रन्थ कहना ही उचित है। स्थान-स्थान पर इसके कथानक में शिथिलता है। कथानक की घटनाओं में एकरूपता का भी अभाव है।"[2]

उपर्युक्त दोनों मत 'पृथ्वीराज रासो' को महाकाव्य नहीं ठहराते। अतः इसका विश्लेषण करना होगा। डा० श्यामसुन्दरदास तो 'इलियड' के आधार पर 'पृथ्वीराज रासो' में महाकाव्यत्व ढूँढ़ते हैं अतः वे पाश्चात्य लक्षण ग्रन्थों से प्रभावित हैं। और डाक्टर उदयनारायण तिवारी इसे निस्संदेह महाकाव्य स्वीकार करते हुए भी अस्वीकार करते हैं। "इसमें सन्देह नहीं कि लक्षण ग्रन्थों के अनुसार 'रासो' को महाकाव्य ही कहना उपयुक्त होगा।" इनकी दुतरफा बात का कुछ अर्थ निकलता है अथवा नहीं पाठक स्वयं विचार करें। हाँ इतना अवश्य ही न भूलना चाहिए कि चन्दवरदायी ने किन-किन परिस्थितियों में रहकर अपने काव्य का सृजन किया ? ग्रन्थ सृजन में उसने अपना कौनसा दृष्टिकोण रखा ? कौनसी परिस्थितियों से प्रभावित हुआ और उनका कैसा निरूपण अपने काव्य में किया ? भारतीय विद्वान पाश्चात्य आलोचना के

---

[1] हिन्दी साहित्य, पृ० सं० ८१—८२, डा० श्यामसुन्दरदास।

[2] वीरकाव्य, पृ० सं० १०६—१०७, डा० उदयनारायण तिवारी।

नियमों के आधार पर भारतीय सभ्यता एवं आदर्श में पले हुए कलाकार की कृति को मापें तो अवश्य ही दोनों विद्वानों के मत सराहनीय माने जा सकते हैं। वैसे यह उचित नहीं।

हम तो 'पृथ्वीराज रासो' के महाकाव्यत्व की परीक्षा भारतीय लक्षण ग्रन्थों के नियमों के आधार पर करना ही उचित मानते हैं। जिनमें आचार्य दण्डीकृत 'काव्यादर्श', आचार्य हेमचन्दकृत 'शब्दानुशासनम्' तथा आचार्य विश्वनाथ कृत 'साहित्य दर्पण' विशेषोल्लेखनीय हैं। विश्वनाथ कृत 'साहित्य दर्पण' अत्यन्त व्यवस्थित, उत्कृष्ट एवं सर्व-मान्य ग्रन्थ है। इसमें महाकाव्य के लक्षणों का निर्देश विश्वनाथ ने दस श्लोकों में किया है। यहाँ हम प्रत्येक श्लोक में निर्देशित महाकाव्य के लक्षणों के आधार पर 'पृथ्वीराज रासो' की परीक्षा करते हैं :—

सर्ग बन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ॥१॥

अर्थात् महाकाव्य सर्गबद्ध होता है। इसका एक नायक, जो देवता अथवा धीरोदात्त गुणों वाला, उच्च क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुआ हो, होता है।

'पृथ्वीराज रासो' विशाल काय चरित काव्य है। इसमें पृथ्वीराज चौहान की कीर्तिगाथा ६९ समयों (सर्गों) में वर्णित की गई है। कवि ने सर्गों के स्थान पर 'समय' अथवा 'प्रस्ताव' नाम रखे हैं। समस्त कथा 'पृथ्वीराज रासो' के चरित नायक पृथ्वीराज चौहान के जीवन से गुँथी हुई है।

धीरोदात्त नायक के समस्त लक्षणों से समन्वित, उच्च चौहान कुलोत्पन्न क्षत्रिय पृथ्वीराज चौहान इस काव्य का नायक है। शाकम्भरी नरेश सोमेश्वर का सुपुत्र है। वह त्यागी, कार्य कुशल, कुलीन, लक्ष्मीवान, रूपवान, यौवन और उत्साह से पूर्ण, तेजस्वी, श्रद्धा का पात्र, चतुर एवं सुशील, क्षमायुक्त, गम्भीर, महासत्व, प्रच्छन्नगर्वी, आन पर दृढ़ इत्यादि सभी गुणों से समन्वित है पृथ्वीराज में उक्त समस्त गुणों का विकास दिखाया है। शास्त्रोक्त लक्षणों से समन्वित पृथ्वीराज के उदात्त गुणों की एक झाँकी 'पदमावती समय, में पदमावती के सम्मुख शुक प्रस्तुत करता है—

संभरि नरेस चहुआंन थांन ।
प्रथिराज तहाँ राजंत भांन ।।
वैसह बरीस षोड़स नरिंद ।
आजानु बाहु भुअ लोक यंद ।।
संभरि नरेश सोमेस पूत ।
दूवत्त रूप अवतार धूत ।।
सामंत सूर सब्बे अपार ।
भूजान भीम जिम सार भार ।।
जिहि पकरि साह साहाब लीन ।
तिहुँ बेर करिय पानीप हीन ।।
सिंगिन सुसद्द गुनि चढ़ि जंजीर ।
चुक्कइ न सबद बेधंत तीर ।।
बलि देन करन जिमि दान-मांन ।
सत सहस सील हरिचंद समान ।।
साहस सुक्रंम विक्रम जुबीर ।
दांनब सुमत्त अवतार धीर ।।
दसच्यार जानि सब कला भूप ।
कंद्रप्प जानि अवतार रूप ।।

उक्त छन्द में पृथ्वीराज चौहान के विभिन्न गुणों का निदर्शन है ।

एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवेऽपि वा ।
शृङ्गार वीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते ।।२।।

अर्थात् महाकाव्य के नायक एक वंश में उत्पन्न उत्तम वंशीय अनेक राजा भी हो सकते हैं और उसमें शृङ्गार, वीर, शान्त में से कोई एक रस अंगी होना आवश्यक है, अन्य रस अंग बनकर रह सकते हैं ।

'पृथ्वीराज रासो' में चन्दवरदायी ने भाव पक्ष के अन्तर्गत नवरस योजना का सुन्दर सामञ्जस्य स्थापित किया है ।

उक्ति धर्म विसालस्य, राजनीति, नव रसं ।
षट भाषा पुराणं च, कुरानं कथितंमया ।।

—आदि पर्व

रासो असंभ नव रस सरस, चंद छंद किय अमिय सम ।
शृङ्गार बीर करुना विभछ, भय अद्भुत हँसत सम ।।

—बानवेध प्रस्ताव

किन्तु फिर भी रासो का प्रमुख अथवा अंगी रस वीर ही है । वीर के साथ रौद्र और शृङ्गार की धारा त्रिवेणी के रूप में आदि से अन्त तक प्रवाहित है ।

रासो वीर रस प्रधान काव्य है । 'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज वीररस का आश्रय है । आलम्बन हैं पृथ्वीराज के घोर प्रतिद्वन्दी गुर्जर नरेश भीमदेव चालुक्य, कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द तथा गजनी के अधिपति सुलतान शहाबुद्दीन गोरी । पृथ्वीराज का इन तीन प्रतिद्वन्दियों से युद्ध-कौशल, शौर्य, आतंक एवं हस्तलाघव आदि के वीर रस पूर्ण चित्र 'पृथ्वीराज रासो' में आदि से अन्त तक भरे पड़े हैं । पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन गोरी से १२ युद्ध किए थे, इन्हीं युद्धों में वीर रस का सुन्दर परिपाक हुआ है । एक उदाहरण से हम इसकी पुष्टि करते हैं—

गजनी के अधिपति शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमण का समाचार ज्योंही पृथ्वीराज ने सुना त्योंही अपने शूर सामंतों को बुलाकर युद्ध की तैयारी की—(समय ९, छं० ७६-७७)

कहत सब्ब सामंत मति चढ़ि दल सजौ समंकि ।
सुनिअ मंत्र कैमास कहि, करहु निसान टमंकि । — छं० ७८

भय टामंक निसान, पत्त निज ग्रेह सूर सामंतं ।
बाजे बज्जि अनेकं, हय मंगे राज चहुआनं । —छं० ७९

इस प्रसंग में गोरी आलम्बन है । आक्रमण का समाचार पाना उद्दीपन, सूर सामंतों की गर्वोक्तियाँ तथा इस उदाहरण के ७८ छं० में 'चढ़ि दल सजौ

समंकि तथ 'करहु निसान टमंकि' अनुभाव है और शत्रु दल को पराजित करने के लिये धैर्य संचारी हैं। युद्ध में जुझाऊ नगाड़ों पर चोट पड़ना, अन्य युद्ध वाद्ययंत्रों का बजना एवं पृथ्वीराज का घोड़ा माँगना उत्साह की व्यंजना कराकर, वीररस का परिपाक करते हैं।

युद्ध वर्णन तो 'पृथ्वीराज रासो' में अद्भुत है। सेना की सज्जा, अस्त्रशस्त्र, तलवारों की चमक, वीरों का गर्जन, भगदड़, रेलपेल, व्यूह-रचना आदि का कौशलपूर्ण वर्णन अन्यत्र मिलता ही नहीं है। युद्धों की प्रधानता के कारण वीर रस प्रधान हो गया है। शृङ्गार रस भी अत्यन्त सशक्त है, किन्तु अंगी नहीं। भयानक एवं वीभत्स की भी कमी नहीं।

अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नानकसंधयः।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ॥३॥

अर्थात् महाकाव्य में नाटकीय सभी संधियाँ आवश्यक हैं। उसका कथानक ऐतिहासिक या लोक प्रसिद्ध सज्जनाश्रित होना चाहिए।

'पृथ्वीराज रासो' में नाटक की संधियों का समावेश कुछ शिथिल है अवश्य। ऐसा लगता है मानो काव्यकार ने उसकी कोई विशेष चिन्ता ही न की हो, किन्तु फिर भी निर्वाह उसे करना ही पड़ा है। नाटक-संधियों का निर्वाह देखिए—

(१) मुख संधि—प्रथम समय में पृथ्वीराज उसके सामंत, चन्दवरदायी तथा संयोगिता के जन्म विषयक पद्यों में मुख संधि है।

(२) प्रतिमुख संधि—चार, पाँच तथा नौ समय प्रतिमुख संधि के अन्तर्गत आते हैं। इनमें पृथ्वीराज चौहान के वंश का प्रसार एवं कथानक के लक्ष्य की ओर इंगित किया गया है।

(३) गर्भ संधि—शहाबुद्दीन के साथ हुए अनेक युद्ध गर्भ-संधि के विषय हैं।

(४) अविमर्श संधि—पृथ्वीराज का पराजित होकर बंदी होना अविमर्श संधि में आता है।

(५) निर्वहण संधि—चन्द और पृथ्वीराज का कटार मारकर अपने प्राण उत्सर्ग कर देना निर्वहण संधि का विषय है। इस प्रकार नाटक की पाँचों संधियाँ 'पृथ्वीराज रासो' में पाई जाती हैं।

'पृथ्वीराज रासो' का कथानक नितांत ऐतिहासिक तो नहीं कहा जा सकता फिर भी कल्पना के मेल से ऐतिहासिकता में सौन्दर्य अवश्य आ गया है। वैसे कथानक के नायक पृथ्वीराज चौहान ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। अन्य लगभग सभी पात्र भी ऐतिहासिक ही हैं।

चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ॥४॥

अर्थात् महाकाव्य में अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष में से कोई एक फल होना आवश्यक है और आरम्भ में मंगलाचरण अथवा आशीर्वाद, नमस्कार या वस्तु निर्देश होता है।

'पृथ्वीराज रासो' में अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष में से मोक्ष को साध्य माना है। वैसे रासोकार को हेय एक भी नहीं जैसा कि-उसके कथन से स्पष्ट है—

पावहि सु अरथ अरु ध्रम्म काम।
निरमान मोष पावहि सुधाम।

—सं० ६३, छं० २२२

'पृथ्वीराज रासो' का आदि मंगलाचरण से होता है। चन्दवरदायी ने 'ऊँ' की स्तुति से अपने काव्य का प्रारम्भ किया—

ऊँ आदि देव प्रनम्य नम्य गुरयं बानीय वंदे पयं।
सिष्टं धारन धारयं वसुमती च लच्छीस चरनाश्रयं॥
तं गुं तिष्टति ईस दुष्ट दहनं, सुरनाथ सिद्धि श्रयं।
थिर चर जंगम जीव चंद नमयं, सर्वेस वर्दामियं॥

ऊँ स्तवन के तुरन्त पश्चात ही चंद ने धर्मस्तुति, कर्मस्तुति तथा मुक्ति स्तुति की है। वह पूर्ववर्ती कवियों का स्मरण करते हुए उनको गौरव देता है।

अपनी पत्नी की शंकाओं का समाधान करता है। दुर्जन सज्जन-पुरुषों का स्वभाव वर्णन करता है और फिर सरस्वती, गजानन शंकर की स्तुति करता है। तत्पश्चात् पृथ्वीराज चौहान की कीर्ति वर्णों में बाँधकर सार सहित प्रसारित करता है।

क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम् ।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्य वृत्तकैः ॥५॥

अर्थात् महाकाव्य में कहीं खलों की निन्दा, कहीं सज्जनों का गुण कीर्तन होता है।

'पृथ्वीराज रासो' में निंदा तथा गुण-कीर्तन की परम्परा दिखाई देती है। चंद ने अपने महाकाव्य में दोनों का सत्कार किया है—

सरस काव्य रचना रचौ। खल जन सुनि न हसंत ॥
जैसे सिंधुर देखि मग। स्वान स्वभाव घुसंत ॥

—छं० ५१

तौ पनि निमित्त सुजन गुन। रचिये तन मन फूल ॥
जूका भय जिय जानिकै। क्यों डारियै दुकूल ॥

—छं० ५२

नाति स्वल्पा नाति दीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह ।
नाना वृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ॥६॥

अर्थात् महाकाव्य में न बहुत बड़े और न बहुत छोटे आठ सर्ग होने चाहिए। प्रत्येक सर्ग में एक छंद हो। अन्त में छन्द भिन्न हो। किसी-किसी सर्ग में अनेक छंद भी हो सकते हैं।

'पृथ्वीराज रासो' में कुल ६९ सर्ग (समय) हैं। सर्गों में छन्दों का विभाजन असमान है। यह असमानता कवि के कथा-सम्पादन कौशल में व्याघात उपस्थित करती है।

'पृथ्वीराज रासो' के प्रत्येक सर्ग में एक प्रकार के छन्द का प्रयोग नहीं मिलता। उसका समस्त काव्य छन्दों का अजायबघर है। उसमें ७२ प्रकार के

छन्दों का प्रयोग किया गया है। चन्द ने काव्य में छन्द परिवर्तन के नियम का निर्वाह किया है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी कहते हैं "रासो के छन्द जब बदलते हैं तो श्रोता के चित्त में प्रसंगानुकूल नवीन कंपन उत्पन्न करते हैं।"[१] तात्पर्य यह है कि चन्द छन्द-प्रयोग में कुशल हैं।

सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।
संध्यासूर्येन्दुरजनी प्रदोष ध्वान्तवासराः ॥७॥
प्रातर्मध्यान्ह मृगया शैलर्तु वनसागराः ।
संभोग विप्रलम्भौ च मुनि स्वर्गपुराध्वराः ॥८॥
रण प्रयाणोपयममन्त्र पुत्रो दयामयः ।
वर्णनीया यथायोगं सांगोपांगा अमी इह ॥९॥

अर्थात् सर्ग के अन्त में भावी कथा की सूचना हो। संध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रभात मध्यान्ह, शिकार, पर्वत, ऋतु, वन, सागर, संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यश, युद्ध, यात्रा, विवाह, यंत्र, मन्त्र, और अभ्युदय आदि विविध प्रसंगों पर यथोचित सांगोपांग वर्णन हो।

'पृथ्वीराज रासो' में प्रत्येक सर्ग के अन्त में भावी घटनाओं का संकेत नहीं किया गया। किन्तु फिर भी चंद ने अपनी वर्णन शैली का अभूतपूर्व चमत्कार प्रस्तुत कर इस दोष का मार्जन कर लिया है। उसके वर्णन इतने सरस एवं रोचक हैं कि पाठकगण इस दोष को लख ही नहीं पाते और विशृङ्खलित कथानक शृङ्खलाबद्ध हो आगे बढ़ता चलता है।

''पृथ्वीराज रासो' में आचार्य विश्वनाथ कृत 'साहित्य दर्पण' में दिए गए भिन्न-भिन्न वर्णनों का सांगोपांग चित्रण मिलता है। चन्दवरदाई ने अपने काव्य में रूपक योजना द्वारा सात हजार वर्णन प्रस्तुत किए हैं।

सहस सत्त नष सिष सरस, सकल आदि मुनि दिष्य।
घट बढ़ मत कोऊ पढ़ौ, मोहि दूसन न वसिष्य ॥

—छं० ६० सं० १

---

[१] **संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, भूमिका पृष्ठ ६**

सहस सत्त रूपक सरस, गुन सुन्दर बहु वित्त ।
ले पुस्तक कवि चंद को, दिय माता बहु रित्त ।

—छं० ५० सं० ६७

चन्दवरदायी ने अपने काव्यान्तर्गत-वर्णन दो रूपों में प्रस्तुत किए हैं :—

(१) स्वयं वस्तु-वर्णन के रूप में,

(२) पात्रों द्वारा भावव्यंजना के रूप में ।

यहाँ हम उसके द्वारा दिए गए वर्णनों का नाम मात्र गिनाते हैं; विस्तार भय से उदाहरण प्रस्तुत करना एवं उनकी व्याख्या में जाने का लोभ संवरण करना पड़ता है ।

उसने संध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, अन्धकार, दिन, प्रभाव, मध्यान्ह, आखेट, पर्वत, ऋतु, वन, सागर, सम्भोग, विप्रलम्भ, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, युद्ध, यात्रा, विवाह, मन्त्र, पुत्र, अभ्युदय आदि के अत्यन्त सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किये हैं किन्तु उसकी वृत्ति जितनो निम्नोल्लिखित वर्णनों में रमी है । उतनी उक्त वर्णनों में नहीं—

(१) व्यूह वर्णन—

छत्र मुजीक सुअप्पि, जैत दीनौं सिर छत्रं ।
चन्द्र व्यूह अंकुरिय, राज दुअ इहां इकत्रं ।
एक अग्र हूसेन, वीय अग्रह पुडीरं ।
सद्धि भाग रघुवंश, राम उभौ वर वीरं ।
सांषलौ सूर सारङ्ग दे, उररि षान गोरीय मुष ।
हथ नारि गोरि जंबूर घन, दूहूँ वांह उभैति रूष ।।

—छं० ७१ स० २७

यह उदाहरण चन्द्रव्यूह का है । चन्द ने चित्रंग प्रभु चक्रव्यूह, मयूरव्यूह, गिद्धव्यूह आदि का भी वर्णन किया है ।

(२) नगर-वर्णन—

घुरि घुम्मिय व्रंध निसान घुरं,
पुर है प्रथिराज कि इन्द्रपुरम् ।

प्रथम दिखियं किलियं कहनं,
ग्रह पौरि प्रसाद बना सतनं ।

—छं० २४

घन भूप अनेक अनेक भती,
निज बंधिय बन्धन छत्रपती ।
जिन अस्व चढै घटि अश्व लषं,
बल श्री प्रथु यन्त्र अनेक भषं ।

—छं० ४०

दह पौरि सु सोभत पिथ्थ वरं,
नरनाह निसंकित दाम नरं ।
भर हट्ट सु लष्षनयं भरयं,
धरि बस्त अमोल नयं नरयं ।

—छं० २५

उक्त छंदों (स० ५६) में पृथ्वीराज चौहान की दिल्ली एवं उसके महल का वर्णन है ।

(३) विवाह-वर्णन—

एक फिरत भांवरी, साठि मेवात गाँव दिय ।
दुतीय फिरत भांवरी, दुरद्द दस एक अग्गरिय ।
त्रितिय फिरत भांवरी, दयौ संभरि उदक्क कर ।
चौथी भांवरि फिरत, द्रब्ब दीनी अनत बर ।
चहुआन चतुठ चावद्दिसा, हिन्दवान बर भांन विधि ।
गुन रूप सहज लच्छी सुबर, सहज वीर बंधी जु सिधि ।।

उक्त दृश्य भांवरें पड़ते समय का है (छं० १५६ स० २१) । चन्द ने बारात की साज सज्जा, तोरण वंदन, बारात, अगवानी, ज्यौनार, जनवासा, मण्डप, मङ्गल-गीत, कन्यादान, दहेज, विदाई आदि के वर्णन प्रस्तुत किए हैं ।

(४) पनघट वर्णन—

द्रिग चंचल चंचल तरुनि, चितवत चित्त हरंति ।
कंचन कलस झकोरि कै, सुन्दिरि नीर भरंति ।

उक्त वर्णन कन्नौज में गङ्गा तट पर जल भरने गई हुई जयचन्द की एक दासी का है। छं० ३३८ स० ६१)।

(५) षट् ऋतु-वर्णन (इस पर हम अन्यत्र विचार करेंगे)

(६) नख शिख और शृंगार वर्णन (इस पर हम अन्यत्र विचार करेंगे।)

(७) युद्ध वर्णन—पृथ्वीराज रासो आदि से अन्त तक युद्धों से भरा पड़ा है अतः उस प्रसंग पर विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा।
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु ॥१०॥

अर्थात् महाकाव्यों का नामकरण कवि, चरित्र अथवा नायक के नाम पर होना चाहिए और सर्ग का नाम सर्ग में वर्णित कथा के आधार पर होना चाहिए।

'पृथ्वीराज रासो' का नामकरण चौहान वंशीय उच्चकुलोद्भूत 'पृथ्वीराज चौहान' के नाम पर किया गया है। 'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज चौहान का चरित्र आदि से अन्त तक पिरोया हुआ है अतः महाकाव्य के दृष्टिकोण से यह नाम अत्यन्त उपयुक्त है।

सर्ग में वर्णित कथा को आधार मानकर चन्दवरदायी ने रासो में समयों का एवं प्रस्तावों का नामकरण किया है। उदाहरण के लिये 'आदि पर्व', इसमें मंगलाचरण चौहान वंश का उद्भव एवं पृथ्वीराज के जन्मादि का कथानक है। इस प्रकार प्रत्येक समय एवं प्रत्येक प्रस्ताव वर्ण्य कथा के नियम से निर्वाहित है।

(अन्त में हम कह सकते हैं कि भारतीय महाकाव्यों के लगभग सभी लक्षण 'पृथ्वीराज रासो' में पूर्ण रूपेण मिल जाते हैं।

पृथ्वीराज रासो : प्रामाणिकता और अप्रमाणिकता

'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी साहित्य का आदि महाकाव्य है। इसमें भारत के अन्तिम हिन्दू सम्राट् महाराजा पृथ्वीराज चौहान की जीवन गाथा का वर्णन है। आरम्भ में यह ग्रन्थ इतिहास समस्त प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता रहा था और अब भी अधिकांश विद्वान इसे प्रामाणिक स्वीकार करते हैं।

इतिहास वेत्ताओं एवं अनुसंधानकर्ताओं ने प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों, शिलालेखों, मुद्राओं तथा पट्टों परवानों के रूप में प्राप्त सामग्री को ऐतिहासिक मानकर 'पृथ्वीराज रासो' की परख की और उनके आधार पर रासो अनैतिहासिक ठहराया गया। कुछ साहित्यकारों ने भी इतिहासकारों को भरसक योग दिया और रासो की अप्रामाणिकता का समर्थन किया। प्रामाणिकता—अप्रामाणिकता की गुत्थी तब और अधिक उलझ गई जब 'रायल एशियाटिक सोसाइटी' ने रासो का प्रकाशन बन्द कर दिया। इतिहासज्ञ 'पृथ्वीराज रासो' को ऐतिहासिक तथ्यों के आधार से परे कहते हैं। विन्सेंट स्मिथ के निम्नलिखित शब्द उल्लेखनीय हैं—

"The Rasa, as we now have it, is misleading and all but worthless for the purpose of the Historians."

—Vincent Smith.

साहित्यज्ञों के अधिकांश मत रासो को प्रामाणिक ग्रन्थ मानने के पक्ष में हैं। इस प्रकार रासो की प्रामाणिकता पर पक्ष-विपक्ष में मत देने वाले दो दल बने—

(१) रासो को अप्रामाणिक सिद्ध करने वाला दल,

(२) रासो को प्रामाणिक सिद्ध करने वाला दल।

'पृथ्वीराज रासो' को अप्रामाणिक सिद्ध करने वाले दल में श्री मुरारिदान, कविराजा श्यामलदास, डा० बूलर, मुंशी देवीप्रसाद, डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, अमृतशील, डा० रामकुमार वर्मा तथा पं० मोतीलाल मेनारिया विशेषोल्लेखनीय हैं।

उक्त विद्वानों ने 'पृथ्वीराज रासो' को (१) घटना, (२) काल और (३) भाषा के आधार पर अप्रामाणिक ठहराया है। उनके मत हैं कि पृथ्वीराज रासो में अनेक ऐतिहासिक भ्रान्तियाँ हैं। नाम और घटनाएँ इतिहास सम्मत नहीं हैं। रासो में दी गई तिथियाँ भी अशुद्ध हैं। रासो के संवतों में और इतिहास के संवतों में भी बहुत अन्तर है। रासो में प्राप्य शब्दावली अरबी तथा फारसी से प्रभावित है और अनुस्वारांत शब्दों की अधिकता आदि कतिपय बातें 'पृथ्वीराज रासो' को अप्रामाणिक सिद्ध करती हैं। यहाँ हम उक्त विद्वानों के मतों को उद्धृत करते हैं।

१. कविराजा श्यामलदास का मत

इनका एक लेख बंगाल की रायल एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल भाग ११,८८६ ई० में 'दी एन्टिक्विटीज, ऑथेन्टिसिटी एण्ड जेन्युइननेस ऑफ दी ऐपिक कॉल्ड प्रिथीराज रासा एण्ड कॉमनली ऐस्क्राइब्ड टू चन्दवरदायी' नामक शीर्षक से प्रकाशित हुआ।

कविराजा श्यामलदास की उपर्युक्त रचना का सारांश निम्नलिखित है—पृथ्वीराज रासो एक अप्रामाणिक ग्रन्थ है। कोणटिका या बेलदा के चौहानाश्रित किसी भाट की रचना है। चन्दवरदाई के नाम से उस भाट ने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया और अपना नाम छिपाया। रासो चन्द ने नहीं लिखा और न पृथ्वीराज के समय में ही लिखा गया। हाँ, यह माना जा सकता है कि रासो की रचना राजपूताने में ही हुई क्योंकि शब्द और वाक्य रचना पर राजस्थानी प्रभाव है। रासो के सम्वत् तथा तिथियाँ प्रायः अशुद्ध हैं। रासो में ८ अथवा १० प्रतिशत फारसी शब्दों का प्रयोग है। रासो का निर्माण १६४०--१६७० वि० सं० के बीच में कभी हुआ।

२. डाक्टर बूलर

'प्रोसीडिंग्ज आफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल' को डा० बूलर ने निम्नलिखित पत्र लिखा था—

"पृथ्वीराज रासो के प्रश्न पर एकेडेमी के लिये मैं एक टिप्पणी प्रस्तुत कर रहा हूँ और मुझे उनका समर्थन करना पड़ेगा जो इसे जाली कहते हैं। मेरे एक शिष्य श्री जेम्स मोरिसन ने 'पृथ्वीराज विजय' नामक संस्कृत ग्रन्थ का अध्ययन कर लिया है जो मुझे १८७५ में काश्मीर में प्राप्त हुआ था तथा उन्होंने सन् १४५०-६५ ई० लिखित जोनराज की टीका भी पढ़ ली है। 'पृथ्वीराज विजय' का कर्ता निस्सन्देह पृथ्वीराज का समकालीन और उसका राजकवि था। वह सम्भवतः कश्मीरी था और एक अच्छा कवि तथा पण्डित था। इसका लिखा हुआ चौहानों का वृतान्त चन्द के लिखे हुए विवरण के विरुद्ध है और वि० सं० १०३० तथा वि० सं० १२२६ के शिलालेखों से मिल जाता है। 'पृथ्वीराज विजय' महाकाव्य में पृथ्वीराज की जो वंशावली दी हुई है वही

उक्त लेखों में भी मिलती है और उसमें लिखी हुई घटनाएँ दूसरे साधनों अर्थात् मालवे और गुजरात के शिलालेखों से मिल जाती हैं। इस पुस्तक में पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के सम्बन्ध में लिखा है—उसका पिता अर्णो राज और उसकी माता गुजरात के सुप्रसिद्ध राजा जयसिंह की पुत्री कांचनादेवी थी। अर्णोराज की पहली रानी सुधवा से, जो मारवाड़ की राजकन्या थी, दो पुत्र उत्पन्न हुए, उनमें से बड़े का नाम किसी ग्रन्थ या शिलालेख में नहीं मिलता और छोटे का विग्रह-राज (वीसलदेव) था।

"............सोमेश्वर ने चेदि (जबलपुर जिला) की राजधानी त्रिपुर में जाकर चेदिराज की कन्या कर्पूरदेवी से विवाह किया, जिससे उक्त काव्य के चरित्र-नायक पृथ्वीराज और हरिराज उत्पन्न हुए। अजमेर की गद्दी पर बैठने के थोड़े ही समय पीछे सोमेश्वर का देहान्त हो गया और अपने पुत्र पृथ्वीराज की नाबालिगी में अपने मंत्री कादंबवास (कादम्बवास) की सहायता से कर्पूरदेवी राजकाज चलाने लगी।

"उक्त काव्य में कहीं इस बात का नाम निशान तक नहीं है कि पृथ्वीराज दिल्ली के राजा अनंगपाल की कन्या से उत्पन्न हुआ था और उसे अनंगपाल ने गोद लिया था। यह आश्चर्य की बात है कि पुराने मुसलमान इतिहास-लेखकों ने भी यह कहीं नहीं लिखा कि पृथ्वीराज दिल्ली में राज्य करता था। वे उसे अजमेर का राजा बतलाते हैं। उनका कहना है कि वह राजद्रोह के कारण विजेताओं (मुसलमानों) के हाथ से, जिन्होंने उसे उसके राज्य में कुछ अधिकार दे रखे थे, अजमेर में मारा गया।

"मुझे इस काल के इतिहास-संशोधन की बड़ी आवश्यकता जान पड़ती है और मै समझता हूँ कि चंद के रासो का प्रकाशन बन्द कर दिया जाय तो अच्छा होगा। वह ग्रन्थ जाली है, जैसा कि जोधपुर के मुरारिदान और उदयपुर ने श्यामलदास ने बहुत काल पहले प्रकट किया है। 'पृथ्वीराज विजय' के अनुसार पृथ्वीराज के बंदीराज अर्थात् मुख्य भाट का नाम पृथ्वीभट था न कि चन्दवरदायी।"

३. डाक्टर गौरीशंकर हीराचंद ओझा

रासो को पूर्ण रूप से अनैतिहासिक ग्रन्थ सिद्ध करने वाले विद्वानों में डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का नाम शीर्ष पर है। इन्होंने 'कोशोत्सव-

स्मारक-संग्रह' नाम ग्रन्थ में 'पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल' नामक एक निबन्ध लिखा था जिसका सार इस प्रकार है--

(१) चौहान वंशी सूर्य वंशी कहे जाते हैं, अग्नि वंशी नहीं। ग्वालियर से प्राप्त वि० सं० ९०० के आस-पास प्रतिहार राजा भोजदेव की एक प्रशस्ति के आधार पर प्रतिहार सूर्यवंशी अथवा रघुवंशी माने जाते हैं, अग्निवंशी नहीं। किन्तु पृथ्वीराज रासो में परमार, प्रतिहार, चालुक्य तथा चौहान आदि क्षत्री वंशों की उत्पत्ति आबू के अग्नि-कुण्ड से मानी है। जबकि १७ वीं शताब्दी से पूर्व अग्नि वंश विषयक कोई सामग्री प्राप्त नहीं है। अतः रासो पृथ्वीराज के समय का नहीं है।

(२) पृथ्वीराज रासो में चौहानों की वंशावली के चवालीस नामों में केवल सात नाम प्राचीन शिला लेखों अथवा 'पृथ्वीराज विजय' से मिलते हैं। शेष सब नाम कृत्रिम हैं।

(३) पृथ्वीराज की माता का नाम भी भ्रमोत्पादक है।

(४) सोमेश्वर (पृथ्वीराज के पिता) की मृत्यु तिथि घटना काल्पनिक तथा मनगढ़न्त है।

(५) पृथ्वीराज के विवाह सम्बन्धी वर्णन अनैतिहासिक हैं। ११ वर्ष से ३६ वर्ष तक की आयु में पृथ्वीराज के १४ विवाह होना निर्मूल है। ऐसा कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं मिलता।

(६) पृथ्वीराज रासो में निर्देशित सम्वत् काल्पनिक हैं।

(७) पृथ्वीराज रासो की मुख्य घटनाएँ अनैतिहासिक हैं।

(८) भाषा भी १३०० वीं शताब्दी की नहीं वहीं वरन् १६०० के आस-पास की है। दश प्रतिशत फारसी शब्दों का प्रयोग रासो में मिलता है।

४. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

आचार्य शुक्ल ने भी प्रामाणिकता के विरोध में तीन बातें कहीं हैं—

(१) "बात सम्वत् तक नहीं है। इतिहास विरुद्ध कल्पित घटनाएँ जो भरी पड़ी हैं उनके लिये क्या कहा जा सकता है ? माना कि रासो इतिहास

नहीं है, काव्य ग्रन्थ है। पर काव्य ग्रन्थों में बिना किसी प्रयोजन के उलट-फेर नहीं किया जाता। जयानक का पृथ्वीराज विजय भी तो काव्य ग्रन्थ ही है, फिर उसमें क्यों घटनाएँ और नाम ठीक-ठीक हैं ? इस सम्बन्ध में इसके अतिरिक्त और कुछ कहने की जगह नहीं कि यह पूरा ग्रन्थ जाली है।

(२) "रहा यह प्रश्न कि पृथ्वीराज की सभा में चंद नाम का कोई कवि था या नहीं। × × × अधिक सम्भव यह जान पड़ता है कि पृथ्वीराज के पुत्र गोविन्दराज या उनके भाई हरिराज अथवा इन दोनों में किसी के वंशज के यहाँ चंद नाम का कोई भट्ट कवि रहा होगा जिसने उनके पूर्वज पृथ्वीराज की वीरता आदि के वर्णन में कुछ रचना की हो। पीछे जो बहुत सा कल्पित 'भट्ट-भणन्त' तैयार होता गया, उसी के नाम पर 'रासो' नाम की यह इमारत खड़ी की गई।

(३) "भाषा की कसौटी पर यदि ग्रन्थ को कसते हैं तो और भी निराश होना पड़ता है, क्योंकि वह बिल्कुल बेठिकाने है—उसमें व्याकरण आदि की कोई व्यवस्था नहीं है। दोहे की और कुछ-कुछ कवित्तों, छप्पयों की भाषा तो ठिकाने की है, पर त्रोटक आदि छोटे-छोटे छंदों में तो कहीं अनुस्वारांत शब्दों की ऐसी मनमानी भरमार है जैसे किसी ने संस्कृत-प्राकृत की नकल की हो। कहीं-कहीं तो भाषा आधुनिक साँचे में ढली सी दिखाई पड़ती है, क्रियाएँ नए रूपों में मिलती हैं। पर साथ ही कहीं-कहीं भाषा अपने असली प्राचीन साहित्यिक रूप में भी पाई जाती है जिसमें प्राकृत और अपभ्रंश शब्दों के रूप और विभक्तियों के चिह्न पुराने ढंग के हैं। इस दशा में भाटों के इस वाग्जाल के बीच कहाँ पर कितना अंश असली है, इसका निर्णय असम्भव होने के कारण यह ग्रन्थ न तो भाषा के इतिहास और न साहित्य के इतिहास के जिज्ञासुओं के काम का है।"

५. डा० रामकुमार वर्मा

'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में डाक्टर साहब ने 'पृथ्वीराज रासो' को अप्रामाणिक सिद्ध करने में निम्नांकित बातें उपस्थित की हैं—

(१) ऐतिहासिक व्यक्तियों के समय में व्यतिक्रम,
(२) तिथियों की अशुद्धता,
(३) अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग,
(४) भाषा की भिन्नकालीन विषमता ।

इन विद्वानों के अतिरिक्त मोतीलाल मेनारिया, श्री अमृतशील, मुंशी देवीप्रसाद तथा मुरारिदान के मत भी महत्वपूर्ण हैं । ये सब रासो को एक जाली ग्रन्थ मानते हैं ।

'पृथ्वीराज रासो, को प्रामाणिक सिद्ध करने वाले दल में कर्नल टॉड, गार्सां द तासी, जॉन बीम्स, एफ० एस० ग्राउज, रुडोल्फ हार्नली, मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या, डाक्टर श्यामसुन्दरदास, मिश्रबन्धु, ग्रियर्सन, अयोध्यासिंह उपाध्याय, पं० मथुराप्रसाद, डा० दशरथ शर्मा, मुनि जिन विजय, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, अगरचन्द नाहटा, कविराज मोहनसिंह तथा डा० विपिनबिहारी त्रिवेदी के नाम विशेषोल्लेखनीय हैं । इन्होंने रासो को अप्रामाणिक सिद्ध करने वाले दल की खाल खींची है । हम उक्त विद्वानों के मत, जो रासो को ऐतिहासिक एवं प्रामाणिक मानते हैं; नीचे उद्धृत करते हैं—

(१) मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या

कविराज श्यामलदास के 'दी एन्टीक्विरीज ऑथेंटिसिटी एन्ड जेन्युइनेस ऑफ दी एपिक काल्ड प्रिथीराज रासा एण्ड कामनली एस्क्राइब्ड टू चंदवरदायी' नामक निबन्ध का खण्डन करते हुए पाण्ड्या जी अपने 'पृथ्वीराज रासो की प्रथम संरक्षा' नामक निबन्ध में लिखते हैं—

"यह महाकाव्य आज तक कवि चंद का बारहवीं शताब्दी का रचा हुआ एक बड़ा प्रामाणिक ग्रन्थ करके हमारे देश में प्राचीन काल से चला आता है और इसकी यथार्थता में आज तक क्या तो स्वदेशी और क्या किसी विदेशी विद्वान को कोई वैसी शंका नही हुई जैसी हमारे परमप्रिय मित्र महामहोपाध्याय कविराज श्री श्यामलदास जी को बैठे-बिठाए हो गयी है ।....इस महाकाव्य को कृत्रिम अनुमान करने में जितने हेतु दिए गए हैं उनमें से प्रत्येक के विषय में हम निम्नलिखित कुछ निवेदन करते हैं

"इस महाकाव्य में जो सम्वत् लिखे हुए हैं वह मुसलमानी तारीखों में लिखे और सांप्रत शोध हुए सम्वतों से नहीं मिलते और उनमें ६० व ६१ वर्ष का अन्तर पड़ता है···(टिप्पणी ३५५ तथा ३५६—अनदं शब्द का अर्थ यहाँ चंद ने केवल नव-संख्या-रहित का रक्खा है अर्थात् अ=रहित और नंद=नव ६। अब विक्रम शाक आनन्द को क्रम से अनदं विक्रम शाक अथवा विक्रम नव-रहित शक अर्थात् १००-६=६०-६१ अर्थात् विक्रम का वह शक कि जो उसके राज्य के वर्ष ६०/६१ से प्रारम्भ हुआ।)

"इस ग्रन्थ में मुसलमानी भाषादि के शब्द प्रयुक्त हुए दृष्टि में आते हैं। इन महाकाव्य की भाषा में दो एक वर्ष से एक यह भी बड़ी भारी शंका लोगों ने खड़ी की है कि उसमें आठ या दस भाग में एक भाग फारसी शब्द हैं और फारसी शब्द अकबर बादशाह के समय से हिन्दी भाषा में मिले हैं, अतएव यह महाकाव्य सं० १६४० से १६७० के बीच कृत्रिम बना है। हम इस बात से बिल्कुल असहमत हैं और ऐसा अनुमान करने वाले को हम समझते हैं कि उसने न तो पृथ्वीराज रासो कभी आदि से अन्त पर्यन्त अच्छी तरह से पढ़ा है और न उसको ऐतिहासिक विद्या का पूरा-पूरा बोध है, क्योंकि यह अनुमान बिलकुल ही अदृढ़ और अपरिपक्व है। वरन् अब तक के ऐतिहासिक शोधों के अनुसार हमारी सम्मति में फारसी शब्दों का मेल हमारे भारत खण्ड की बोलचाल की भाषाओं में सातवें शतक तक पाया जाता है। फिर इस बारहवें शतक की हिन्दी भाषा की तो क्या ही कथा कहानी है।

"अब तक पृथ्वीराज जी के समकालीनों में से केवल रावल समरसी जी को ही आक्षेप करने वालों ने उदाहरण में ग्रहण किया है। × × × जहाँ तक हमने रावल समरसी जी के विषय में शोध किया है वहाँ तक हमको इस बात में कुछ सन्देह नहीं कि वे पृथ्वीराज के बहनेऊ और समकालीन थे।"

(२) **मिश्रबन्धु**—(हिन्दी नवरत्न से)

"सन-सम्वतों की गड़बड़ अधिक संदेह का कारण हो सकती थी पर सौभाग्यवश विचार करने से, वह भी निर्मूल ठहरती है। चंद के दिए हुए सम्वतों में घटनाओं का काल अटकलपच्चू नहीं लिखा गया। इतिहास द्वारा विदित समय से चंद के कहे हुए संवत् सदा ६० वर्ष कम होते हैं, और यही

अन्तर एक दो नहीं प्रत्येक घटना के संवत् में देख पड़ता है। यदि चंद के किसी संवत् में ९० वर्ष जोड़ दें, तो इतिहास के सिद्ध यथार्थ सम्वत निकल आता है।

"अब पृथ्वीराज-सम्बन्धी घटनाओं के विषय में चंद ने जो लिखा तथा उनके समसामयिक लोगों ने कथन किया, उस पर विचार करना शेष है। चंदवरदाई ने पृथ्वीराज द्वारा शहाबुद्दीन का कई बार पकड़ा जाना लिखा है, किन्तु इतिहास में ऐसा होना एक ही बार माना गया है। हमारी समझ में कविता सम्बन्धी अत्युक्ति के विचार से, चंद के कथन में ऐतिहासिक भ्रम नहीं माना जा सकता। फिर इतिहास बहुत करके मुसलमानों के कथनों पर बने हैं, जिनमें अपमान बचाने को मुसलसानों की हार का कम लिखा जाना संभव है।

"कहा जाता है कि चंद के समय में, हिन्दी में, इतने विदेशी (अरबी-फारसी) शब्दों का होना असम्भव है। कारण, मुसलमानों के आने के पीछे ही उनके शब्द हिन्दी में आ सकते थे। ××× भारत में शहाबुद्दीन के साथ ही यवनों का प्रवेश नहीं हुआ। उसके प्रायः दो सौ वर्ष पहले से ही महमूद गजनवी की चढ़ाइयाँ होने लगीं थीं और पंजाब का एक बड़ा भाग मुसलमानों के अधिकार में चला गया था। महमूद से भी पहले सिंघ तथा मुलतान के देशों पर मुसलमानों का अविकार हो गया था। अतः पंजाबी भाषा में मुसलमानी शब्दों का मिलना स्वाभाविक ही था। फिर चंदवरदायी का जन्म लाहौर में हुआ था जहाँ उस सयय मुसलमानों का ही अधिकार था। चंद ने अपना बाल्य-काल इसी स्थान पर बिताया। स्वयं पृथ्वीराज के यहाँ शहाबुद्दीन का भाई हुसैन और उसका पुत्र दोनों रहते थे। उन्हें जागीर भी मिली थी। पृथ्वीराज के राज्य की सीमा मुसलमानी राज्य से मिली हुई थी। ऐसी दशा में व्यापारिक सम्वन्ध में भी मुसलमानों का यातायात हिन्दुओं के बीच अवश्य रहता होगा। इन सब कारणों से चंद की भाषा में मुसलमानी शब्दों का होना स्वाभाविक था और इन शब्दों को देखकर हम रासो के असली होने के विषय में कोई संदेह नहीं उठा सकते।"

उक्त दोनों मत रासो की प्रामाणिक मानने में कुछ उठा नहीं रखते। घटनाओं, काल निर्णय, एवं भाषा पर किए गए आक्षेपों का मुँहतोड़ जवाब पाण्ड्या जी तथा मिश्रबन्धुओं ने दिया है।

रासो को प्रामाणिक मानने में निम्नांकित विद्वानों के प्रयत्न बहुत ही सराहनीय हैं—

(१) **डा० श्यामसुन्दर दास**—ने अपने 'हिन्दी साहित्य' नामक ग्रन्थ में 'पृथ्वीराज रासो' के काव्य सौष्ठव का विश्लेषण करते हुए उसमें युग प्रतिबिम्ब, छन्द विस्तार, तथा भाषा को समुचित मान दिया है और उसे प्रामाणिक तथा अमूल्य कृत ठहराया है।

(२) **अयोध्यासिंह उपाध्याय**—ने 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' नामक अपने आलोचनात्मक ग्रन्थ में 'पृथ्वीराज रासो' को बारहवीं शताब्दी की रचना माना है।

(३) **मथुराप्रसाद दीक्षित**—इन्होंने 'पृथ्वीराज रासो' का स्वयं ही सम्पादन किया है और उसके समर्पण तथा प्राक्कथन में—"यह विषय निर्विवाद है कि पृथ्वीराज रासो बारहवीं शताब्दी में बिना। इस समय की भाषा प्राकृत मिश्रित थी अतएव 'पृथ्वीराज रासो' का भी प्राकृत मिश्रित भाषा में निर्माण हुआ।" लिखकर उसे प्रामाणिक घोषित किया है।

(४) **डा० दशरथ शर्मा**—ने अपने भिन्न-भिन्न निबन्धों में, जो भिन्न-भिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं, तर्कपूर्ण ढंग से रासो को प्रामाणिक सिद्ध किया है। वे निबन्ध एवं पत्रिकाएँ निम्नोल्लिखित हैं—

(१) इन्डियन हिस्टोरीकल क्वाटर्ली १९४० में 'दी एज एन्ड हिस्टोरीसिटी आफ पृथ्वीराज रासो' नामक निबन्ध।

(२) वीणा, १९४४, 'पृथ्वीराज रासो' सम्बन्धी कुछ 'विचार' निबन्ध।

(३) राजस्थान भारती १९४६ 'संयोगिता' निबन्ध।

इन निबन्धों में उन्होंने 'पृथ्वीराज रासो' को अप्रामाणिक सिद्ध करने वाले तर्कों को निर्मूल सिद्ध किया है और रासो एवं चन्दवरदायी को पृथ्वीराज का समकालीन माना है। 'सुर्जन चरित्र' एवं 'हमीर काव्य' के आधार पर चौहान वंश की उत्पत्ति अग्नि से बताई है। और रासो में प्रयुक्त चौहान वंशावली

प्रामाणिक चौहान वंशावली है, यह भी कहा है—आदि कतिपय बातें रासो की प्रामाणिकता एवं ऐतिहासिकता सिद्ध करती हैं।

(५) **मुनि जिन विजय**—ने अपने 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में चन्द कवि को ऐतिहासिक व्यक्ति और पृथ्वीराज चौहान का समसामयिक तथा राजकवि माना है। भाषा के विषय में अत्यधिक प्रचार एवं लोकप्रियता के कारण भिन्न-भिन्न भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हो गया, ऐसा विचार है उनका। तात्पर्य यह कि उनके विचार से रासो की ऐतिहासिकता असंदिग्ध है।

(६) **डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी**—ने "अब यह मान लेने में किसी को आपत्ति नहीं है कि रासो एक दम जाली पुस्तक नहीं है। उसमें बहुत अधिक प्रक्षेप होने से उसका रूप विकृत जरूर हो गया है; पर इस विशाल ग्रन्थ में सार भी अवश्य है।" कह कर रासो को प्रामाणिक स्वीकार किया है।

(७) **कविराव मोहन सिंह**—का राजस्थान भारती १९४६' में छपा लेख 'पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता पर पुनर्विचार' तथा डाक्टर विपिन बिहारी त्रिवेदी के 'रेवा तट' नामक ग्रन्थ की भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता पर जो लिखा गया है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कविराव मोहनसिंह ने रासो के मूल-प्रामाणिक अंशों का उद्धार किया है तो डा० त्रिवेदी ने उसके प्रक्षेप जाल का आवरण दूर करने की चेष्टा की है।

हम अब पाश्चात्य विद्वानों द्वारा रासो की प्रामाणिकता पर व्यक्त किए गए मतों पर विचार करेंगे। रासो को प्रामाणिक मानने में निम्नांकित पाश्चात्य विद्वानों ने सतर्कता बरती है—कर्नल टाड, गार्सां द तासी, अब्राहम ग्रियर्सन, जान बीम्स, एफ० एस० ग्राउज तथा रुडोल्फ हार्नली। किन्तु प्रथम तीन के मत ही विशेषोल्लेखनीय हैं।

१. कर्नल टाड

"The work of Chand is a Universal history of the period in which he wrote. In the sixty nine books, comprising one hunderd thousand stanzas, relating to the exploits of Prithi Raj, every noble family of Rajasthan will find some recorse of their ancestors. It is accordingly treasured amongst the

archives of each race having any pretensions to the name of Rajput. From this he can not trace his material fore fathers who 'drank of the wave of battle' in the passes of Kirman when the cloud of war rolled from Himachal to the Plains of Hindustan. The wars of Prithi Raj, his alliances, his numerous and powerful tributaries, their abodes and pedigrees, make the work of Chand invaluable as historic and geographical memoranda, besides being treasures in mythology, manners and the annals of the mind."

Annals and Antiquities of Rajasthan Page. 297.

२. डा० ग्रियर्सन

"His poetical work were collected by Amar Singh of Mewar in the early part of the Seventeenth Century. They were not improbably recast and modernised in parts at the same time, which has given rise to a theory that whole is a modern forgery."

"My own studies of this poet's work, have inspired me with a great admiration for its poetic beauty; but no doubt if any one not perfectly master of the ranous Rajputana dialects could even read it with pleasure. It is, however, of the greatest value to the students of Philology, for it is at present the only stapping stone available to Europian explorers in the chasm beaween the latest Prakrit and the earliest Gaudian authors. Though we may not possess the actual text of Chand, we have certainly in his writings some of the oldest known specimans of Gaudian literature, abounding impure Apbhramsa, Shaurseni, Prakrit forms."

—The Modern Vernacular literature of Hindustan.

३. गार्सां द तासी

"हिन्दुई के अत्यन्त प्रसिद्ध इतिहास—लेखक और कवि, 'पृथ्वीराज-चरित्र' के रचियता, अथवा दिल्ली के अन्तिम राजा, पृथ्वीराज का इतिहास।

छन्दों में लिखित इस रचना में जो भारत में प्रचलित परम्परा के अनुसार है, राजपूताना और विशेषतः चन्द के समय का इतिहास है, इतिहास, जिसमें लेखक ने काफी प्रमुख भाग लिया। यह निश्चित रूप से हिन्दी की अत्यन्त प्राचीन रचनाओं में से एक है। चन्द पिथौरा या पृथ्वीराज के यहाँ कवि थे जिसका उन्होंने अनेक राजपूत वंशों के साथ गुणगान किया है। अस्तु वे १२ वीं शताब्दी के अन्त में विद्यमान थे। × × × संक्षेप में ११ वीं शताब्दी के भारतवर्ष का यह पूर्ण चित्र है।"

उक्त विद्वानों के मत रासो की प्रामाणिकता का प्रतिपादन करते हैं। किंतु जब हम पक्ष-विपक्ष के मतों को देखते हैं तब विस्मय होता है कि रासो को प्रामाणिक कहें अथवा अप्रामाणिक। काल, घटनाओं एवं भाषा सम्बन्धी जितने विपरीत तथ्य अब तक प्रस्तुत किए गए हैं ये सब अब तक निर्मूल सिद्ध होते जा रहे हैं। अतः हम रासो को अधिकांश में प्रामाणिक ही कहेंगे। वैसे रासो साहित्यिक दृष्टिकोण से वीरकाव्य की परम्परा में शीर्ष स्थान का अधिकारी है। उसकी ज्ञान गरिमा विशिष्ट है। वह हमारा आदि महाकाव्य है अतः हमें उसमें निर्देशित साहित्य-सौन्दर्य की उपासना करनी चाहिए। मलिक मुहम्मद जायसीकृत 'पदमावत' की अप्रामाणिक घटनाओं पर किसी ने मुँह नहीं बिदकाया और इस काव्य ग्रन्थ को अप्रामाणिक मानकर नाक भौं सिकोड़ते हैं।

पृथ्वीराज रासो : काल निर्णय

'पृथ्वीराज रासो' के रचना काल के सम्बन्ध में बहुत मतभेद है। प्रधानतः दो मत प्रचलित हैं। अतः दोनों मतों की पुष्टि में दो दल बने।

(१) पहला दल रासो को बहुत प्राचीन रचना मानता है। और उसे १२ वीं शताब्दी की घोषित करता है। इस दल के प्रमुख नेता कर्नल टाड, गार्सा, द तासी, एफ० एस० ग्राउज, जौन बीम्स, रुडोल्फ हार्नली, जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन, मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या, मिश्रबन्धु, डा० श्यामसुन्दरदास, मथुराप्रसाद दीक्षित तथा अगरचन्द नाहटा हैं।

अब हम 'पृथ्वीराज रासो' की प्राचीनता पर कुछ प्रमाणों एवं मतों का उल्लेख करते हैं।

मुनि कान्तिसागर ने रासो की प्राचीनता पर, विशाल भारत' भाग ३८, अङ्क ५, सन १९४६ में निम्नांकित विचार प्रस्तुत किये थे—"मध्य-प्रान्त और बरार से जो ऐतिहासिक साधन मुझे प्राप्त हुए हैं, उनमें एक १२५ पत्रों वाली हस्तलिखित प्रति भी है, जिसमें 'पृथ्वीराज रासो' और कवि चन्द्र-शेखर रचित 'सुर्जन चरित' (अपूर्ण) उल्लिखित है। आज तक रासो की उपलब्ध सब प्रतियों में यह प्रति अत्यन्त प्राचीन और प्रामाणिक है। प्रस्तुत प्रति की पुष्पिका इस प्रकार है—

'विक्रम संवत् १४०३ कार्तिक शुक्ल पंचम्यां। तुगलक फिरोज शाहि विजय राज्ये ढिल्यां मध्ये लिप कृतं वाचक महिम-राजेन श्रीमाल कलोत्पन्न श्री ठक्कुर फेरू, पुत्र हेमपाल वाचनार्थ ।। शुभंभूयात ।।'

—"पृथ्वीराज रासो की प्राचीनतम प्रति" की टिप्पणी से।

मुनि कान्ति सागर को जो 'पृथ्वीराज रासो' की प्रति मिली है वह छप्पय छन्दों में है और उसमें अपभ्रंश भाषा का प्रयोग किया गया है। छन्दों की संख्या १३०६ हैं ओर उसमें ४५ रंगीन चित्र भी हैं जो रासो की भिन्न-भिन्न ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन प्रस्तुत करते हैं। उस पुस्तक को मुनि कान्ति सागर विशेष प्रामाणिक तथा विश्वनीय मानते हैं।

उक्त मत की आलोचना में विद्वान फीरोजशाह तुगलक का राज्य काल सं० १४०३ इतिहास सम्मत नहीं ठहराते अतः रासो की इस प्रति की प्राचीनता में उन्हें शङ्का है।

पं० मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या ने 'चन्द छन्द वरनन की महिमा' नामक पुस्तक के आधार पर 'पृथ्वीराज रासो' का निर्माण काल सं० १६२७ से पूर्व बताया था किन्तु उनका तत्सम्वन्धी मत सत्य सिद्ध न हुआ।

प्रो० रमाकान्त त्रिपाठी को नागौर-निवासी नानूराम द्वारा रासो की दो प्रतियों से साक्षात्कार हुआ। त्रिपाठी जी ने 'महाकवि चन्द के वंशधर' नामक निबन्ध में उनका परिचय इस प्रकार कराया है—"नानूराम के पास रासो की दो प्रतियाँ भी हैं। मैंने दोनों को देखा है। एक प्रति तो कागज, स्याही तथा अक्षरों को देखते हुए काफी पुरानी ज्ञात होती है। उसे वे चन्द के पुत्र झल्ल

५

कृत बतलाते हैं।.........प्रतिलिपि, जैसा कि नीचे दिए हुए लेख से ज्ञात होता है। सं० १४५५ में की गई थी—'सं० १४५५ वरसे शरद ऋतु आश्विन मासे शुक्ल पक्षे उदयात घटी १६ चतुरथी दिवसे लिखतं। श्री षरतरगंच्छ-धिराजे पं० श्री रूप जी लिखित। चेलः श्री शोभाजीश कपासन मध्ये लिपि कृतं।'

उक्त पुष्पिका में पंडित मोतीलाल मेनारिया तथा डा० उदयनारायण तिवारी ने क्रमशः वार अनिर्देश तथा भाषा की अर्वाचीनता को लेकर उसे अप्राचीन ठहराया।

मुनि जिनविजय ने 'पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह' में चन्दवरदायी की रचना रासो को अपभ्रंश की रचना बतलाया है। 'पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह' के छप्पय की दो पंक्तियाँ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। इस छप्पय का रासो स्वरूप भी नीचे दिया जा रहा है।

इक्कु वाणु पहुँवीसु जु पइं कइं वासह मुक्कओं;
उर भिन्तर खडहडिउ धीर कक् खंतिर चक्कउ।

—पुरातन प्रबन्ध संग्रह स्वरूप

एक बान पहुमी नरेस कैमासह मुक्यौ।
उर उप्पर थरहरयो वीर कष्षंतर चुक्यौ॥

—'रासो' स्वरूप

'संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो' की भूमिका में डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—

"इधर हाल में मुनि जिनविजय जी ने पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह में 'जय प्रबन्ध' नामक एक प्रबन्ध प्रकाशित किया जिसमें चन्द के नाम से ४ छप्पय दिये हैं। इसकी परिनिष्ठित साहित्यिक अपभ्रंश के निकट की भाषा है यद्यपि उसमें कुछ चिन्ह ऐसे भी मिलते हैं जिनसे हम अनुमान कर सकते हैं कि संदेश रासक की भाषा के सदृश यह भाषा भी कुछ आगे बढ़ी हुई भाषा है। जिस प्रति से यह छप्पय उद्धृत किये गये हैं वह सम्भवतः पन्द्रहवीं शताब्दी की लिखी हुई है। इससे यह सिद्ध होता है कि १५ वीं शताब्दी में लोगों को चन्द के छप्पय का ज्ञान था और ये छप्पय परिनिष्ठित अपभ्रंश से थोड़ी आगे बढ़ी भाषा में लिखे गये थे। इन पद्यों के प्रकाशन के बाद से अब तक इस विषय में किसी

को संदेह नहीं रह गया है कि चंद नामक कोई कवि पृथ्वीराज के दरबार में अवश्य थे और उन्होंने ग्रंथ भी लिखा है। सौभाग्यवश वर्तमान रासो में भी ये छंद कुछ विकृत रूप में प्राप्त हो गये हैं। उस पर यह अनुमान किया जा सकता है कि वर्तमान रासो में चंद के मूल छंद अवश्य मिले हुए हैं।"

उक्त विश्लेषण से रासो की प्राचीनता सिद्ध नहीं होती; इतना अवश्य सिद्ध होता है कि पृथ्वीराज रासो की रचना चंदवरदायी ने की थी।

अयोध्यासिंह उपाध्याय जी का कथन है—"कुछ विद्वानों की यह सम्मति है कि चंद कवि कृत पृथ्वीराज रासो की रचना १५वीं या १६ वीं शताब्दी की है।× × ×परन्तु मेरा विचार है कि इन प्रक्षिप्त रचनाओं के अतिरिक्त ग्रंथ में ऐसी रचनाएँ हैं जिनको हम १२ वीं शताब्दी की रचना निस्संकोच भाव से कह सकते हैं।+++ऐतिहासिक विशेषताओं पर दृष्टि रखकर पृथ्वीराज रासो की आदिम रचना को १२ वीं शताब्दी का मानना पड़ेगा।"

पं० मथुराप्रसाद दीक्षित भी अपने असली 'पृथ्वीराज रासो' के आधार पर पृथ्वीराज रासो का रचना काल १२ वीं शताब्दी बतलाते हैं—

यह विषय निर्विवाद है कि पृथ्वीराज रासो १२ वीं शताब्दी में बना। इस समय की भाषा प्राकृत मिश्रित थी अतएव पृथ्वीराज रासो का भी प्राकृत मिश्रित भाषा में निर्माण हुआ। इस समय के पृथ्वीराज रासो नामक परमोत्तम काव्य में बहुत ही प्रक्षिप्त पाठ मिला दिया गया है। प्रक्षेपक ने ऐसी ऐतिहासिक घटनाएँ पृथ्वीराज जी के साथ जोड़ दी हैं जिन घटनाओं का पृथ्वीराज जी से शताब्दियों का भेद है।" अतः उक्त विद्वान रासो को हिन्दी की प्राचीनतम कृति मानने के पक्षपाती हैं।

(२) दूसरा दल रासो को नवीन तथा १६ वीं शताब्दी या उसके भी बाद की रचना मानता है। इस दल के प्रमुख नेता कविराजा श्यामलदास, डा० बेलर, जेम्स मॉरीसन, मुंशी देवी प्रसाद, डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा, पं० मोतीलाल मेनारिया आदि हैं।

विद्वानों ने 'पृथ्वीराज रासो' को अधुना सिद्ध करने के लिए तर्क-वितर्क का सहारा लिया है। कहते हैं कि 'पृथ्वीराज रासो' के ३ उल्लेख मिलते हैं।

(१) 'जसवन्त उद्योत' नामक ग्रन्थ में जिसका रचना काल सं० १७०५ है।

(२) 'राज प्रशस्ति महाकाव्य' नामक ग्रंथ में। यह ग्रन्थ २५ विशाल पर्वत शिलाओं पर लिखा हुआ है। लिखवाने का कार्य महाराणा राजसिंह ने सं० १७१८ से १७३२ तक करवाया था। इसकी 'भाषा रासो पुस्तकेस्य युद्धस्यक्तोस्ति विस्तर:' नामक पंक्ति में रासो का उल्लेख मिलता है।

(३) 'वृत्ति-विलास' नामक ग्रन्थ में जिसके रचयिता जदुनाथ कवि थे। ओझा जी इस ग्रन्थ का रचना-काल सं० १८०० के आस-पास बतलाते हैं।

उक्त तीनों उल्लेखों से पृथ्वीराज की रचना नवीन प्रकट होती है।

ओझा जी कहते हैं—"वस्तुत: पृथ्वीराज रासो सं० १६०० के आस पास लिखा गया है।" इस कथन की पुष्टि में वे कुछ प्रमाण भी रखते हैं। उन प्रमाणों का सारांश हम अपने शब्दों में प्रस्तुत करते हैं—

(१) ओझा जी 'हम्मीर महाकाव्य' को वि० सं० १४६० का मानते हैं। यदि रासो इससे पूर्व लिखा गया होता तो अवश्य ही उसका उल्लेख हम्मीर महाकाव्य में होना चाहिए था।

(२) महाकवि चन्द ने रावल समरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र कुम्भा का बीदर के मुसलमानों के पास रहना लिखा है। किन्तु पृथ्वीराज के युग में दक्षिण में मुसलमान थे ही नहीं। बीदर राज्य सन् १४३० में अहमदशाह अब्दाली ने बसाया था। अत: रासो इस सन् के पश्चात् बना है।

(३) सोमेश्वर का मेवात के मुगल राजा से युद्ध हुआ था यह रासोकार चन्द ने लिखा है। किन्तु मुगल राज्य भारत में सं० १५८३ में आया अत: रासो की रचना १५८३ से पूर्व की नहीं है।

(४) सं० १५१७ में महाराणा कुम्भकर्ण ने एक मन्दिर बनवाया और कई सौ श्लोकों का एक निबन्ध खुदवाया जिसमें मेवाड़ी शान तथा राजाओं के जीवन का उल्लेख है किन्तु शहाबुद्दीन की लड़ाई में मारे जाने की चरचा कहीं नहीं है। अत: यह ग्रन्थ १२ वीं शताब्दी का नहीं ठहर सकता।

ओझा जी के उक्त तर्क सर्व ग्राह्य नहीं हैं। विद्वान इन्हें उपयोगी नहीं मानते।

रामनायरण दूगण ने विक्टोरिया हाल वाली रासो की प्रति के आधार पर एक छन्द में रासो के संकलन काल का निर्देश किया है।

गुन मुनियन रस पोइ चंद कवियन कर दिद्धिय।
छंद गुनीं ते ट्ट मन्द कवि निन-निन किद्धिय।
देस देस विष्षरिय मेल गुन पार न पावय।
उद्दिम करि मेलवत आस विन आलय आधय (१)॥
चित्र कोट रान अमरेस नृप हित श्रीमुख आयस दयौ।
गुन विन बीन करुणा उधदि लिखि रासो उद्दिद कियौ॥

उक्त छन्द से स्पष्ट है कि 'पृथ्वीराज रासो' के बिखरे हुए अंशों का संग्रह महाराणा अमरसिंह ने किया था। अमरसिंह ने उदयपुर की राजगद्दी पर १६५३ वि० से १६७६ तक राज्य किया। इसी छन्द के आधार पर डा० उदयनारायण तिवारी 'पृथ्वीराज रासो' का संग्रहकर्ता अमरसिंह द्वितीय को मानते हैं जिसका शासन काल १७५५ वि० से १७६७ वि० तक था।

इसी पुस्तक के एक अन्य छन्द के आधार पर डा० श्यामसुन्दरदास रासो का संकलन सं० १६४१ बताते हैं। वह छन्द इस प्रकार है—

मिली पंकज गन उदधि, कहद कारद कातरनी।
कोटि कबी काजलिह, कमल कटिकतें करनीं॥
इहि तिथि संख्या गुनित, कहै कवका कवियाने।
इह श्रम लेखन हार, भेद भेदै सोइ जाने॥

डा० श्यामसुन्दरदास ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है।

"यदि पंकज से नाल (१) गन को गुन (६) का अशुद्ध रूप, उदधि से समुद्र (४) और करद से कटार या चाकू (१) जिसका फल एक होता है, मान लें तो संवत् १६४१ बनता है। शेष शब्दों में मास तिथि आदि होगी; पर यह स्पष्ट नहीं होता। यदि इस हिसाब से रासो का संकलन संवत् १६४१ मान लिया जाय, तो कुछ अनुचित न होगा।"

कविराजा श्यामलदास का 'दी एन्टीक्विटीज ऑथेन्टिसिटी एण्ड जेन्यूइननैस आफ दी ऐपिक काल्ड प्रिथीराज रासा एण्ड कामनली एस्क्राइब्ड टू चन्दवरदाई' निबन्ध भी रासो को प्राचीन नहीं ठहराता। इसी निबन्ध में वे लिखते हैं—

"The 'Prithi Raj Ras' was in my humble opinion Composed at some date during 30 years between S. 1640 (= AD 1583) and S. 1670 (= AD. 1613)····"

अभिप्राय यह है कि 'पृथ्वीराज रासो' का निर्माण सं० १६४० वि० तथा सं० १६७० वि० के बीच हुआ।

पं० मोतीलाल मेनारिया ने अपने 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' तथा 'राजस्थान का पिंगल साहित्य' ग्रन्थों के आधार पर 'पृथ्वीराज रासो' को १८ वीं शताब्दी की रचना बतलाया है। उनका विचार है कि चन्दवरदाई पृथ्वीराज का समकालीन नहीं था। भाषा के विचार से भी रासो १८ वीं शताब्दी की रचना ज्ञात होता है। रासो की हस्त लिखित प्रतियाँ सं० १७०० के बाद की हैं। सबसे प्राचीन रासो की प्रति सं० १७६० की है जो उदयपुर के राजकीय पुस्तकालय में है।

अतः उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम रासो को प्राचीन पुस्तक नहीं मानते।

पृथ्वीराज के समकालीन ग्रन्थों में रासो का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। 'पृथ्वीराज विजय', 'प्रबन्ध चिन्तामणि', 'हम्मीर महाकाव्य', 'सुरजन चरित्र' आदि ग्रन्थ रासो का कोई संकेत तक नहीं करते अतः हम उसे १८ वीं शताब्दी का ग्रन्थ मान लें तो कोई अत्युक्ति न होगी।

'पृथ्वीराज रासो' की भाषा

डा० विपिनबिहारी त्रिवेदी ने 'चन्दवरदायी और उनका काव्य' नामक ग्रन्थ में 'रासो' की भाषा की कतिपय विशेषतायें बताते हुए लिखा है—

"भाषा-शास्त्री को यदि भारत की गौडीय भाषाओं की अभिसन्धि देखनी हो तो रासो से अधिक चमत्कृत करने वाला दूसरा कोई काव्य-ग्रन्थ उसे न

मिलेगा। विभिन्न भारतीय भाषाओं की संध्या में उसे अनोखे और क्रान्तिकारी सिद्धान्तों के नियमन का अवसर स्थल-स्थल पर आयेगा।

"इस भाषा की परीक्षा करने पर कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसमें वैदिक, संस्कृत, पालि, पैशाची, मागधी, अर्ध-मागधी शौरसेनी, महाराष्ट्री अप भ्रंश, प्राचीन राजस्थानी, प्राचीन गुजराती तथा पंजावी, व्रज आदि भारतीय आर्य भाषाओं के शब्दों के अतिरिक्त अरबी, फारसी और तुर्की शब्दों की अनोखी खिचड़ी तैयार मिलती है तथा देशज शब्दों की भी एक बड़ी संख्या है। परन्तु इस काव्य में कई शक्तियों के अवान्तर में प्रक्षेपों का घटाटोप होते-होते भाषा का रूप और अधिक विकृत हो गया है। अनेक शब्दों के संस्कृत से लगाकर आधुनिक काल तक जितने रूपान्तर हुए हैं उन सब का प्रयोग रासो में मिलता है।"

उक्त उदाहरण में 'पृथ्वीराज रासो' के रचियता चन्दवरदायी के विविध भाषा-ज्ञान का परिचय मिलता है। कवि ने स्वयं ही अपने ग्रन्थ में विशाल धर्म की उक्तियाँ, राजनीति, नवरस, छः भाषाओं, पुराण और कुरान का उल्लेख किया है।

विद्वानों ने 'षट भाषा' को छः भाषाओं से (जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है) तथा कुरान का अर्थ अरबी, फारसी आदि यवनी भाषाओं से लिया है।

उक्ति धर्म विशालस्य, राजनीति नवं रसं।
षट भाषा पुराणं च, कुराणं च कथितं मया।

आदि पर्व छं० ८४

गजनी के अधिपति शहाबुद्दीन के द्वारपाल को अपनी छः भाषाओं की जानकारी का परिचय देते हुए चन्द ने कहा था--

षट् भाष रस्स नव नट्ट नाद।
जानो विवेक विच्चार वाद।

छं० १६६; स० ६७

पृथ्वीराज चौहान को भी छँ भाषाओं का ज्ञान था जिसका उल्लेख चन्द-बरदायी ने इस प्रकार प्रकट किया है—

संस्कृतं प्राकृतं चैव, अपभ्रंशा पिशाचिका
मागधी शूरसेनी च, षट् भाषाश्चैव जायते ।

छं० ७४६ स० १

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पैशाची, मागधी, एवं शौरसेनी इन भाषाओं का प्रचार चन्दवरदायी से पूर्व नवीं शताब्दी के रुद्रट ने अपने 'काव्यालङ्कार' ग्रन्थ में बड़ी कुशलता से किया था—

भाषा भेद निमित्तः, षोढा भेदोऽस्य संभवति
प्राकृत-संस्कृत-मगध-पिशाचभाषाश्च शौरसेनीच ।
षष्टोऽत्र भूरि भेदो देशाविषादपभ्रंशः ।

वाग्भट ने भी 'वाग्भटालंकार' नामक ग्रन्थ में इन भाषाओं का निर्देश किया है—

संस्कृत प्रकृतं चैवापभ्रंशोथ पिशाचिका ।
मागधी सूरसेनी च भाषाः षट सम्प्रकीर्तिताः ।।

अतः इन छै भाषाओं का साहित्य में तथा बोलचाल में काफी प्रचार था और चन्दवरदायी पर भी इन भाषाओं का अवश्य प्रभाव पड़ा था ।

'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी भाषा के प्राचीनतम रूप का उत्कृष्ट निरूपण है । इसका भाषा विषयक अध्ययन सर्वप्रथम एफ० एस० ग्राउज ने किया था और फिर छोटे-मोटे प्रयत्न उसके बाद भी होते रहे और आज भी हो रहे हैं । अब तक जितना भी भाषा सम्बन्धी शोध कार्य हुआ है उसमें 'रासो' की भाषा के सम्बन्ध में हिन्दी में चार मत प्रचलित हुए हैं—

(१) रासो की भाषा अपभ्रंश है ।
(२) रासो की भाषा राजस्थानी (डिंगल) है ।
(३) रासो की भाषा ब्रज (पिंगल) है ।
(४) रासो की भाषा मिश्रित है ।

अब हम प्रत्येक मत का स्पष्टीकरण करेंगे—

१. रासो की भाषा अपभ्रंश है—

'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' नामक ग्रन्थ की भूमिका में मुनि जिनविजय ने

'पृथ्वीराज रासो' की भाषा अपभ्रंश बतलाई है। शोध कार्य करते समय इन्हें चार छप्पय मिले थे जो काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रासो में भी कुछ विकृत अवस्था में प्राप्त हुए। इसी आधार पर उनका कथन है कि रासो 'देश्य प्राकृत भाषा' में लिखा गया। 'देश्य प्राकृत भाषा' से मुनिराज का तात्पर्य प्राकृत हिन्दी अथवा अपभ्रंश से था। यहाँ यह विचारणीय है कि 'पृथ्वीराज रासो' अपभ्रंश में रचा गया अथवा इसकी पूर्ववर्ती भाषा में। डा० श्यामसुन्दरदास ने इनकी कटु आलोचना करते हुए लिखा—"अब प्रश्न यह उठता है कि कौन किसका रूपान्तर है। क्या आधुनिक रासो का अपभ्रंश में अनुवाद हुआ था अथवा असली रासो अपभ्रंश में रचा गया।" कुछ भी हुआ हो इनके मत अवश्य ही रासो की भाषा अपभ्रंश होने की पुष्टि करते हैं।

मुनि कान्तिसागर ने अपने पास एक रासो का ग्रन्थ बताया है जिसका रचना काल सं० १४०३ है। इसके आधार पर उन्होंने 'विशाल भारत' (भाग ३८, अङ्क, ५, १९४६) में रासो की भाषा अपभ्रंश घोषित की थी। यह प्रति अभी तक किसी ने नहीं देखी है।

पं० मथुराप्रसाद दीक्षित ने रासो की रचना अपभ्रंश में मानी है—"यह विषय निर्विवाद है कि पृथ्वीराज रासो १२ वीं शताब्दी में बना है। उस समय की भाषा प्राकृत मिश्रित थी अतएव पृथ्वीराज रासो का भी प्राकृत मिश्रित भाषा में निर्माण हुआ है।" यहाँ इनका प्राकृत मिश्रित से तात्पर्य अपभ्रंश से है।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है कि "दसवीं से १४ वीं शताब्दी का काल जिसे हिन्दी का आदि काल कहते हैं, भाषा की दृष्टि से अपभ्रंश के बढ़ाव को कुछ लोग उत्तरकालीन अपभ्रंश कहते हैं और कुछ लोग पुरानी हिन्दी।++बारहवीं शताब्दी तक निश्चित रूप से अपभ्रंश भाषा ही पुरानी हिन्दी के रूप में चलती थी+++'संदेश रासक' उसी प्रकार के अपभ्रंश १२ वीं १३ वीं शताब्दी में—अर्थात् लगभग उसी समय जब पृथ्वीराज रासो लिखा जा रहा था—रचित हुआ था++रासो कुछ उसी ढंग की भाषा में लिखा गया होगा।++मैंने बहुत पहले अनुमान किया था कि चन्द हिन्दी-परम्परा के आदि कवि और अपभ्रंश परम्परा के अन्तिम कवि थे।"

डा० सुनीतिकुमार चटर्जी का कथन है—"निर्विवाद निष्कर्ष यह है कि मूल पृथ्वीराज रासो की रचना एक प्रकार की अपभ्रंश थी—न कि कोई आधुनिक भारतीय भाषा और एक नवीन भाषा के आरम्भ की अपेक्षा रासो अपभ्रंश भाषा और साहित्य की देन है।"

डाक्टर दशरथ शर्मा ने भी अपने "The original Prithi Raj Rasa : an Apbhransa work" तथा 'पृथ्वीराज रासो की भाषा' नामक निबंधों में रासो की भाषा को अपभ्रंश अथवा पुरानी राजस्थानी भी कहा है।

२. रासो की भाषा राजस्थानी (डिंगल) है—

डाक्टर दशरथ शर्मा ने यद्यपि अपने कतिपय निबंधों में रासो की भाषा को अपभ्रंश कहा है तथापि वे लिखते हैं "इन प्रदेशों की देशी भाषा में रचित राजस्थान के सम्राट और सामन्तों की गौरवमयी गाथा को हम चाहे अपभ्रंश की कृति मानें चाहे प्राचीन राजस्थान की देश्य भाषा की, इसमें वास्तविक भेद ही क्या है।" उक्त उद्धरण से सिद्ध हो जाता है कि शर्माजी रासो की भाषा प्राचीन राजस्थानी (डिंगल) मानते हैं।

मोतीलाल मेनारिया भी प्रारम्भ में रासो की भाषा डिंगल मानते रहे थे। किन्तु बाद में उन्होंने अपने 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' नामक निबन्ध में 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा को राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा बताया और उसके ऊपर प्राकृत, अपभ्रंश, अरबी, फारसी आदि का प्रभाव प्रदर्शित किया।

डाक्टर रामकुमार वर्मा ने 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' लिखते समय 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा डिंगल ही घोषित की है। और 'रासो को 'चारण युग' का डिंगली ग्रन्थ बताया है।

'पृथ्वीराज रासो' की भाषा को डिंगल बताने वाले विद्वानों के मत का खण्डन करते हुए नरोत्तम स्वामी लिखते हैं—इन विद्वानों ने न तो डिंगल को देखा, न पिंगल की इन रचनाओं का अध्ययन ही किया और डिंगल क्या है इससे अपरिचित होने के कारण इन पिंगल रचनाओं को डिंगल कह डाला—केवल इसलिये कि इनकी रचना राजस्थान में हुई।

३. रासो की भाषा ब्रजभाषा (पिंगल) है—

राजस्थान में रचे जाने के कारण ही यदि रासो को डिंगल-ग्रन्थ मान लिया जाय तो अनुचित होगा। ब्रजभाषा तो ब्रज प्रदेश (आगरा, मथुरा, अलीगढ़) की भाषा है किन्तु उसका प्रभाव ब्रजप्रदेश से दूर के कवियों पर भी पड़ा था। उदाहरण के लिए मतिराम, भूषण, पद्माकर, घनानन्द इत्यादि। ठीक ऐसे ही डकार बहुला अथवा व्यंजन द्वित्व शब्दों का प्रयोग वीर रस सम्बन्धी स्थलों पर बहुत कवियों ने प्रदर्शित किया है। अतः भाषा के स्वभाव, प्रकृति एवं गठन द्वारा ही उसका स्वरूप निर्धारण सम्भव है। रासो की भाषा के वाक्य गठन, शब्द चयन, प्रकृति एवं व्याकरण आदि के आधार पर हम उसे पिंगल की रचना मानते हैं। पं० मोतीलाल मेनारिया ने 'डिंगल में वीर रस' नामक पुस्तक में कारक चिह्नों का जो विश्लेषण किया है वह ब्रजभाषा के प्रयोग सिद्ध करता है। डिंगल भाषा के षष्टी में प्रयुक्त 'ए' चिह्न का प्रयोग तो सम्पूर्ण रासो में आदि से अन्त तक नहीं मिलता। अतः 'रासो' की भाषा डिंगल अथवा अपभ्रंश नहीं। रासो की सुमधुर ललित पदावली में ब्रजभाषा का प्रभाव परिलक्षित होता है। कुछ उदाहरण देखिए—

(१) मुक्ताहार बिहार सार सुबुधा,
अब्धा बुधा गोपिनी।
सेतं चौर सरीर नीर गहिरा,
गौरी गिरा जोगिनी॥
बीना पानि सुबानि जानि दधिजा,
हंसा रसा आसिनी।
लंबोजा चिहुरार भार जघना,
विघ्ना घना नासिनी॥

(२) मनहु काम कामिनि रचिय, रचिय रूप की रासि।
पसु पंछी सब सोहिनी, सुर नर मुनियर पास॥

(३) सम बनिता वर बंदि, चंद जंपिय कोमल कल।
सबद ब्रह्म उहि सत्त अपर पावन कहि निरमल॥

उपर्युक्त समस्त उदाहरण प्राचीन पिंगल के हैं। कतिपय विद्वान 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा पिंगल ही स्वीकार करते हैं—

(१) **डा० उदयनारायण तिवारी**—"रासो के वृहत्-संस्करण की भाषा का जहाँ तक सम्बन्ध है, उसका साँचा निश्चय रूप से ब्रज का है।"

(२) **डा० विपिनबिहारी त्रिवेदी**—'रासो' के "व्याकरण के नियम हिन्दी के ही हैं और प्रधानता पिंगल की है, डिंगल की नहीं।"

(३) **डा० नामवरसिंह**—"पृथ्वीराज रासो पूर्वी राजस्थान में मूलतः चंद बलिद्द भट्ट द्वारा अपभ्रंशोत्तर युग में रचा गया और अनेक प्रक्षेपों के साथ अपने विभिन्न रूपान्तरों में भी वह पिंगल की ही रचना है।"

(४) **डा० रामरतन भटनागर**—"रासो की भाषा न मूल अपभ्रंश है न मूल राजस्थानी। वह १६ वीं शताब्दी की ब्रजभाषा का एक अत्यन्त विकृत रूप है।"

(५) उक्त विद्वानों के अतिरिक्त रासो की भाषा पिंगल अथवा ब्रजभाषा मानने वालों में एफ० एस० ग्राउज, जॉन बीम्स, डा० ग्रियर्सन, टेसीटरी, आचार्य शुक्ल, बाबू श्यामसुन्दरदास, मिश्रबन्धु, डा० धीरेन्द्र वर्मा आदि भी विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं।

४. रासो की भाषा मिश्रित है—

डाक्टर विपिनबिहारी त्रिवेदी ने रासो की भाषा पर काफी शोधपूर्ण कार्य किया है। उनका विचार है—"इसमें वैदिक, संस्कृत, पालि, पैशाची, मागधी, अर्धमागधी और शौरसेनी, महाराष्ट्री, अपभ्रंश, प्राचीन राजस्थानी, प्राचीन-गुजराती, तथा पंजाबी, ब्रज आदि भारतीय आर्य भाषाओं के शब्दों के अतिरिक्त अरबी, फारसी और तुर्की के शब्दों की अनोखी खिचड़ी तैयार मिलती है तथा देशज शब्दों की भी एक संख्या है।" उक्त कथन आदि पर्व छं० ८३ से सिद्ध भी होता है। इसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं।

(१) **वैदिक शब्दों का प्रयोग—**

कृत = कुठ

वृन्द = बुन्द

ऋतु = उउ

पृथ्वी = पुहुवि—पुहुमि

हाथ = हथ्थ

अकेला = एकल्ल

कागज = कग्गर—कग्गद

राक्षस = रष्षस

शब्द = सबद

(२) महाराष्ट्री शब्दों का प्रयोग—

क्षय = खय, षय

क्षुधा = षुद्धा

क्षिति = षिति

शिक्षा = सिष्षां

(३) **पालि, पैशाची, शौरसेनी और महाराष्ट्री में 'श' के स्थान पर 'स' बदल जाता है। चंद ने भी ऐसे प्रयोग किये हैं**—

दिश = दिसि

वेश्या = वेसवा, वेसबा

शब्द = सद्द, सब्द

उद्देश्य = उद्देस

(४) अर्धमागधी के शब्द—

नगर = नयर

सागर = सायर

लोग = लोय

भट = भर

(५) **फारसी शब्दों का प्रयोग**—डा० धीरेन्द्र वर्मा 'हिन्दी भाषा के इतिहास' में लिखते हैं "संख्या सहस्त्र के स्थान पर संख्या १० शत का प्रचार मध्य-युग में हो गया था। कदाचित इसी कारण से फारसी का एक शब्द हजार मुसलमान काल से समस्त उत्तर भारत में प्रचलित हो गया।" रासो में संख्या बोधक विशेषण के रूप में हजार शब्द का हजार बार प्रयोग मिलेगा।

कविराजा श्यामलदास अपने 'दी एन्टीक्विटीज ऑथेन्टिसिटी एन्ड जेन्यूइननेस ऑफ दी एपिक कॉल्ड प्रथीराज रासा एन्ड कामनली एस्क्राइब्ड टू चंदवरदाई' नामक निबन्ध में लगभग १० प्रतिशत फारसी शब्दों का व्यवहार देखते हैं।

मिश्रबन्धु अरबी-फारसी शब्दों के प्रयोग के विषय में कहते हैं—"...... भारत में शहाबुद्दीन के साथ ही यवनों का प्रवेश नहीं हुआ। उसके प्रायः दो-सौ बरस पहले से ही महमूद गजनवी की चढ़ाइयाँ होने लगी थीं और पंजाब का एक बड़ा भाग मुसलमानों के अधिकार में चला गया था। महमूद से भी पहले सिंध तथा मुलतान के देशों पर मुसलमानों का अधिकार हो गया था। अतः पंजाबी भाषा में मुसलमानी शब्दों का मिलना स्वाभाविक ही था। फिर चंदवरदाई का जन्म लाहौर में हुआ था, वहाँ उस समय मुसलमानों ही का अधिकार था। चंद ने अपना बाल्यकाल इसी स्थान पर बिताया।......... पृथ्वीराज के राज्य की सीमा मुसलमानो राज्य से मिली हुई थी। ऐसी दशा में, व्यापारिक सम्बन्ध से ही मुसलमानों का यातायात हिन्दुओं के बोच अवश्य रहता होगा। इन सब कारणों से चन्द की भाषा में मुसलमानी शब्दों का होना स्वाभाविक था।"

कुछ अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग देखिये—

षां भट्टी महनंग षान षुरसानी बब्बर।
हब्स षान हुज्जाब अब्ब आलम जासबर॥

अथवा

ले चल्यो सिताबी करी फारि फौजं।
परे पीर सै पंच तह षेत चौजं॥

(६) **पंजाबी शब्दों का प्रयोग**—'पृथ्वीराज रासो' में हनंदे, परद्दी, कूकन्दा, लूसन्दा, कनबज्जा, रज्जां, उपन्नां, उड़ाइयाँ, उचाइयाँ, हसाइयाँ आदि शब्दों का प्रयोग भी मिलता है—

१. समरसिंघ चहुआन मिलि, दूष्ष हनन्दे आइ।
२. सुहन सुनंदी बत्तरी, भुअन परद्दी झाल।
३. हाली हल कनवज्ज, भंझ केहरि कूकंदा।
बजम राव कुमार, लोह लग्गा, लूसंदा।

चहुआन महोवे जुद्ध हुआ, ग्रेहा गिद्ध उड़ाइयाँ।
रन भङ्ग रावनै वनविरद लंगै लौह उचाइयाँ।

(७) संस्कृत शब्दों का प्रयोग—

मनहुँ कला ससिभान, कला सोलह सो बन्निय।
बाल बेस ससि ता समीप, अम्रित रस पिन्निय।
विगसि कमल स्रिग भ्रमर, बैन खंजन मृगलुट्टिय।
हीर कीर अरु बिम्ब मोति नख शिख अहि घुट्टिय।
छत्रपति गयंद हरि हंस गति, बिह बनाय संचै संचिय।
पदमिनिय रूप पदमावतिय, मनहु काम कामिनि रचिय॥

उक्त उदाहरण में समीप, कमल, मृग, हीर, कीर, छत्रपति, हरि, काम, कला इत्यादि संस्कृत के शब्द हैं।

(८) प्राकृत, अपभ्रंश तथा व्रजभाषा के अनेक शब्दों का प्रयोग रासो में मिलता है—अद्ध, दिव्य, प्राकृत, अनुस्वारांत शब्द तथा द्वित्त्व शब्द अपभ्रंश के हैं। व्रज के विषय में पहले लिखा ही जा चुका है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा का कोई विशुद्ध रूप निर्धारित नहीं कर पाते अतः हम शुक्लजी के शब्दों में कह सकते हैं—

"भाषा की दृष्टि से यदि ग्रन्थ को कसते हैं तो और भी निराश होना पड़ता है क्योंकि वह बिल्कुल बे ठिकाने है, उसमें व्याकरण आदि की कोई व्यवस्था नहीं है। दोहों की और कुछ-कुछ कवित्तों की भाषा तो ठिकाने की है, पर त्रोटक आदि छन्दों में तो कहीं-कहीं अनुस्वारांत शब्दों की ऐसी भरमार है जैसे किसी ने संस्कृत प्राकृत शब्दों की नकल की हो। कहीं-कहीं तो भाषा आधुनिक ढाँचे में ढली दिखाई पड़ती है, क्रियाएँ नए रूपों में मिलती हैं पर साथ ही कहीं-कही भाषा अपने असली प्राचीन रूप में भी पाई जाती है, जिसमें प्राकृत और अपभ्रंश शब्दों के रूप और विभक्तियों के चिन्ह पुराने ढंग के हैं। इस दिशा में भाटों के इस वाग्जाल के बीच कहाँ पर कितना ग्रन्थ असली है इसका निर्णय असम्भव होने के कारण यह ग्रन्थ न तो भाषा के इतिहास के और न साहित्य के जिज्ञासुओं के काम का है।"

'पृथ्वीराज रासो' का छन्द-विधान—

काव्य का कलापक्ष भाषा, अलंकार, छन्द, रीति, गुणादि से समन्वित होता है। काव्य में रस अंगी है और ये सब अंग अथवा रस के उपकरण मात्र कविता कामिनी की सहज सुकुमारता की वृद्धि छन्दों के कारण ही है। छन्द की परिभाषा करते हुए विद्वानों ने वर्ण, मात्रा, गति लय, यति आदि नियमों से समन्वित शैली को छन्द कहा है। कविता में छंद का उतना महत्व नहीं है जितना भाव का। बिना छंद की कविता भी ग्राह्य होती है जैसा कि कालरिज ने कहा है—

"Poetry of highest kind may exist without meter"

भारतीय लक्षण ग्रन्थों को दो प्रकार का बताया गया है—

(१) संस्कृत छंद, और

(२) प्राकृत छंद।

'संस्कृत' छन्दों में वर्ण विचार की प्रधानता रहती है और 'प्राकृत' में मात्राओं की गणना परमावश्यक है। प्राकृत छंदों का आदि रूप 'गाथा' है। इसे 'आर्या' भी कहते हैं। संस्कृत नाटकों में आर्या छंद का प्रयोग होता रहा है और उसका प्रभाव चारण युग के कवियों ने भी ग्रहण किया है।

छंद भावों का परिधान है। किन्तु छंद और कविता का सम्बन्ध अत्यन्त दृढ़ नहीं जैसा कि कालरिज के शब्दों में व्यक्त किया गया है। कवि के लिए छन्द योजना यद्यपि आवश्यक नहीं फिर भी वर्णनीय विषय एवं रस को ध्यान में रख काव्य में छन्द का बंधन स्वीकार करना पड़ता है। आचार्य शुक्ल भी छन्द की अनिवार्यता पर दृढ़ हैं। काव्य में छन्दों का प्रयोग आवश्यक है। यदि छन्दों का काव्य में प्रयोग नहीं हुआ है तो अनुभूत नाद सौन्दर्य की प्रेषणीयता का प्रत्यक्ष ह्रास होता है। अतः सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं की व्यंजना के लिये भाव-रसानुकूल छन्दों का प्रयोग परमावश्यक है।

'पृथ्वीराज रासो' में चन्दवरदाई ने अनेकानेक छन्दों का प्रयोग कर एक समस्या उत्पन्न कर दी है। इतने छन्दों का प्रयोग, जितना रासोकार ने किया है, अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। उसके छन्दों को हम निम्नांकित क्रम में रख सकते हैं—

(१) वर्ण-गणना प्रधान

१—साटक
२—दण्डक
३—भुजंगी
४—भुजंग प्रयात
५—वेली भुजंग
६—मोती दाम
७—श्लोक
८—विराज
९—नाराच
१०—नाराच
११—रसवला
१२—मलया
१३—विज्जुमाला
१४—लघुत्रोटक
१५—त्रोटक
१६—वृद्ध नाराच
१७—अर्द्ध नाराच
१८—लघु नाराच
१९—चावर नाराच
२०—दोधक
२१—मोदक
२२—मालिनी
२३—पारस
२४—कंठ सोभा
२५—कंठ भूषन
२६—युक्त
२७—वृद्ध भ्रमरावलि
२८—कलाकल
२९—मुकन्दडामर
३०—भ्रमरावली

(२) मात्रा-गणना प्रधान

१—गाथा
२—आर्या
३—दूहा
४—पद्धति
५—अरिल्ल
६—हनुफाल
७—चौपाई
८—बाधा
९—बिअष्षरी
१०—मुरिल्ल
११—काव्य
१२—वेली मुरिल्ल
१३—रासा
१४—रोला
१५—अर्ध मालती
१६—मालती
१७—दुर्मिल
१८—ऊधो
१९—उघोर
२०—चंद्रामना

२१—गीत मालती	२२—सोरठा
२३—करबा	२४—माधुर्य
२५—निसाँणी	२६—वेली द्रुम
२७—दंडमाली	२८—कमंध
२९—दुर्गम	३०—लीलावती
३१—त्रिभंगी	३२—फारक

(३) संयुक्त गणना प्रधान	(४) अन्य
१—बथुआ	१—चालि
२—कवित्त	२—जुति चाल
३—कवित्त विधान जाति	३—वार्ता
४—वस्तु वधक रूपक	४—बचनिका
५—तारक	
६—कुण्डलियाँ	

उपर्युक्त समस्त छन्दों में कुछ छंद ऐसे हैं जिनका प्रचलन न तो पहले था ही और न उनका उल्लेख ही किसी छन्द शास्त्र में मिलता है। रासो के प्रत्येक प्रस्ताव में अनेक प्रकार के छंदों का प्रयोग मिलता है। रासो की छन्द-योजना अत्यन्त कुशल है। वास्तव में कवि की आश्चर्य जनक प्रतिभा का अवलोकन हमें उसकी छन्द-योजना में ही मिलता है। उसका छन्द-योजना-कौशल अद्वितीय है। यों तो छन्दों की नुमायश केशव ने भी लगाई है किन्तु उतनी सजावट एवं भावरसानुकूलता उनमें नहीं जितनी चंदवरदायी में है।

'पृथ्वीराज रासो' में ७२ प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए हैं किन्तु सर्वाधिक महत्व छप्पय का रहा है। छप्पय 'पृथ्वीराज रासो' में सबसे अधिक व्यवहृत छन्द है। दूसरा स्थान दूहा का और तीसरा स्थान पद्धरी का है। अन्य प्रमुख छन्दों में गाहा, आर्या, अरिल्ल, नाराच, त्रोटक, साटक, भुजंगी हैं।

छप्पय—यह छन्द १७ वीं शताब्दी से पूर्व कवित्त कहलाता था अतएव 'पृथ्वीराज रासो' में भी कवित्त के नाम से ही इसका प्रयोग हुआ है। पिंगल-परीक्षा करने पर ज्ञात हुआ कि प्राचीन 'कवित्त' छंद वास्तव में 'कवित्त' नहीं है वरन् छप्पय है। रासो में प्रयुक्त समस्त कवित्त छन्द छप्पय ही हैं। रासो

में छप्पय के ७१ भेदों का प्रयोग देखा गया है। 'शिवसिंह सरोज' के कर्ता ने 'पृथ्वीराज रासो' को छप्पयों का ही काव्य कहा है। 'छप्पय' की रचना करने में चन्दवरदायी अत्यन्त कुशल एवं सिद्धहस्त हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं—

"चन्दवरदाई छप्पयों का राजा था। + + + वैसे तो हर तलवार की झंकार में चंदवरदायी तोटक, तोमर, पद्धरी और नाराच पर उतर आते हैं, पर जमकर वे छप्पय और दूहा ही लिखते हैं।" एक उदाहरण उद्धृत करते हैं—

हय गय हय गय अरथ, रथ्थ नर नर सों लग्गा।
हय सों हय पायल सु पाय, करि सो करि भग्गा।
ईस आन वर चवै, सूर सूरन हक्कारिय।
सार धार झिल्लै, प्रहार बीरा रस धारिय।
धरि एक भयानक रुद्र हुआ, सीस भाल गंठी सु कर।
कवि कंद दंद दुअ दल भयौ, मुगति मग्ग षुल्लै विदर॥

दूहा—रासो में 'छप्पय' छन्द के पश्चात् सर्वाधिक व्यवहृत छंद 'दूहा' है। इसके तीन नाम रासो में प्रयुक्त हुए हैं। (१) दोहा, (२), दुहा, (३) दूहा। चन्दवरदायी ने दूहा भी जमकर ही लिखा है। कुछ उदाहरण देखिए—

१—आरब पति अर सिंध तट, बिन सलाम सुरतान।
तिन उप्पर सज्जिय सयन, कहर छंडि फुरमान॥
२—करि जुहार ढिल्लिय नयर, मुक्कि नयर जुगिनेस।
जस भावी तस त्रिम्मयो, करि न वीर अंदेसु॥

पद्धरी—'रासो' का तीसरा सर्वाधिक व्यवहृत छन्द 'पद्धरी' है। अपभ्रंश युग में यह छन्द बहुत प्रमुखता रखता था। 'पृथ्वीराज रासो' के पद्धरी छन्द में १६ मात्राएँ तथा ४ चौकल एवं अन्त में जगरण का नियम है। समस्त पद्धरी छन्द अत्यन्त पुष्ट एवं दृढ़ हैं और चन्दवरदायी की उन पर छाप है। कतिपय उदाहरण देखिए—

१—त्रयगुनह तेज त्रयपुर निवास, सुर सुरग भूमि नर नाग भास।
फुनि ब्रह्म रूप ब्रह्मा उचार, कथि चतुर वेद प्रभु तत्त सारि।

२—सिंगार सकल किय राज ज्ञाम. उच्चार वेद किय विप्रताम्र ।
बाजित्र बज्जि मंगल अनेव, माननि उचार सामुन्न गेव ।

गाहा—प्राकृत भाषा में सर्वाधिक व्यवहृत छन्द गाहा अथवा गाथा था। गाहा अथवा गाथा नाम मात्र के उच्चारण से ही प्राकृत रचना का बोध हो जाता था। चन्द ने भी रासो में यह छन्द प्रयुक्त किया है—

सत्त खनै आवासं, महिलानं मद्द सद्द नूपरया।
सतफल बज्जनु पयसा, पब्बरियं नैव चालति।

आर्या—

एकथ्योय सजोई, एकथ्यी होइ समर नियोसौ।
अनि लेय यथा पदमं, अदलौए राज रिद एव।

अरिल्ल—

च्यारि प्रकार पिष्षि बारुन, भद्र मंद मृग जाति सधारन।
पुच्छि चंद कवि को नरबत्तिय, सुर वाहन किम आइ धरत्तिय।

नाराच—

हियंत सोचि राज सू जु राज जग्गि जोगयं।
सबल्ल राज साम दंड भेदि बंध भोगयं।
सुदान आन अप्पि पात्त दैवयं न बोधयं।
सवर्त्त वर्त्तमान रे अनेक निद्धि सोधयं।

त्रोटक—

नृप छंडि प्रजंक प्रजंक पला।
मुह मुंदिह मानक मोद कला।
नृप दीन हल्यौ बहु चित्त चितं।
सुह ल्या जनु पोंनय पीप पतं।

साटक—

मुक्तहार बिहार साट सबुधा, अबधा, बुधा गोपिनी।
सेतं चौर सरीर नीर गहिरा, गौरी गिरा जोगिनी।
बीना पानि सुबानि जानि दधिजा, हँसा रसा आसिनी।
लंबोजा चिहुरार भार जघना, विघ्ना घना नासिनी॥

भुजंगी—

करी अस्तुती यं स्वहा इंदजोगं।
तहा इन्द्र आयौ सुरं नाग भोगं।
इतं देव सा देव सारन्न आयौ।
तिनं काटि दीयंत सो पाप पायौ।

'पृथ्वीराज रासो' में चन्दवरदायी ने विशेषतः प्राकृत एवं अपभ्रंश युग के छन्दों को प्रमुखता दी है। डा० विपिनविहारी त्रिवेदी ने 'चंदवरदायी और उनका काव्य' नामक ग्रन्थ में 'पृथ्वीराज रासो' के छन्दों की समीक्षा करते हुए लिखा है "......इस काव्य के अधिकांश छन्द प्राकृत और अपभ्रंश युग के हैं। जिनमें से कुछ का प्रयोग परवर्ती हिन्दी साहित्य में जोधराज कृत हम्मीर-रासो और सूदनकृत सुजान-चरित्र प्रभृति वीर प्रबंध-काव्यों मात्र के अतिरिक्त अपेक्षाकृत कम देखा जाता है तथा इससे यह भी निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि इसके मूल रूप का प्रणयन १२ वीं शताब्दी में ही हुआ होगा जब कि इन छन्दों का बोलबाला था।" डाक्टर साहब ने अन्यत्र भी रासों के छन्दों की व्याख्या की है—

"विविध आकार-प्रकार वाले रासो के प्रस्तावों की विषय छंद-योजना और उसका स्वच्छन्द दीर्घ विस्तार सरसता का साधक है, बाधक नहीं। केशव की रामचन्द्रिका और सूदन के सुर्जन चरित सदृश रासो में भी छन्दों का मेल है परन्तु उनकी भाँति उसके छन्द कथा प्रवाह में अवरोध नहीं डालते वरन् अवसर के अनकूल ओज, माधुर्य और प्रसाद गुणों की सफल सृष्टि करते हैं। + + अस्तु हम साहस के साथ कह सकते हैं कि कवि ने अपने छन्दों का चुनाव बड़ी दूरदर्शिता से किया है। कथा के मोड़ों को भली प्रकार पहिचान कर वर्णों और मात्रा की अद्भुत योजना करने वाला रासो का रचयिता वास्तव में छन्दों का सम्राट् था।"

आदि कवि चन्द के छन्द, अनुभूति एवं रस की व्यंजना करने में अत्यन्त सहायक हैं। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनके छन्द भावोत्कर्ष में महान सहायक हैं। भावों के साथ पूर्ण रूपेण उनका मेल है और वे काव्य की आत्मा को आघात नहीं पहुँचाते। उनका छन्द-योजना-कौशल चमत्कारपूर्ण

है। इसी योजना-कौशल पर डा० नामवरसिंह का मत विशेषोल्लेखनीय है—"वस्तुतः हिन्दी में चन्द को छन्दों का राजा कहा जा सकता है। भाव भंगिमा के साथ-साथ दनादन भाषा नए-नए छन्दों की गति धारण करती चलती है और विशेषता यह है कि बल खाती हुई नदी में बहते हुए चित्त को कोई मोड़ नहीं खटकता। छन्द-परिवर्तन के प्रवाह में सहज आत्म-विस्मृति का ऐसा सुख अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। रासो एक ही साथ संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश की छन्द-परम्परा के पुनरुज्जीवन तथा हिन्दी के नूतन छन्द-संगीत के सूत्रपात की संधि बेला है। इस तमाम छन्द-संघटन में भी रासो का अपना हिन्दी काव्योचित संगीत सर्वोपरि है।"

प्रकृति-चित्रण—

मानव सौन्दर्योपासक जीव है। प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति हमारे सभी कवि और साहित्यकार आस्था रखते आए हैं। उनके मन इस सौंदर्य-दर्शन से आनन्दानुभूति करते रहे हैं और वे अपनी लेखनी द्वारा अनुभूति एवं अलौकिक छटा को व्यक्त करते रहे हैं। प्रकृति के समग्र पदार्थ, उनके नेत्र, कान एवं अन्तरात्मा को उल्लासमय करते आए हैं।

हिन्दी-कवियों ने प्राकृतिक सौन्दर्य के अतीव मनोरम वर्णन प्रस्तुत किए हैं। भारत वसुन्धरा प्राकृतिक सौन्दर्य की अधिष्ठात्री देवी हैं। प्रकृति की सर्व-श्रेष्ठ क्रीड़ा भूमि भारतवर्ष ही है। यहाँ ६ ऋतुएँ बड़ी ही मनोरम एवं मनोहर होती हैं। प्रत्येक ऋतु में प्राकृतिक सौंदर्य की उद्भावना जैसी होती है उसे कविजन वैसी ही हमारे समक्ष रखते आए हैं। कविवर चन्दवरदायी ने भी 'पृथ्वीराज रासो' में प्राकृतिक सौन्दर्य के भव्य चित्र अंकित किए हैं। किंतु उनका समग्र प्रकृति-चित्रण संस्कृत काव्य ग्रन्थों की शैली पर आधारित है। डाक्टर विपिनबिहारी त्रिवेदी ने लिखा है—

"कथा के इस प्रसंग में षट-ऋतुओं का रोचक वर्णन पढ़ने को मिलता है। यद्यपि उद्दीपन को लेकर ही इसकी रचना हुई है परन्तु यह रासोकार के ऋतु विषयक ज्ञान, प्रकृति निरीक्षण, मानवीय व्यापारों की अनुरंजना और वर्णन कौशल का परिचायक है। X X रासो का प्रस्तुत ऋतु-वर्णन सूफी कवि जायसी

के 'पद्मावत' के षट ऋतु-वर्णन के समान ईश्वर से मिलन और वियोग की प्रतीकता के मिस नहीं, भक्त कवि तुलसी के मानस के किष्किन्धा काण्ड की वर्षा और शरद के वर्णन की भाँति नीति और भक्ति आदि का उपदेशक नहीं, राठौर नरेश पृथ्वीराज के खण्ड काव्य 'बेलि क्रिसन रुक्मणीरी' के ऋतु-वर्णन की तरह अलंकारों से बोझिल, उखड़ा हुआ और रूखा नहीं फिर भी उसमें अपना ढङ्ग और अपना आकर्षण है तथा मुख्य कथानक से उसे जोड़ने का कवि-चातुर्य परम सराहनीय है।"

उक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि चन्दवरदाई का प्रकृति-चित्रण मुख्यतः दो रूपों में हुआ है। (१) आलम्बन रूप में, (२) उद्दीपन रूप में। प्रकृति चित्रण के भिन्न-भिन्न रूपों का समावेश चन्द ने नहीं किया है। वैसे एक आध चि त्र अवश्य मिल सकता है। रासो में स्वतन्त्र रूप में प्रकृति-चित्रण का एकांत अभाव रहा है। क्योंकि चन्दवरदाई दरबारी कवि थे अतः उनका ध्यान प्रकृति के विविध मनोरम दृश्यों में नहीं रमा। 'कनवज्ज समय' में ऋतुओं के मनोरम चित्र अंकित करने में कवि को काफी सफलता मिली है।

'पृथ्वीराज रासो' में प्रकृति के समावेश की मुख्यतः तीन शैलियाँ मिलती हैं—

(१) आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण,

(२) उद्दीपन रूप में प्रकृति चित्रण,

(३) अलङ्कार-विधान के रूप में प्रकृति चित्रण।

(१) आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण—

प्रकृति की स्वतन्त्र महत्ता की स्वीकृति आलम्बन रूप में किए गए प्रकृति-चित्रण में ही मिलती है। हमारा संस्कृत साहित्य आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण करता आया है। वाल्मीकि, भवभूति, कालिदास, बाणभट्ट प्रभृति विद्वान ने प्रकृति के सुन्दर एवं संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत किए हैं। रासोकार चन्दवरदायी के लिए प्रकृति साध्य न बन कर साधन बनी है। फिर भी उन्होंने अपनी राजकीय सीमाओं में आबद्ध रहते हुए भी आलम्बन-रूप में प्रकृति के अनेक चित्र प्रस्तुत किए हैं। केवल एक चित्र ही इस कथन को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है—

गज्जरत दरिय सम्मीर सद्द ।
निझझ्झरत झरर नद रोरनद्द ।
निझ्झरहि झरिय झरहर करूर ।
उम्भरहि सलित सलिता सपूर ।

(२) उद्दीपन रूप में प्रकृति चित्रण—

रासो में प्रकृति-चित्रण प्रधानतः उद्दीपन रूप में हुआ है। विरह के भावों को उद्दीप्त करने के लिए ऋतु-वर्णन की योजना कवियों का इष्ट रहा है। विरहोद्दीपन के लिए काव्य में प्रकृति-चित्रण दो रूपों में होता रहा है—

(१) संस्कृत साहित्य की रूढ़ि बद्ध 'षटऋतु-वर्णन' परम्परा के रूप में।

(२) अपभ्रंश साहित्य तथा जन गीतों की 'बारह मासा' वर्णन परम्परा के रूप में।

'पृथ्वीराज रासो' में पहली परम्परा का दीर्घ विकास मिलता है। उसमें परिपाटी-विहित रूप में ऋतु-वर्णन है फिर भी उसमें चन्दवरदाई की अनुपमेय मौलिकता का प्रतिफलन हुआ है। चंद के ऋतु विषयक ज्ञान, उसके सूक्ष्म विश्लेषण तथा वर्णन कौशल की त्रयी अभूतपूर्व है। प्रत्येक ऋतु का सुन्दरतम रूप प्रस्तुत करने में कवि को पूर्ण सफलता मिली है।

'पृथ्वीराज रासो' में संयोगिता-हरण को प्रस्थान करने से पूर्व पृथ्वीराज अपनी रानियों के पास मिलने जाते हैं। सर्व प्रथम वे इच्छिनी के महल में प्रविष्ट होते हैं। इच्छिनी वसंतागमन का सुख और अपना विरह-वर्णन कर राजा को इस ऋतु में अपने पास रहने के लिए बाध्य कर लेती है। ऐसे ही प्रत्येक रानी ऋतु विशेष का सुख और वियोग कष्ट जताकर राजा को छै ऋतुओं में घर से बाहर नहीं निकलने देती। प्रत्येक ऋतु का रूप प्रस्तुत करने में कवि चन्द ने कुछ उठा नहीं रखा—

(१) वसंत—

मवरि अंत फुल्लिग, कदंब रयनी दिघ दीसं।
भवंर भाव भुल्ले, भ्रमंत मकरंदव सीसं।
बहत बात उज्जलिति, मौर अति विरह अगनि किय।
कुहू कुहंत कल कंठ, पत्र राखस रति अग्गिय।

पय लग्गि प्रान पति बीनवौं, नाह नेह मुझ चित धरहु ।
दिन दिन अवद्धि जुब्बन घटै, कंत वसंत न गम करहु । छं० १८

(२) ग्रीष्म—

दीरघ दिन निस हीन, छीन जलधर वैंसनर ।
चक्रवाक चित मुदित, उदित रवि थकित पंथ नर ।
चलत पवन पावक्क, समान परसत सु ताप मन ।
सुकत सरोवर मचत, कीच तलफन्त मीन तन ।
दीसंत दिगम्बर सम सुरत, तरु लतान गय पत्त झरि ।
अक्कुल दीह सम्पति विपति कंत गमन ग्रीषम नकरि । छं० १७

(३) वर्षा—

अब्दे बद्दल मत्त मत्त विषया दामिन्य दामायते ।
दादुर दर मोर सोर सरिसा पप्पीह चीहायते ।
अगारीय वसुन्धरा मलिलता लीला समुद्रायते ।
जामिन्या सम वापुरो बिसरता पावस्स पंथानते ।

× × ×

घन गरजै घरहरै पलक, निस रैंत निघट्टै ।
सजस सरोवर पिष्षि दियौ ततहन घन फट्टै ।
जल बद्दल वरषंत, पेम पल्लहौ निरंतर ।
कोकिल सुर उच्चरै, पहरंत पंचसर ।
दादुरह मोर दामिनि दसय, अरि चवत्य चातक रटय ।
पावस प्रवेस बालम न चलि, विरह अगिनि तन तप घटय ।।

(४) शरद—

पिष्षि रयन न्रिमलिय, फूल फूलंत भ्रमर धर ।
श्रबन सबद नहि सुझै, हँस कुरलंत मानसर ।।
कवल कद्रव विगसंत, तिनह हिमकर परजरै ।
तुमहि चलत परदेश, नहीं कोई संस उबारै ।।
निग्रहन रत्त भर पंच सर, अरि अनंग अगें बहै ।
जौ कन्त गवन सरदैं कहै, तो विरहिनि सिष हवै दहै ।।

(५) हेमंत—

छिन्नं बासुर सीत दिघ्घ निसया सीत जनेतं बने ।
सेज सज्जर बानया बनितया आनंग आलिंगने ।।
यौ बाला तरुनी वियोग पतनं नलिनी हिमंते हियं ।
मा मुक्के हिमवंत मंत गमने प्रमदा निरालम्बनं ।

(६) शिशिर—

रोमाली बन नीर निद्ध चरयो गिरिदंग तारायने ।
पब्बय पन कुचानि जानि मलया फुंकार फुंकारए ।
सिसिरै सर्वरि वारुनी च विरहा माहद्द मुब्बारए ।
मा कंते ग्रिगबद्ध मध्य गमने किं दैव उच्चारए ।
आगम फाग अवंत, कंत, सुनि मित्त सनेही ।
सीत अंत तप तुच्छ, होइ आनंद सब ग्रेही ।
नर नारी दिन रैंनि, मैंन मदमाते डुल्लें ।
सकुच न हिय छिन, एक, वचन मनमाने बुल्लें ।
सुनो कंत सुम चितं करि, रयनि गवन किम कीजइय ।
कहि नारि पीय बिन कामिनी, रिति ससहर किम जींजइय ।

उपर्युक्त समस्त ऋतुओं में पृथ्वीराज की प्रत्येक रानी उसे रति-विषयक उत्तेजना प्रदान करने की चेष्टा करती है । अतः यह समूचा वर्णन कामोद्दीपक भावों से आप्लावित है ।

पृथ्वीराज चौहान के कुछ और ही रंग हैं । उस पर शशिवृता का सौन्दर्य छा गया है । पृथ्वीराज नट द्वारा देवगिरि की राजकुमारी शशिवृता का सौन्दर्य वर्णन सुनकर आतुर हो उठता है । फिर प्रकृति भी उसे उद्दीप्त करती है । मयूर की बोली, मेढ़कों की टर्र-टर्र, झींगुरों की झन-झन, चातक की रट से राजा की नींद हराम है । बादलों की गम्भीर गर्जना के साथ भीषण वर्षा उसे कामाग्नि से पीड़ित करती है—

मोर सोर चिहुँ ओर । घटा आषाढ़ बधि नभ ।।
बक दादुर झिंगुरन । रटत चातिग रजत सुभ ।।

नील वरन बसु मतिय। पहिर आंञ्जन अलंकिय ।।
चंद बधू सिर व्यज। धरे वसुमत्ति सुराज्जय ।।
वरषंत बूंद घन मेघ सन। तब सुमिरं जद कुंआरि ।।
.... झनसथ्थ करि ।।

इस प्रकार उद्दीपन रूप में प्रकृति-चित्रण रासोकार की सफलता का सूचक है।

(३) अलंकार-विधान के रूप में प्रकृति चित्रण—

रासोकार ने वस्तु व्यापार की तुलना करते समय प्रकृति से अनेक उपमानों का योग लिया है। वैसे अलंकार-धिधान के रूप में प्रकृति-चित्रण करना कवि का मुख्य लक्ष्य नहीं रहा। यही कारण है कि इस रूप में चंद ने प्रकृति के रूपों का चित्रण बहुत कम किया है। फिर भी जो कुछ है वह अनूठा है। प्रकृति के विभिन्न उपकरणों को लेकर उत्प्रेक्षा, उपमा तथा रूपक का निर्वाह करने में कवि कुशल है—

चंद वदनि मृगनयनि। मोंह असित को दण्ड बनि ।।
गंग मंग तरलति तरंग। बैनी भुअंग बनि ।।
कीर नास अगु दिपति। दसन दामिक दारमकन ।।
छीन लंक श्रीफल अपीन। चंपक वरन तन ।।

× × ×

आसा महीप कब्बी। नव नव कितीय संग्रह ग्रंथ ।।
सागर सरिस तरंगी। बोहथ्यं उक्तियं चलियं ।।

रासो में एक स्थल ऐसा भी है जहाँ प्रकृति को पावस ऋतु के रूप में ही वर्णित कर दिया है—

झरि पावस सिर प्राहारं। वरषत रुद्धि घरं छिद्धवारं ।।
षंग विज्जुल जोगनि सिरधारं। बग्गीं सौ जम्बू परिवारं ।।
कटि कूक करें जिनके किरयं। मनौं इन्द्रबधू घर में रचयं ।।
झमक्कै सषग्गीन षग्गनि बजे। सुनि वद्दति झिंगुर सद्दलजै ।।
लपटाइ सुसोकिय बेलतरं। पर रंभन रंभन रंभ बरं ।।
अंकुरी बढ़ि बैलि सुबीर बरं। बहि पावस झार झरं ।।

इस प्रकार स्पष्ट है कि चंदवरदायी ने 'पृथ्वीराज रासो' के अन्तर्गत प्रकृति का सुन्दर निरूपण प्रस्तुत किया है। संस्कृत के एवं अपभ्रंश के काव्य ग्रन्थों के आधार पर ही उन्होंने उद्दीपन रूप में प्रकृति-चित्रण किया है। किन्तु उनसे प्रभावित होकर चंद ने इन ग्रन्थों का अन्धानुकरण नहीं किया वरन् अपनी कल्पना कुशलता से नूतनता की सृष्टि की है।

'पृथ्वीराज रासो' में वीर भाव और कोमल कल्पनाएँ—

रासो युद्ध प्रधान काव्य है और इसमें तत्कालीन वीरत्वादर्श का सुन्दर निरूपण किया गया है। रासो की प्रायः सभी घटनाएँ युद्ध प्रधान हैं। क्षत्रियों के क्षत्रियत्व पूर्ण दर्प एवं स्वाभिमान की झाँकी 'पृथ्वीराज रासो' में मिलती है और उनके युद्ध उत्साह, युद्ध कौशल आदि के सुन्दर चित्र अतुलनीय एवं बेजोड़ हैं। वीरगाथाकाल की विशेषता ही यह रही है कि वीर वीर गति प्राप्त करने में ही सर्वस्व समझते थे। रासोकार के सभी वीर यही कहते हैं—

(१) कहै राज प्रथिराज, मरन छित्रिय सत निद्धी।

(२) रजपूत मरन संसार वर।

(३) सूर मरन मङ्गली।

(४) सा पुरुषां का जीवना, थोड़ाई है भल्लां।

(५) क्षणे विध्वंसिनी काया, का चिंता मरणे रणे।

वीरगाथाकाल की विशेष प्रवृत्ति युद्ध परक थी किन्तु फिर भी आचार्य शुक्ल का मत है—"राज्याश्रित कवि और चारण जिस प्रकार नीति, शृङ्गार आदि के फुटकर दोहे राज सभाओं में सुनाया करते थे उसी प्रकार अपने आश्रयदाता राजाओं के पराक्रम पूर्ण चरितों या गाथाओं का वर्णन भी किया करते थे। यह प्रबन्ध-परम्परा 'रासो' के नाम से पाई जाती है जिसे लक्ष्य करके इस काल को हमने 'वीरगाथा' काल कहा है।"

'पृथ्वीराज रासो' में वीर भावों का रूप वीरता, आतंक, निर्भीकता, साहस तथा आत्मबलिदान आदि में प्रगट हुआ है। चन्दवरदाई ने रासो में स्वामि धर्म पालन का वास्तविक प्रचार किया है—

१—स्वामि काज लग्गे सु मति, षंड षंड धर धार।

हार हार मंडे हिए गुथ्थि हार हर हार।

२—केवल सु ध्रम्म पित्रिय तनह, कन्ह कंक जौ सद्ध है।
३—सामंत सूर साध्रम्म धनि, सज्जिय भज्जिय जानिए।
संसार असत आसत्त गति इहे तत्त करि मानिए।

इस प्रकार स्वामिधर्म ही सर्वस्व है। इसके निर्वाह में वीरता, धीरता, दयालुता एवं दानता का सुन्दर समन्वय कवि चंद ने प्रस्तुत किया है। नायक पृथ्वीराज चौहान में युद्ध, धर्म, दया, दान सभी का पूर्ण रूपेण विकास मिलता है किन्तु फिर भी कवि की काव्य-प्रतिभा को युद्ध वर्णन करने में ही विशेष साफल्य प्राप्त हुआ है। चन्दवरदाई स्वयं एक अच्छे योद्धा थे और पृथ्वीराज के अन्तरंग मित्र तथा सामन्त भी थे। अनेकानेक युद्धों में पृथ्वीराज के साथ उन्होंने अरिदल के समक्ष अपना वीरत्व पूर्ण दर्प प्रगट किया था, यही कारण है कि वे युद्धोत्साह एवं युद्ध-वर्णन विशेष कुशलता से कर सके। पृथ्वीराज की सेना, सेना की सजावट और उत्साह का एक चित्र देखिए—

हयग्गयं सजे भरं, निवांन बज्जि दूभरं।
न फेरि वीर बज्जई, मृदङ्ग झालरी गई।
सुनंग ईस रज्जई, तनीज राज सज्जई।
सुभेरि भुंकयं घनं, श्रवन्न फुहि झन्ननं।
× × ×
उषाह मध्य मध्य ते चलं, सगुन्न बंदि जे भल।
ससूर सूर पै कल, दिन सु अष्टमी चल।

उक्त दृश्य में नाहरराय ने अपनी कन्या का परिणय पृथ्वीराज से करने को इन्कार कर दिया अतः पृथ्वीराज को कुछ हीनता का अनुभव हुआ और उस पर आक्रमण करने के लिए सैन्य दल सजाया गया। इसमें नाहरराय आलम्बन है। पृथ्वीराज आश्रय। नाहरराय का यह कहना कि तुम्हारा कुल और वंश श्रेष्ठ नहीं है अतः मैं अपनी कन्या का परिणय तुमसे नहीं करूँगा, इत्यादि उद्दीपन हैं। पत्र सुनकर सामन्तों एवं शूरों का क्रोधित होना एवं अपने पराक्रम का वर्णन करना अनुभाव है। धृति और गर्व संचारी हैं। अतः सूर सामन्तों का हाथी-घोड़े सजाना, नगाड़े बजाना, नफीरी, मृदङ्ग, भेरी, और झाँझ आदि

के भयंकर शब्द करना, कवच कसना आदि आरम्भ हो गए। अष्टमी के दिन युद्ध के लिए धावा बोल दिया गया।

कवि चंदवरदाई ने सैन्य वैभव, राजसी ठाठ-बाट, दिग्गजों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट, शस्त्रों की खनखनाहट एवं युद्ध की भीषणता के सुन्दरतम भावपूर्ण चित्र 'पृथ्वीराज रासो' में दिये गये हैं। संश्लिष्ट चित्रण करने में तो कवि-चातुर्य देखते ही बनता है। यवन-सेना का एक संश्लिष्ट चित्र हम नीचे उद्धृत करते हैं—

खुरासान सुलतान खंधार मीरं। बलख स्यौबलं तेग अच्चूक तीरं।
रुहंगी फिरंगी हलंबी समानी। ठठी ठट्ठ बल्लोच ढालं निसानी॥
मंजारी चखी मुक्ख जंबूक लारी। हजारी हजारी इकं जोध भारी॥
तिनं पष्षरं पीठ हय जीन सालं फिरंगी कती पास सुकलात लालं॥
तहाँ बाघ बाघं मरूरी रिछोरी। घनं सार समूह अरु चौर झौरी॥
एराकी अरब्बी पटी तेज ताजी। तुरक्की महावान कम्मान बाजी॥

चन्द ने स्थिर चित्रों को तो चित्रित किया ही है, उनका मुद्रा-चित्रण भी बेजोड़ है। मुद्रा-चित्रण में सूक्ष्मातिसूक्ष्म हाव-भावों को पहचानने की अनुपम शक्ति भी उनमें है। पृथ्वीराज चौहान यवनों के आक्रमण का समाचार पाकर अपने सामन्तों को बुलाकर मंत्रणा करता है और युद्ध की पूरी तैयारी स्फूर्ति एवं वेग से करता है। उत्साह भाव की व्यंजना के साथ-साथ वीर रस का सुन्दरतम परिपाक निम्नोल्लिखित उदाहरण में मिलता है—

कहत सब्ब सामन्त मति, चढ़ि दल सजौ समंकि।
सुनिव मन्त्र कैमास कहि, करहु निसान टमंकि।
भय टामँक निसानं, पत्त निज ग्रेह सूर सामंतं।
वाजे बज्जि अनेकं, हय मंगे राज चहुआनं।

अथवा

उट्ठि राज प्रथिराज, बाग लग मनों वीर नट।
कढ़्ल तेग मन बेग, लगत मनों बीज झट्ट घट॥

रण-प्रांगण में युद्ध का यथार्थ चित्र जिसने न देखा हो वह युद्ध का काल्पनिक वर्णन प्रस्तुत कर युद्ध का यथार्थ चित्र नहीं प्रस्तुत कर सकता। किन्तु

महाकवि चन्दवरदाई ने प्रत्यक्षानुभव के आधार पर रण-कौशल का, रण के भिन्न-भिन्न दृश्यों का, एवं योद्धा और सैनिकों के बल, वैभव, पराक्रम, प्रतिभा एवं विभिन्न मुद्राओं का जैसा यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है वैसा कभी भी कवि ने नहीं। युद्ध विषयक वस्तु-गणनात्मक चित्रण तो मिल सकते हैं किन्तु यथार्थ युद्ध स्थल के चित्र मिलना दुष्कर है। इस सम्बन्ध में मोतीलाल मेनारिया का कथन दृष्टव्य है—

"रासो की विशेषता यही है कि उसमें वीर हृदय के उच्छ्वास संग्रहीत हैं, कल्पना-विलास नहीं। × × × राजस्थान ने अपने रक्त से जो साहित्य निर्माण किया है उसकी जोड़ का साहित्य और कहीं नहीं मिलता।" उक्त कथन की पुष्टि में हम पृथ्वीराज चौहान की भिन्न-भिन्न मुद्राओं, एवं रणस्थली के भिन्न-भिन्न दृश्यों से सम्प्रक्त एक चित्र प्रस्तुत करते हैं—

'पृथ्वीराज रासो' में चन्दवरदाई ने युद्ध का वर्णन प्रस्तुत करने में कुछ उठा नहीं रखा। हिन्दू सेना का युद्ध भूमि पर जाना अव्यवस्थित रूप में नहीं वरन् व्यूह के रूप में प्रदर्शित किया है। चन्दव्यूह, चित्रंग व्यूह, चक्र व्यूह, मयूर व्यूह, गिद्ध व्यूह आदि व्यूहों के चित्रण भी उत्साह वर्द्धक एवं वीर भाव के द्योतक हैं। सुलतान की सेना रण के लिए दृढ़ है। पृथ्वीराज चौहान भी अपनी सेना को रणभूमि पर 'मयूर व्यूह' में ले जाता है। 'मयूरव्यूह' का एक दृश्य हम प्रस्तुत करते हैं—

देषि फौज सुरतान दल, मति मंडै रन साज।
मोर व्यूह मति मंडिकै, तब सज्जौ प्रथिराज।
आरघ वेस नरिंद, छत्र वर मुष्ष कहि गढ्ढै।
सबै सैन प्रथिराज, मोर व्यूहं रचि ढढ्ढै।
चोंच राव चामंड, जैत द्रिग बंधि प्रमानं।
नब पिंडी पुंडीर, सेन उम्भो सुरतानं।
वर कंध बंध बंधी त्रिपति, पुंछि वीर कूरंभ रचि।
अरुनैव उनै उद्दित गुमर महब रंभ दोउ दीन मचि॥

रासो के युद्ध-स्थल में चन्दवरदाई ने वीरोचित वाक्यों का समावेश भी किया है। ये वीरोचित वाक्य अतिशयोक्ति पूर्ण भले ही हों किन्तु वीरों के

वी रत्व दर्प, कर्तव्य पालन, प्रचण्ड पराक्रम का जीता-जागता चित्र प्रस्तुत कर हृदय में उत्साह एवं वीर भावों की स्फूर्ति अवश्य ही प्रगट करते हैं। एक दो उदाहरण हम वीरोचित वाक्यों के उद्धृत करते हैं—

१—हाहुलिराब समीर कहि, सुनि पङ्गानी बत्त ।
एक भिरे असि लष्ष सौं, सो भर किमि भाजंत ।।
२—चवै चन्द पुडीर इम, कह बल कथ्थहु पुब्ब ।
पंग पंग पग नरिंद को, जग्य विध्वंस्यौ सब्ब ।।

'पृथ्वीराज रासो' में वीर के समस्त लक्षणों का उल्लेख हुआ है। युद्ध वीर, दान वीर, दया वीर, धर्म वीर आदि वीरों का दृढ़ संयम एवं निर्वाह रासो की विशेषता है।

युद्ध क्षेत्र में रौद्र भावों की व्यंजना भी कवि को इष्ट रही है। युद्ध के समस्त स्थल उत्साह एवं क्रोध से परिपूर्ण हैं। यहाँ हम केवल एक स्थल उदाहरण स्वरूप उद्धृत करते हैं। सुलतान गोरी ने पृथ्वीराज द्वारा अभय दान दिए हुए हुसेन खाँ को निकालने का प्रस्ताव उसके पास भेजा। इस प्रस्ताव को सुनकर पृथ्वीराज का क्रोध उमड़ पड़ा।

संभलिय वत्त प्रथिराज मंत, भ्रिकुटी करूर द्रिग रत्त गंत ।
आरत मुष्य स्त्रुत स्रोन बुंद, कल मलिय कोप रोमंत जिंद ।

और उनकी भृकुटी वक्र हो गई, मुँह और नेत्र लाल होगए और प्रस्वेद झलक आया।

वीभत्स रस की व्यंजना भी 'पृथ्वीराज रासो' में मिलती है। क्योंकि 'पृथ्वीराज रासो' वीर भावों का काव्य है। अतः वीर भाव को प्रतिफलित करने वाले उत्साह, क्रोध एवं जुगुप्सा भावों की त्रयी विशेषोल्लेखनीय है। एक ही साथ वीर रस, रौद्र रस, एवं वीभत्स रस का परिपाक चंदवरदाई की अद्भुत कुशलता का परिचायक है। देखिए—

सजिय सकल सन्नाह, दाह जसु दङ्गल पट्टिय ।
सुमरि साह इक देव, दुवन दल देषि दपट्टिय ।
छुट्टिय पट्टिय नयन, भइ दुन्दुभी गयन्ना ।

तेग वेग झमझमिय, मच्च आरीठ भयन्ना ।

फुलह सु धार धर कन्ह बर, कर पर छुट्टिय छह घरिय।
पग सट्ठि नट्ठि भीसंग दल, बल अभूत कन्हा करिय।

\+ \+ \+

झमकंत सु दन्तन अस्सि जरी, जनु विज्जुलि पब्बत मेघ परी।
उड़ि धुन्धिरियं निय छाइ जनं, जनु सज्जिय जुग्ग जुगद्दिपनं।
बजि डौंरुअ डक्क निसान घुरं, जनु बीर जगावत वीर डरं।
दुअ सेन बल असियो बरषी, नचि जुग्गनि षप्पर लै हरषी।
छिन में सिर भार दुझार झटै, बहुरयौ नन तँजर आइ परै।

इसमें उत्साह, क्रोध एवं जुगुप्सा की त्रयी इस प्रकार है—

१—उत्साह—सनाह आदि से सुसज्जित होना।

२—क्रोध—तेग झमझमाना।

३—जुगुप्सा—पंजर कटना तथा योगिनियों का खप्पर नृत्य।

पृथ्वीराज रासो में वीर भावना का पर्यवसान शृंगार को लेकर होता है। डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी का मत है कि—

"रासो में जैसी प्रधानता वीर और रौद्र रसों की पाई जाती है, बहुत कुछ वही हाल शृंगार का है। वीर स्वभावतः रति प्रेमी पाए गये हैं। किसी की रूपवती कन्या का समाचार पाकर अथवा कन्या द्वारा उसे अपने माता पिता की इच्छा के विपरीत आकर वरण करने का सन्देश पाकर उक्त कन्या का अपहरण कर उसके पक्ष वालों से भयंकर युद्ध और इस युद्ध में विजय प्राप्त कर कन्या का पाणिग्रहण तथा प्रथम-मिलन आदि के वर्णनों में हमें वियोग और संयोग के चित्र मिलते हैं। नायक और नायिका के परस्पर गुण श्रवण मात्र से अनुराग और तज्जनित वियोग कष्ट के वर्णन काम-पीड़ा के प्रतीक हैं। संयोग के अनन्तर वियोग का वर्णन आचार्यों द्वारा स्वीकार किया गया है, परन्तु संयोग से पूर्व ही वियोग का कष्ट वांछित प्रेमी या प्रेमिका को प्राप्त करने में बाधायें और कामोत्तेजना को लेकर ही पैदा होता है। वैसे ऊषा-अनिरुद्ध और नल-दमयन्ती के प्रेम की काव्य परम्परा का पालन भी रासो में कवि द्वारा संभव प्रतीत होता है।" —'चन्दवरदायी और उनका काव्य' से

अत: रासो से वीर भावना के साथ श्रृङ्गार भावना का समावेश भी है। कोमल कल्पनाओं एवं मनोहारी उक्तियों द्वारा वीर भावना के साथ-साथ शृंगार का पुट देकर कवि ने अपूर्व चमत्कार दिखाया है। रासो में प्रदर्शित शृंगार भावना वीर एवं प्रतिभाशाली हृदय की भावना है। इसमें नैसर्गिकता है और है अनूठापन, किन्तु कृत्रिमता का लेशमात्र भी नहीं। पात्रों के मानसिक संघर्ष, उनकी मनोदशाएँ, एवं शारीरिक सौन्दर्य प्रदर्शन में कोमलता एवं मनोहारिता का ध्यान कवि ने सर्वत्र रखा है। एक चित्र देखिए। पृथ्वीराज चौहान शिवालय में विद्यमान हैं, पद्मिनी पूर्व निश्चय के अनुसार शिवालय में पूजा के लिये जाती है। किन्तु पद्मिनी पृथ्वीराज को पहले देख नहीं पाती और पूजा करती है। गौरी पूजन के उपरान्त पद्मिनी मुड़ती है तो मुड़ते ही उसका साक्षात्कार पृथ्वीराज से हो जाता है। उस समय लज्जा, मोह तथा उत्कण्ठा आदि भावों का सामंजस्य पद्मिनी में देखते ही बनता है। कवि चन्द ने उसे निम्नोल्लिखित शब्दों में कितनी सादगी, स्वाभाविकता, सजीवता एवं कोमलता से प्रगट किया है—

फिर देखि प्रथिराज राज।
हँस मुद्ध मुद्ध कर पट्ट लाज।

'पृथ्वीराज रासो' में अनेक स्थल ऐसे भी मिलते हैं जहाँ वीर रस की व्यंजना के साथ रति का योग भी पाया जाता है। वीर रस एवं शृंगार रस नितांत विरोधी नहीं है, रासो में एक साथ इनकी मैत्री दिखाकर कवि-चातुर्य में चार चाँद लग जाते हैं। एक-दो उदाहरणों से यह बात सिद्ध हो जाती है—

(१) जू घूँघर घमक्कयं, कि दादुरं सु भद्दयं।
दुती उपंम मेलयं, सुहाग बाम केलयं।
(२) सुनि वत्त गोरी गरुग्र, तन मन कंप्यो ताम।
चल्यौं मंदगति मन बिकल, ज्यों ग्रहे नऊड़ा काम॥

उक्त उदाहरणों में से प्रथम में पृथ्वीराज की सेना का उत्साह प्रदर्शन है। कवि ने पशुओं के घुँघरुओं का बजना, भादों में मेढ़कों की टर्र-टर्र के अथवा सुहाग-क्रीड़ा में स्त्री की कटि में बँधी घंटियों के अथवा पैर के घुँघरुओं के समान बताया है और दूसरे उदाहरण में सुलतान गोरी जब पृथ्वीराज चौहान

के सैन्य दल की सजावट एवं तैयारी के विषय में सुनता है तब उसका विकल मन कंपित हो मंद गति से आगे बढ़ता है मानो नवोढ़ा काम-क्रीड़ा गृह में प्रविष्ट हो रही हो।

इस प्रकार वीर भावों के साथ-साथ कोमल एवं मनोहर शृङ्गारी भावों की उदभावना 'पृथ्वीराज रासो' की प्रमुख विशेषता रही है। अतः हम कह सकते हैं कि वीर और मधुर भावों का सुन्दर समन्वय जैसा चंद ने किया है वैसा कोई कवि नहीं कर सका।

'पृथ्वीराज रासो' में शृङ्गार-वर्णन—

कवि सदैव से सौन्दर्य प्रेमी रहा है। प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ ही वह नवीन सौन्दर्य की सृष्टि भी करता है। वह अन्तर्जगत एवं बहिर्जगत दोनों के सौन्दर्य का सम्प्रक्त मिश्रण कर काव्य में नवीनता का सृजन करता है। कभी वह प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन करता है तो कभी मानवीय सौंदर्य का प्रतिपादन भी करता है। मानवीय सौन्दर्य में पुरुष औय स्त्री के वाह्य एवं आंतरिक सौंदर्य की प्रतिष्ठिा करना कवि को अभीष्ट होता है। बाह्य सौंदर्य में रूप को विशेषता दी जाती है अत: सौंदर्य में प्रेम, करुणा, वीर एवं अन्य अनेक भावों की व्यंजना रहती है। बाह्य सौंदर्य से ही मनुष्य के वास्तविक गुणों का बोध हो जाता है अत: बाह्य सौन्दर्य चित्ताकर्षक होता है। चित्ताकर्षक वस्तु इन्द्रियों को तृप्ति एवं हृदय को सन्तोष देती है। रमणियों का यही बाह्य सौंदर्य-चित्रण साहित्य में नख-शिख वर्णन कहलाता है। अनेक शृंगारी कवियों ने नख-शिख वर्णन को अपने प्रबन्धों में प्रमुखता दी है।

कहाकवि चन्दवरदायी ने भी नखशिख और रूप का मनोहारी वर्णन किया है। इनका नखशिख अंतरङ्ग मनोभावों को व्यक्त करने का भी प्रयत्न करता है। सजीवता, नवीनता आदि के दृष्टिकोण से शृङ्गार का वर्णन कवि चन्द की कुशलता एवं सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचायक है। चंद एक दरबारी कवि थे। उनका जीवन पृथ्वीराज चौहान के जीवन से अभिन्न था अतः भोग और विलास से परिपूर्ण जीवन के तट पर महाकवि चंद विश्राम कर रहे थे। उन्होंने अनेक सुन्दरियों के भाग, रूप सज्जा आदि का प्रतिदिन अवलोकन किया था। राज्याश्रित कवि, भाट या चारण अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न रखने

के लिए वीर रस के साथ शृङ्गार की भावना का भी मिश्रण करते थे। आचार्य शुक्ल का मत है कि—"जैसे, युरोप में वीर गाथाओं का प्रसंग युद्ध और प्रेम रहा, वैसे ही यहाँ भी था। किसी राजा की कन्या के रूप का संवाद पाकर दलबल के साथ चढ़ाई करना और प्रतिपक्षियों को पराजित कर उस कन्या को हर कर लाना वीरों के गौरव और अभिमान का काम माना जाता था। इस प्रकार उन काव्यों में शृङ्गार का भी थोड़ा मिश्रण रहता था, पर गौण रूप में, प्रधान रस वीर ही रहता था। शृङ्गार केवल सहायक के रूप में रहता था। जहाँ राजनीतिक कारणों से भी युद्ध होता था, वहाँ भी उन कारणों का उल्लेख न कर कोई रूपवती स्त्री ही कारण कल्पित करके रचना की जाती थी। जैसे शहाबुद्दीन के यहाँ से एक रूपवती स्त्री का पृथ्वीराज के यहाँ आना ही लड़ाई की जड़ लिखी गई है।"

उक्त विवेचन से सिद्ध है कि प्रेम और शृङ्गार का वर्णन वीरगाथा काल में बहुत प्रचलित था। रूपवती स्त्रियों के कारण ही भारत के अन्तर्गत ऐसी उथल पुथल मची जिसका विस्तार संभव ही न हो सका। महाकवि चंदरवदाई भी इन स्त्रियों के सम्पर्क में खूब रहे थे, उनका खूब अनुभव किया था अतः उन्होंने स्त्रियों के भिन्न-भिन्न अंगों के लिए जो उपमान नियत किए उनका साम्य काल्पनिक नहीं वरन अनुभूति के आधार पर है। उनके ये उपमान निराले एवं नूतन सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं। चंद का नख-शिख अत्यन्त भव्य है, उसमें सरसता एवं सरलता सभी कुछ है।

'पृथ्वीराज रासो' में चंदवरदायी ने निम्नोल्लिखित प्रमुख नख-शिख वर्णन किए हैं—

(१) इच्छिनी का नख-शिख।
(२) पृथा का नख-शिख
(३) संयोगिता का नख-शिख।

(१) विवाह से पूर्व वयःसंधि (२) विवाह के पश्चात् इच्छिनी के शुक द्वारा (३) विवाह से पूर्व शृङ्गार (४) कवि चंद द्वारा गुरु राम की जिज्ञासा पर।

और इनके अतिरिक्त रूप-वर्णन तथा शृङ्गार का चित्रण भी रासो में अनूठा है—कुछ प्रमुख रूप एवं शृङ्गार वर्णन के दृश्य ये हैं—

(१) इच्छिनी का शृङ्गार,

(२) पुंडीरी दाहिमी रूप,

(३) प्रथा का शृङ्गार,

(४) इन्द्रावती का रूप,

(५) हंसावती की अवस्था, स्वाभाविक सौन्दर्य और शृङ्गार,

(६) अप्सराओं का सौन्दर्य और

(७) संयोगिता के अङ्गों का सौन्दर्य।

महाकवि चंद ने हंसावती के शृङ्गार-वर्णन में उसके अङ्ग-प्रत्यंगों की शोभा का बड़ा ही सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। एक साथ कई उपमानों का प्रयोग कवि के कौशल का सूचक है। कवि ने अपनी प्रखर प्रतिभा के बल से ऐसा सरस एवं काव्योचित श्लील नख-शिख रूप प्रदर्शित किया है जो अत्यन्त कलात्मक है—

किय सुरंग मज्जन, नराच छंद रंजनं।
सुगंध केस पायसौ, बिहथ्थ हथ्थ भासयौ।
\+ \+ \+
जु केस मुत्ति संजुरे, ससी सराह दो लरै।
मनीस बाल साच ज्यौं, कि कान्ह कालि नाचि ज्यों॥
\+ \+ \+
उपम्म नैन ऐन सी, मनौं कि मीन मैन सी।
कवी निसंक जानयौ, उपम्म चित्त मानयौ।
\+ \+ \+
रुलंत मुत्ति सोभई, उपम्म अत्ति लोभई
अभ्रत तार बिच्छुरी दु चंद अग्ग निक्करी
\+ \+ \+
रतन्न बिंब जानयं, सु चंद बी अमानयं।
त्रिवल्लि, ग्रीव सोभई, जु पोति पुंज लोभई॥
\+ \+ \+

उपम्म ईस कुच्चयो, अनंग रीति रच्चयों ।
रोमंग तुच्छ राज्यं, उसम्मता विराजयं ॥
कटी अलप्पता ग्रहीं, मनो कि रिद्धि रंकई ।
कि सीम द्वै नयं रही, तुला दंडिका कही ।
रुलंत छुद्र घंटिका, सदंत सद्द दंडिका ।
जु जेहरी जटाय की, घुरंत नद्द पाइ की ।
नितंब श्रद्ध तूंबियं, प्रवात रंग षुब्बियं ।
कि काम रथ्थ चक्र ए, चलंत एड़ि वक्र ए ।
उलट्टि रंभ जंघनं, करी सु नाम पिंडनं ।

उक्त नखशिख में कवि ने हंसावती के नेत्र, अधर, त्रिवली, ग्रीवा, स्तन, नितंब एवं जंघादि का सुन्दर वर्णन कई-कई उपमानों के साथ प्रदर्शित किया है ।

ऐसा ही इच्छिनी के स्नानावसर का चित्रण है—

बिन वस्तर रंग-सुरंग रसी, सुहलै जनु साष मदन्न कसी ।
लव लोनइ लोइ उवट्टन कौं, कि वस्यौ मनु काम सुपट्टन कौं ।
द्रिग फुल्लिय कांम विरांमन के, उघरै मकरंद उदै दिन के ।
बिन कंचुकि अङ्ग सुरंग वरी, सुकली जनु चंपक हेम भरी ।
\+ \+ \+
कबहूं गहि सुक्त सिषंड वरै, मनों नंषत केसन सिंधु सरैं ।
जु सितं सित नीर लिलाट धसैं, सु मनो मिदि सोमहि गंग लसैं ।
जल में भिजि मूंहु कला, दुसरी, सुलरै मनु बाल अतीन वरी ।
बुधि चित्त उपंग कितीक कहौं, निज पट्टि अभै व्रत बेद लहौं ।
\+ \+ \+
सुभरी लट चंचल नीर भरी, तिनकी उपमा कवि दिव्य धरी ।
तिन सौं लगि के जलबुन्द ढरै, सु छुटै मनु तारक राह करै ।
जु कछू उपमा उपजी दुसरी, मनों माव्य स्याम समुत्तिधरी ।
अति चंचल ह्वै बिधूरे मुष तै मनौ, राह ससी सिसुता बषते ।

उक्त वर्णन में केश धोना, उबटन लगाना, चंचल लटों का जल में डूबना-उतराना और उनसे जलबिंदु टपकना, मुख पर केशों का फैल जाना इत्यादि

का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया गया है। स्नान के पश्चात जल से निकल कर शरीर के अँगोछने आदि का तो बहुत ही सुन्दर चित्रण चंद ने किया है—

करि मज्जन अंगोछि तन, धूप बासि बहु अंग।
मनो देह जनु नेह फुलि, हेम मोज जनु गंग॥

संयोगिता के नख-शिख में कवि ने विशेष कुशलता से कार्य लिया है—

शीशफूल का वर्णन—

सिर मद्धि सीस फूलह सुभास; किय जग्गन अद्ध सुन गिरि प्रकाश

बेणी-वर्णन—

ओपमा भूम्र बेनी बिसाल, नागिनी असित सित सहित बाल॥

दसन-वर्णन—

सो मे कुरंग दन्तन सु पन्ति, कदलीन केत कै मुत्ति कंति।

कपोल-वर्णन—

त्रिवली सुरङ्ग विच पीत जोत, ओपम सुबर तिल मझ्झि होत।

अलकों का कुचपर्यंत फैलाव तथा कंचुकी-वर्णन—

नग माल बाल कुच पर विशाल, ओपम्म चन्द चिंती सु साल।
चिंतिय सु बरै बर सिम पूब्ब, मनमथ्थ ऊक मुष फुंकि उद्ध।
+ + +
सोंभै त्रिमाल कुच तर तरङ्ग, जनु तिथ्थराज मंडली अनङ्ग।
सोभै सुरङ्ग कुन्चकी बाम, जनु संभरेह पर कुटी काम।

कटि-वर्णन—

कटि घाट निट्ठ मुषझ्झ समाय, मनु ग्रहन धनुष मनमथ्थराय।

जंघा-वर्णन—

वर जंघ रम्भ विपरीत तंझ, कै पिंडि दिष्ट मनमंथ सझ्झि।

उक्त नख-शिख कितना भव्य एवं उत्कृष्ट है। काव्य कला की दृष्टि से यह अत्यन्त अनूठा है। चंद ने संयोगिता के अनन्य सौंदर्य-चित्रण में नाजुक खयाली, बारीक बीनी, इबारत आराई एवं अनूठी उपमाओं का सामंजस्य स्थापित किया है।

चन्द के नख-शिख वर्णन के कुछ अत्यन्त गम्भीर एवं मनोरंजक स्थलों का हम उल्लेख करते हैं—

कटि-वर्णन—हिन्दी के आदि कवि से प्रभावित होकर सम्भवतः रीति कालीन कवि कटि का वर्णन अत्यन्त सूक्ष्मता से कर सके हैं। बिहारी की 'सूक्ष्म कटि परब्रह्म-सी अलख लखी नहिं जाइ' मीरन कवि की 'बुधि अनुमान कै प्रमान परब्रह्म जैसे, ऐसे कटि छीन कवि मीरन कहत हैं।" दिवाकर की—"राधिका के लंक लाल केलि परियंक पर, नाठि नीठ ईश्वर-सी दीठि ठहराति है।" ये कवि चन्दवरदाई के कटि-वर्णन से प्रभावित हैं और तभी इतना अतिरंजित वर्णन प्रस्तुत कर सके हैं। चंद ने कटि का वर्णन सम्भवतः फारसी कवियों की शैली पर किया है। उनका कटि वर्णन इस प्रकार हैं—

(१) **पृथा की कटि**—

'वर लंकिन लंकय सिंध कितौ, वर मुट्ठिय माँहि समाइ तितौ'

(२) **संयोगिता की कटि**—

'कटिघटि निठ्ठ मुट्ठिय समाय, मनु ग्रहन धनुष मनमथ्थराय'

कटि की क्षीणता पर किसी मुसलमान कवि की 'सुना है कि उनके कमर ही नहीं है, खुदा जाने नाड़ा कहाँ बाधते हैं' की याद आ जाती है।

चन्द ने कंचुकी का उठाव अत्यन्त भव्य रूप में प्रदर्शित किया है।

उठी पट कुट्टिय कंचुकी बाम कि जीवन को त्रिपुर चलि-काम।'

कितना असाधारण चित्र है मानो कामदेव जीवनदान के लिए त्रिपुरारि के पास जा रहा हो। कितनी सुन्दर उत्प्रेक्षा है। 'उत्प्रेक्षा' से समन्वित अन्य श्रृङ्गार चित्र हम नीचे उद्धृत करते हैं—

शीशफूल वर्णन—शीशफूल ऐसे शोभित हैं मानो अर्द्ध रात्रि में वृहस्पति उदित हों—

जस्यौ ससिफूल जरयौ मनि बद्ध, उग्यौ गुरदेव किधौं निसि अद्ध।

कपोल वर्णन—चन्द्रमा सूर्य में झलकता हो ऐसे कपोल हैं—

उपमा सु कपोलन की चिलकैं, ज मनो ससि ह्वै रवि में झलकैं।

गले की त्रिवली—ऐसी भासित होती है मानो कृष्ण ने पांचजन्य को ग्रहण कर लिया हो—

'कल ग्रीव त्रिवल्लिम रेष बनं, ग्रह्यौ मनु कन्हर पंच जनं।'

अथवा

'कल ग्रीव रेख त्रिवल्लया, जनु पंचजन्य सुथल्लया'

कण्ठमाला—की शोभा अत्यन्त भव्यता से प्रदर्शित की गई है । ऐसा प्रतीत होता है मानो आठ ग्रह चन्द्रमा के आतंक में चंपे बैठे हों—

जगमगत कंठ सिर कंठ केस, मनु अठ्ठ ग्रह चंपि ससि सीस बैसि ।

उन पर हार का फैलाव—ऐसा उत्कृष्ट है कि कहते नहीं बनता । मानो हरद्वार में दो पर्वतों के बीच गंगाजी प्रवाहित हो रही हैं—

कुच मद्धि हार विराज हरद्वार गंग जु राज

नितंब—चंद ने नितंबों के लिए बहुत सी उत्प्रेक्षाएँ दी हैं। कहीं उन्हें कामदेव के रथ-चक्र कहता है । कहीं वे उज्ज्वल सूर्य बिम्ब हैं, कहीं उदय और अस्त होने वाले सूर्य, कहीं कामदेव के दर्पण, कहीं प्रवालवत चकाचौंध कर देने वाले इत्यादि उदाहरण स्वरूप—

(१) नित्तंब उत्तंग रज्जि, मनमथ्थ चक्क विसज्जि ।

(२) बरनी मनि बढि वड्ढित नितम्ब, सुभं जनु उज्जलइवै रवि बिंब ।

(३) नितंब तुंग सोभए, अनंग अंग लोभए ।

मनौ कि रथ्थरंभ के, सुरंभ चक्क संभ के ।

(४) नितंब अद्ध तुंबियं, प्रवाल रंग चुब्बियं ।

कि काम रथ्थ चक्कए, चलन्त एड़ि बक्कए ।

(५) नितंब गरुअ द्रप्पन कि कार, उदै अस्त भानु जनु पंति बार ।

वयः संधि का एक चित्र निम्नोल्लिखित है—

तिहि तन बन त्रय सौं कहै, दुहु अन्तर सिसु बेस ।
जुब्बन तन उद्दिम कियौ, बालप्पन घटनेस ।
बालप्पन तन मध्य वय, गादरि तन चष नूर ।
ज्यों वसंत तरु पल्लवन, इछ उट्ठन अंकूर ।
बय बालत्तन मध्य इम, प्रगट किसोर किसोर ।
राका पति गोधूर कह, आभा उद्दित जोर ।
ज्यों दिन रत्तिय संघ गुन, ज्यों उष्णह हिम संधि ।
ज्यों सिसु जुब्बन अंकुरिय, कछु जुब्बन गुन बंधि ॥
ज्यों करकादि मकर मैं, राति दिवस संक्रान्ति ।

यों जुब्बन सैसव समय, आनि सपत्तिय कान्ति।
यों सरिता अरु सिंध संधि, मिलत दुहुन हिलोर।
त्यों सैसव जल संधि में, जीवन प्रापत जोर।
यों क्रम क्रम बनिता सु वय, सैसव मध्य रहंत।
सीत काल रवि तेज ससि, घाम रु छांह सुहंत।
सैसव मध्य सु जोवनह, कहि सोभा कवि चंद।
पाव उठे तर छाँह छवि, षोज न नीच रहंत।
जीति जंग सैसव सुवय, इह दिष्शिय उनमान।
मानों बाल विदेस पिय, आगम सुनि फुलिकाम।

जीवन की इस अद्‌भुत स्थिति (वयः सन्धि) का इतना भव्य चित्र हिन्दी साहित्य में अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। भिन्न-भिन्न उत्प्रेक्षाओं के बल पर संयोगिता की वयः संधि का उद्‌घाटन कवि ने किया है।

'पृथ्वीराज रासो' में चंदवरदाई ने 'स्त्री भेद' वर्णन भी प्रस्तुत किया है। यह वर्णन अत्यन्त श्रृङ्गारिक है। मुख्यतः उसने चार (पद्‌मिनी, चित्रणी, शंखिनी, हस्तिनी) स्त्री भेदों का परिचय दिया है। हम यहाँ प्रत्येक के लक्षणों एवं सौन्दर्य का प्रदर्शन करते हैं—

(१) पद्‌मिनी के लक्षण एवम् शृंगार—

कुटिल केस पद्‌मिनी, चक्र हस्तन तन शोभा।
स्निग्ध दंत सोभा विसाल गंध पद्म आलोभा।
सुर समूह हँसी प्रमान, निद्रा तुछ जंपै।
अलप बाद मित काम, रत्तअभया भय कंपै।
धीरज छिमा लच्छिन सहज, असन वसन चतुरंग गति।
आदंक जोइ लग्गे सहज, कम वानं भूलंत रति।

(२) हस्तिनी के लक्षण एवम् शृंगार—

उद्धं केस हस्तिनी, वक्र अस्तन दसनं दुति।
मधुर गन्ध गरनाट, भुल्लि भ्रम काम वाम रति।
गूढ़ सबद मन जा, विषान रंगन छामोदरि।
[illegible]

छिन रुदय हंसय विहसय लहय, वसि वसि चित्तह चित्त पुत्तलिय ।
मीवीय मान जानै बहुत, कंत चित्त जाइ न कलिय ।

(३) चित्रिनी के लक्षण एवम् शृंगार—

दीर्घ केस चित्रिणी, चित्त हरनी चन्द्रानन ।
गंध स्त्रग चित्र निद्र, कोक शब्दन उच्चारन ।
सील नील लज्जा प्रमांन रत्ति भय भै घन भारै ।
अलस नयन रस बलित, कलित कल बोल उचारै ।
धी रज्ज छिपा छबि लोक करि अवलोकन गुन औसरे ।
विरतीर्ण मन्त्र मोहन पढ़ै, चित्त वित्तकंतहु हरै ।

(४) शंखिनी के लक्षण एवम् शृंगार—

अलप केस कुच मूल, थूल दंती उच्चारन ।
थूल उदर लकीस थूल क्रिस लगध वारन ।
घोर निद्र तन तास, अपल रसना रस छंडै ।
अलप सील गंभीर, सबद कलहंतर मंडै ।
आचार ध्रंन नहिं सुद्ध पन, विधि विचार बिभचार मन ।
आसंष संस संषिनि गुननि, सुष्ष नाह पावै न तन ।

अन्त में हमें यही कहना पड़ता है कि रासोकार ने नख-शिख एवं शृंगार का अत्यन्त भव्य चित्रण किया है । शृंगार रस ही वास्तव में रसराज है । इसी में संसार का समस्त सौंदर्य समाहित है और यही कविता का प्राण है ।

अलंकार योजना— 3/

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है—"भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी-कभी सहायक होने वाली युक्ति अलंकार है ।" तात्पर्य यह कि अलंकार भावोत्कर्ष एवं परिष्कृत अभिव्यक्ति द्वारा काव्य में प्रभाव उत्पन्न करते हैं । साहित्य-दर्पणकार का भी यही मत है । उनका कथन है—शोभाकारक अस्थिर धर्म ही अहंकार है । आचार्य वामन का कथन है—अलंकार सौंदर्य का समर्थन करते हैं । कुछ भी हो सभी विद्वान काव्य में अलङ्कारों का अस्तित्व मानते हैं । केशवदास ने तो यहाँ तक कहा है—

जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त ।
भूषण बिनु न राजई, कविता, बनिता, मित्त ।।

कवि स्वभावतः सौन्दर्य प्रिय प्राणी होता है। उसकी सौन्दर्य प्रियता के कारण काव्य में अलंकारों का महत्व है। वह अपनी अनुभूतियों को प्रभावशाली, रोचक और सुन्दर रूप में अभिव्यक्ति देना चाहता है। अलंकार न केवल अभिव्यक्ति को ही प्रांजल और प्रभावशाली बनाते हैं, वरन अनुभूतियों के उत्कर्ष में भी सहायक होते हैं। काव्य के अन्तर्बाह्य सौन्दर्य में ही अलंकारों की सार्थकता है। अलंकारों का यह लक्ष्य तभी पूर्ण हो सकता है जब उनका व्यवहार सहज स्वाभाविकता के साथ किया जाय। काव्य में अलंकारों की सहज सुन्दरता जहाँ श्लाघनीय है, वहाँ शब्द क्रीड़ा अथवा पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए उनका व्यवहार रस के उत्कर्ष में बाधक होता है और भाव को असुन्दर तथा अभिव्यक्ति को निर्जीव बनाता है। निष्कर्ष यह कि काव्य में अलंकार का महत्वपूर्ण स्थान है। किन्तु व्यर्थ की ठूँस-ठाँस से काव्य सौन्दर्य सर्वथा नष्ट हो जाता है। जिस काव्य में अलंकार प्रदर्शन मुख्य होगा वह सरस तो हो ही नहीं सकता।

महाकवि चन्दवरदाई ने 'पृथ्वीराज रासो' में उक्त दृष्टिकोण का कहाँ तक निर्वाह किया है, हमें यह देखना है। उन्होंने सर्वत्र ही अलंकार-प्रयोग में स्वाभाविकता बरती है। रीतिकालीन कवियों की भाँति उन्होंने अलंकारों की प्रदर्शिनी नहीं लगाई। वरन उनके समस्त अलङ्कार भावोत्कर्ष में सहायक बन कर आए हैं। अभिव्यक्ति कौशल से अलङ्कार मानो काव्य में प्रवेश पाने के लिए परमिट लेकर आए हैं। डा० विपिनबिहारी त्रिवेदी कहते हैं—"एक वाक्य में इतना कह देना उचित होगा कि कुछ अलंकारों को छोड़कर रासो में उनकी योजना स्वाभाविक रूप में है और व्यर्थ की ठूँस-ठाँस से रिक्त है।" तात्पर्य यह कि अलंकारों का प्रयास-रहित प्रयोग कवि की महान कुशलता का द्योतक है।

'पृथ्वीराज रासो' में दोनों प्रकार के अर्थात् शब्दालंकार और अर्थालंकार का प्रयोग श्लाघ्य है। पहले हम शब्दालंकारों पर विचार करेंगे।

शब्दालङ्कार और 'पृथ्वीराज रासो'—

शब्दालङ्कारों में चमत्कार शब्द पर आधृत होता है। ऐसे अलंकार शब्दाश्रित होते हैं। तात्पर्य यह है कि शब्दालंकार में अलंकार को स्पष्ट करने वाले शब्द बदले नहीं जा सकते। 'पृथ्वीराज रासो' में शब्दालंकारों का बहुत प्रयोग मिलता है। विशेष रूप से अनुप्रास एवं यमक का प्रयोग हुआ है वक्रोक्ति के भी एक आध स्थल 'पृथ्वीराज रासो' में हैं।

अनुप्रास—वर्णन-प्रवाह की तीव्रता के लिये अनुप्रास परमावश्यक है। और चूँकि 'रासो' वर्णनात्मक प्रवन्ध काव्य है अतः इसमें अनुप्रास आदि से अन्त तक भरे पड़े हैं। अनुप्रास के समस्त भेदों का निरूपण रासो में मिलता है। हम कतिपय उदाहरण उदधृत करते हैं—

वर्णानुप्रास—

(१) कट्टिय कुलाह कलंतरह, डकी ढाल ढढोरियै।

(२) जंग जुरन जालिम जुझार भुज सार भार भुअ।

(३) प्रवीन कोक केलयं, कुकी कुकेक केलयं।

(४) हहक्कार, हंकार, हक्कार, हक्कं, हबक्कं धरे धीर हक्कं।

(५) आसीनी, सज्जानी, उल्लानी, निरधानी, घ्यानी उस्थानी।

(६) पद्मावती विलखि बर बार बेली।

लाटानुप्रास अथवा एक पद की आवृत्ति वाले **शब्दानुप्रास**—

(१) घर घर मंगल बोलियै, घर घर दीजै दान।

(२) मनमथ मनमथ्थ घान, मनमथ तड़ाग कै प्रेम बाम।

(३) नव गति नव मति नव सपति, नवसति नव रति मंद।

वृत्यनुप्रास—'रासो' में वृत्यनुप्रास की तीनों वृत्तियों (मधुरा, परुषा, तथा कोमला) का प्रयोग मिलता है। उदाहरण के लिये 'पृथ्वीराज रासो' के समय ६१ में आये छन्द १५४५, २२७३, २२७४ तथा २२७५ विशेषोल्लेखनीय हैं।

यमक—जहाँ निरर्थक वर्णों अथवा भिन्न अर्थ वाले शब्दों की पुनरावृत्ति हो, वहाँ यमकालङ्कार होता है। रासो में अनेक स्थलों पर यमक का प्रयोग मिलता है।

(१) दै पानी दिल्ली धरा, मनसा पानी रष्षि ।
सो चित्यौ संभरि धनी, जन्म सुकित्तय अष्षि ।

(२) अंग सुलच्छिन हेम तन, नग धरि सुन्दरि सीस ।
गोरी ग्रहि गोरी गयो, बिना जुम बुझि रीस ।

(३) हरि हरि हरि वन हरित महि, हरत पिष्षयैं अंषि ।
सारंग रुकि सारंग हो, सारंग करनि करिष्ष

वक्रोक्ति—जब कहने वाले के अभिप्रेत अर्थ से भिन्न अर्थ सुनने वाले द्वारा लगाया जाता है तब वक्रोक्ति (वक्र+उक्ति) अलंकार होता है। यह वार्तालाप में बहुत सहायक होता है और अत्यन्त प्रभावशाली है। 'रासो' के समय ६१ में जयचंद और कवि चंदवरदाई के वार्तालाप का प्रसङ्ग वक्रोक्ति है—

मुह दरिद्र अर तुच्छ तन, जंगल राव सुहद्द ।
वन उजार पसु तन चरन, क्यों दूबरौ बरद्द ।

जयचन्द का कथन

चढ़ि तुरंग चहुआन, आनि फेरीत परद्धर ।
तास जुद्ध मंडयौ, जास जानयौ सब रबर ।
केइक तकि गहि पात, केइ गहि डार मूर तरु ।
केइक दन्त तुच्छ त्रिन्न, गए दस दिसनि भाजि डर ।
भुम्र लौकत दिन अचिरज भयौ मान सवर वर मरद्दिया ।
प्रथिराज पलन षद्धो जु षर, यौं दुब्बरो वरद्दिया ।

चंदवरदाई का कथन

अर्थालंकार—शब्दालङ्कार की तुलना में अर्थालङ्कारों का विशेष महत्व है। शब्दालङ्कारों में शब्द-चमत्कार मात्र होता है। अर्थालङ्कारों में अर्थ का सौन्दर्य तथा चमत्कार होता है। अर्थ का चमत्कार ही भाव-रसोत्कर्षक होता है। अर्थालङ्कारों में अर्थ के सौन्दर्य और रमणीयता का विधान किया जाता है। रासो में अर्थालङ्कारों का समुचित उपयोग मिलता है। साम्यमूलक, विरोध-मूलक, शृङ्खलामूलक, न्यायमूलक तथा गूढ़ार्थ प्रतीति मूलक अर्थालङ्कारों के यत्र-तत्र प्रयोग मिलते हैं। सर्वाधिक प्रयोग उत्प्रेक्षा का है। उत्प्रेक्षा चंद का सर्वाधिक प्रिय अलङ्कार है।

उत्प्रेक्षा—जहाँ उपमेय में उपमान की सम्भावना की जाती है वहाँ उत्प्रेक्षा

अलंकार होता है। रासो के कतिपय उत्प्रेक्षा अलंकार प्रयुक्त स्थल निम्नोल्लिखित हैं—

(१) जस्यौ ससि फूल जरयौ मनि बद्ध,
उग्यौ गुरुदेव किधौं निसि अद्ध।

(२) मनि धंध पुहपति दीसए,
जनु कन्ह कालिय सीसए।

(३) कल ग्रीव रेष त्रिवल्लया,
जनु पंच जन्य सुथल्लया।

(४) कुच मद्धि हार विराज,
हर द्वार गंग जु राज।

(५) नितम्ब गरुअ द्रप्पन कि काम,
उदै अस्त भानु जनु पति वाम।

उत्प्रेक्षा के कतिपमय भेदों का उल्लेख भी 'पृथ्वीराज रासो' में मिलता है।

वस्तूत्प्रेक्षा—(जहाँ एक वस्तु की दूसरी वस्तु के रूप में सम्भावना हो)

(१) जीति जंग सैसब सु बय, इह दिष्षिय उनमान।
मानो बाल बिदेस पिय, आगम सुनि फुलि काम।

(२) पान देइ दिढ हृथ्थ गहि, बर करि हृथ्थ दिवंक।
मनु रोहिनि सो मिलिग ज्यों बीय उदित्त मयंक।

प्रतीयमाना अथवा गम्योत्प्रेक्षा—(जहाँ वाचक शब्द के अभाव में उत्प्रेक्षा हो)

(१) बाखा बेनी छोरि करि, छुट्टे चिरह सुहाइ।
कनक थंभ तें ऊतरी, उरग सुता दरसाइ।

(२) मरबल अम्बर बदन सौं, लोयन सो करषाइ।
ईह अपूरव चरि अरक, पंती अट्ट कलाइ।

हेतूत्प्रेक्षा—(जो कारण नहीं उसमें कारण की सम्भावना की जाय)

सम नहीं इसिमतो जोइ, छिन गरुअ छिन लघु होइ।
देषंत त्रोय सुरंग, तब भयौ काम अनङ्ग।

रूपक—(जहाँ उपमेय तथा उपमान में अभेद मानते हुए उपमेय पर उपमान का आरोप किया जाय) 'पृथ्वीराज रासो' में रूपकों की बहुतायत है। रूपक के समस्त प्रमुख भेद इसमें प्राप्त हो जाते हैं।

सांग रूपक—(नायिका में नदी के अवयवों का आरोप)

बाल नाल सरिता उतंग, अनङ्ग अंग सुज।
रूप सुतट मोहन तड़ाग, भ्रम गए कटाच्छ दुज।
प्रेम पूर विस्तार, जोग मनसा विध्वंसन।
दुति ग्रह नेह अथाह, चित कर करषन पिय तुट्टन।
मन बिसुद्ध बोहिथ्थ बर, नहिं थिर चित जोगिंद तिहि।
उतरन पार पावै नहीं, मीन तलफ लगि मत विहि।

निरङ्ग अथवा निरवयव रूपक—(जहाँ उपमेय पर केवल उपमान का ही आरोप किया जाय उसके अङ्गों का नहीं।)

उदै अनंदिय वीर, बाजि रन जग बीर वर।
क्रोध लोभ मद उतरि, मद्द पिन्नो मुगत्ति सर।

परम्परित रूपक—(जहाँ एक आरोप दूसरे का कारण हो)

भर अरत्त साई, विरत्त गोरी सुलतानं।
संझ रूप संजोगि, गिल्यौ चहुआन सु भान।

उपमा—(जहाँ दो वस्तुओं के धर्म, रूप, गुण, स्वभाव, रङ्ग तथा आकार आदि की तुलना की जाय) साम्य मूलक अर्थालंकारों में सर्वाधिक ख्याति प्राप्त अलंकार यही है। रासो में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं—

(१) माया मोह विरत्त मन, तन तिनुका सम डारि।
जटे पिथ्थ दरबार महि करि तरवार दुधार॥

(२) सेत वस्त्र सोहे सरीर नख स्वाति बुन्द जस।
भमर भवँहि भुल्लहिं सुभाव मकरंद वास रस॥

(३) आवद्ध साहि सन्नाह कसि, षग्ग मार मच्चाइहौ।
गहि साहि आन चहुआन पै, बन्दर जेम नचाइहौ॥

उपर्युक्त अर्थालंकारों का प्रयोग रासो में सर्वाधिक मिलता है। वैसे और भी अलंकारों का प्रयोग है किन्तु इतना नहीं। यहाँ हम कतिपय अलंकारों का उल्लेख करते हैं—

अतिशयोक्ति—गंग डोलि ससि डोलि डोलि ब्रह्मण्ड सक्र डुलि।
अष्ट थान दिगपाल, चाल चंचाल विचल थल।

दृष्टान्त— मेह बिना नदि तेह नेह बिन गेह अस्स रस ।
पिय बिन तिय न उमंग अंग शृंगार रूप रस ।

उदाहरण— जैसे नर पंगुरौ, बिन सु अंगुरी न हल्लय ।
आधारित अंगरी, हरू वह बत्त न चल्लहि ।

संदेह— दै दु ज्जनि दुज उत्तरह, को कहै प्रीति अनन्त ।
कोइ कहै प्रतिव्यंव है, को कहै प्रीति अनन्त ।

प्रतीप— बैनि नाग लुट्टयौ, वदन ससि राका लुटयौं ।
नैन पदम पंख्युरिय, कुभ कुच नारिंग छुटयौ ।

भ्रान्तिमान— ससि उप्पर इक कीर, कीर उप्परि अग ट्ठिठौ ।
अग उप्पर कोदंड, संघ कंद्रप्प वयट्ठौ ।

स्मरण— वही रत्ति पावस्स, वही मधवान धनुष्षं ।
वही चपल चमकंत वही वगपंत निरष्षं ।
वही घटा घनघोर, वही पप्पीह मोर सुर ।
वही जमी असमान, वही रविससि निसि वासुर ।
वेई अवास जुग्गिनि पुरह, वेई सहचरि मंडलिय ।
संजोगि पयंपति कंत बिन, मुहि न कछू लागत रलिय ।

रूपकातिशयोक्ति—

(१) कुंजर उप्पर सिंघ सिंध उप्पर दो पव्वय ।
पव्वय उप्पर भृंग भृंग उप्पर ससि सुम्भय ।
ससि उप्पर इक कीर कीर उप्पर अग दिट्ठौ ।
अग उप्पर कोवंड संघ कंद्रप्प वयट्ठौ ।।

(२) बिगसि कमल स्त्रिग भ्रमर वेन षंजन मृग लुट्टिय ।
हीर कीर अरु विम्ब मोति नष सिष अहिघुट्टिय ।

लोकोक्ति—कहावतों एवं मुहावरों को सामान्यतः लोकोक्ति कहा जाता है। इनमें वास्तविक सार एवं तत्व होता है। उनके प्रयोग से भावोत्कर्ष में बल एवं दृढ़ता आती है। चंदवरदाई ने भी रासो में अनेकानेक लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। हम कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत करते हैं—

(१) मानों उरग छछों दरी, डारै बनै न षाय ।

(२) अहि ग्रहिय छंछुदरि जौ तजै, नैन जठर भष छज्जियं ।
(३) काग जाइ मुत्तिय चरैं हरति हंस का होइ ।
(४) जब फुट्टे आकाश कौन थिगरी सू रष्षै ।
(५) जल जात घात रष्षे जलै, दूध विनट्टौ दूध हिय ।
(६) दाहिम्म मिल्यौ इमि दासि सम,
 षीर मद्धि जिम नीर ।
(७) हुबि हमीर दल हाम करि, मन करि अग्गो पच्छ ।
 दूधै दद्धौं ज्यौं पियै, फूँकि फूँकि के छच्छ ।
(८) भिद्दे न जाहि माया प्रबल, मनों नीर मज्झै कमल ।
(९) जल मह ज्यों गति जोंक, भेद कोई न न जानं ।

अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रासोकर ने अलङ्कारों का सुन्दर प्रयोग किया है । हमें रासोकार की अलङ्कार-योजना-प्रतिभा पर आश्चर्य होता है उसका अलङ्कार योजना-कौशल सराहनीय है ।

चन्दवरदाई की बहुज्ञता—

चंदवरदाई हिन्दी साहित्य के प्रथम महाकवि हैं और 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी साहित्य का प्रथम महाकाव्य । कवि चंद का जन्म तथा उनका साहित्य निर्माण हिन्दी साहित्य के संघर्षमय अभ्युदय काल में हुआ था । तत्कालीन परिस्थितियाँ अत्यन्त परिवर्तनशील थीं । उन परिस्थितियों का कितना प्रभाव चंदवरदायी पर पड़ा और उन परिस्थितियों के वशीभूत हो उन्होंने अपनी जागरूकता का कितना परिचय दिया और कितने व्यापक ज्ञान और अनुभूति एवं बहिरंग अन्तरंग प्रकृति का पर्यवेक्षण किया यह सहज ही उनके 'पृथ्वीराज रासो' से बोधगम्य है । विविध विषयों की अनुभूति उन्हें थी और उसे उन्होंने अपने परिचित ज्ञान के साथ प्रेय-श्रेय रूप में व्यक्त किया ।

चंद कलाविद थे । उन्होंने वीर काव्य की रचना की और श्रेयमय प्रेय-धारा प्रवाहित की । चंदवरदाई ने भारतवर्ष की तत्कालीन परिस्थितियों एवं मान्यताओं का बहुविधि विवरण अपने ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' में दिया । कर्नल टॉड तो 'पृथ्वीराज रासो' से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उसे युगीन विश्व इतिहास के पद से विभूषित किया (Universal history of the period.)

हिन्दी साहित्य के प्रथम महाकवि चंदवरदायी का अत्यन्त बहुज्ञ होना उनकी शिक्षा, ज्ञान एवं विद्वता का निदर्शन है। चंद का शास्त्र एवं लोकज्ञान बहुत अधिक विस्तृत था। 'काव्य प्रकाश' के लेखक आचार्य मम्मट ने लोक और शास्त्र निरीक्षण को कवि एवं साहित्यकार के लिए परम आवश्यक माना है। निष्णात् एवं कुशल कवि के लिए 'निपुणता लोक शास्त्राद्यवेक्षणात्' अर्थात्-लोक एवं शास्त्र ज्ञान व्यापक होना चाहिए। लोक-शास्त्र ज्ञान से काव्य में भाव प्रवणता, प्रभावशालिता, और उत्कृष्टता आती है। शास्त्र ज्ञान द्वारा कवि लौकिक अनुभवों को प्रकाशित करता है और लोक ज्ञान के द्वारा स्थावर जंगमात्मक जगत एवं सांसारिक समस्त चलाचल विषयों का उद्घाटन करता है।

क्षेमेन्द्र ने बहु विषयज्ञता पर विस्तार से प्रकाश डाला है और कवि को बहुत से विषयों की सामान्य जानकारी रखने वाला भी कहा है। जहाँ तक चंदवरदायी का सम्बन्ध है यह तथ्य 'पृथ्वीराज रासो' से स्पष्टतः प्रकट हो जाता है। रासो में भाव और कला की उत्कृष्टता एवं विविध विषयों के अनेक प्रयोग मिलते हैं।

चंदवरदायी पृथ्वीराज चौहान का प्रिय पात्र था। वह सदैव पृथ्वीराज चौहान के समीप ही बैठता था और पृथ्वीराज चौहान के गुरु राम पुरोहित के सामने उसका आसन रहता था—

गुरु राम पिट्ठ विराजयं। जनु वेद ब्रह्मम सु साजयं।
मुष अग्ग चंद सु भूषनं। रज रीति हद्द सु रष्षनं।

इस प्रकार कवि चंद का जीवन पृथ्वीराज से अत्यन्त घुला मिला था। राजकीय वैभव में पले हुए कवि ने अपना समय साहित्यिक कार्यों एवं स्वानुशीलन में लगाया अतएव उसने अनेक विषयों का ज्ञानोपार्जन किया था। व्याकरण, छन्दशास्त्र काव्यशास्त्र, एवं साहित्य का अत्युतम निदर्शन तो 'पृथ्वीराज रासो' है ही। दर्शन, वेदान्त तंत्र-मंत्र, सिद्धियाँ, इतिहास, पुराण, रस, अलङ्कार, षट भाषा आदि को भी इनका अध्ययन गहन था। इनके विद्यागुरु का नाम गुरुप्रसाद था (काशी ना० प्र० सभा प्रकाशित रासो के अनुसार)। ऐसा अनुमान है कि चंदवरदायी ने इन्हीं से १४ विद्याओं का ज्ञान प्राप्त किया था। 'पृथ्वीराज रासो' में कई स्थल ऐसे हैं जहाँ चंद स्वयं अपने को १४ विद्याओं

का ज्ञाता घोषित करता है। और त्रिलोक में घटने वाली घटनाओं का ज्ञाता भी कहता है—

'विद्याह चतुरदस चितमोहि, बूझै सु कहौ त्रिभुवन होहि'।

(१) **चन्द का भाषा ज्ञान**—चंदवरदायी ६ भाषा का पंडित था, इसका उल्लेख 'रासो' के समय ६१ में मिलता है जब पंग दरबार के दसौंधी ने महाराज जयचंद को, द्वार पर उपस्थित चंद का परिचय निम्नलिखित शब्दों में दिया—

भाषा षट नव रस पढ़त, वर पुच्छै कविराज।
संप्रति पंग नरिंद कै, बर दरबार विराज॥
भाषा परिछा भाष छह, दस रस दुम्भर भाग।
वित्त कवित्त जु छन्द लौं, षग सम पिंगल नाग॥

गजनी नरेश के द्वारपाल को कवि चंद ने अपने षट् भाषा ज्ञान का परिचय इस प्रकार दिया था—

षट भाष रस्स नव नट्ट नाद।
जानो विवेक विच्चार वाद।

कवि चंद ने पृथ्वीराज को भी षट् भाषाओं का ज्ञाता कहा है—

संस्कृत प्राकृतं चैव, अपभ्रंशा पिशाचिका।
मागधी शूरसेनी च, षट भाषाश्चैव जायते।

चंद पृथ्वीराज का अन्तरंग मित्र एवं कवि था अतःवह अवश्य ही षट् भाषा ज्ञाता होगा। डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी कहते हैं—"अस्तु देखते हैं कि संस्कृत, प्राकृत, महाराष्ट्री, अपभ्रंश, पैशाची, मागधी और शौरसेनी, इन भाषाओं का उस समय साहित्य तथा बोलचाल में काफी प्रचार था और बहुत सम्भव है कि पृ० रा० वर्णित कवि चंद की षट् भाषा की जानकारी से इन्हीं भाषाओं की ओर संकेत हो।"

(२) **धर्म, राजनीति, इतिहास, नवरस, व्याकरण आदि के ज्ञान का प्रतिपादन** तब होता है जब वह स्वयं ही विशाल धर्म की उक्तियाँ, राजनीति, नवरस, पुराण एवं कुरान का उल्लेख करता है।

उक्ति धर्म विशालस्य, राजनीति नवं रसं।
षट भाषा पुराणं च, कुराणं कथितं मया।

अथवा

रासौं बर बुद्धि सिद्धि, सुद्ध सो सब्ब प्रमानिय ।
राजनीति पाइयै, ज्ञान पाइयै सु जानिय ।।
उकति जुगति पाइयै, अरथ घटि बढ़ि उनमानिय ।
या समान गुन आप, देव नर नाग बखानिय ।।

(३) पिंगल शास्त्र-ज्ञान—

'पृथ्वीराज रासो' में चन्द ने अनेकानेक छन्दों का प्रयोग किया है। इतने छन्दों का प्रयोग तो अन्यत्र देखने तक को नहीं मिलता। वर्ण-गणना प्रधान, मात्रा गणना प्रधान, संयुक्त गणना प्रधान आदि अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग रासो में मिलता है। रासोकार ने कुछ छन्द तो अपने व्यापक छन्द-ज्ञान के आधार पर स्वयं निर्माण किए हैं। ये ऐसे छन्द हैं जिनका प्रचलन न तो था ही और न उनका उल्लेख ही किसी छन्द-शास्त्र में मिलता है। उसने ७२ प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी उसे 'छप्पयों का राजा' कहते हैं। डा० विपिनबिहारी त्रिवेदी के अनुसार चंद "ने अपने छन्दों का चुनाव बड़ी दूरदर्शिता से किया है। कथा के मोड़ों को भली प्रकार पहिचान कर वर्ण और मात्रा की अद्भुत योजना करने वाला रासो का रचयिता वास्तव में छन्दों का सम्राट् था।" श्री नामवरसिंह भी चंदवरदायी के छन्द ज्ञान से प्रभावित हैं, अतः वे कहते हैं—"वस्तुतः हिन्दी में चंद को छन्दों का राजा कहा जा सकता।××× छन्द परिवर्तन के प्रवाह में गहन आत्म विस्मृति का ऐसा सुख अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। रासो एक ही साथ संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश की छंदें परम्परा के पुनुरुज्जीवन तथा हिन्दी के नूतन छंद संगीत के सूत्रपात की संधिबेला है।"

छंदों की भाँति ही चंदवरदायी ने अलङ्कारों के ज्ञान का परिचय दिया है। शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार, उभयालङ्कार एवं चित्रालङ्कार के प्रयोग चंदवरदायी की अलङ्कार-योजना-प्रतिभा का दिग्दर्शन कराते हैं।

(४) साहित्य एवं काव्य-शास्त्र का ज्ञान—

"पृथ्वीराज रासो' आदि से अन्त तक चंद के साहित्य एवं काव्य शास्त्र ज्ञान का अनुशीलन है। इसमें वस्तुवर्णन अत्यन्त भव्य हुआ है जो चन्दवरदायी के

व्यापक ज्ञान का परिचायक है। उनका वर्णन, व्यूह वर्णन, पनघट वर्णन विवाह वर्णन, उत्सव वर्णन, षटऋतु-बारहमासा वर्णन, शृङ्गार वर्णन, नख-शिख वर्णन, वयः संधि वर्णन, रूप वर्णन, स्त्रीभेद वर्णन, युद्धोत्साह और युद्ध वर्णन, कबंध युद्ध वर्णन इत्यादि उदाहरण स्वरूप लिये जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त उत्साह, क्रोध, जुगुप्सा, भय, हास्य, आश्चर्य, निर्वेद, रति शोकादि भावों की सुन्दरतम व्यंजना चन्दवरदायी के रस विषयक ज्ञान का परिचय हैं।

(५) सिद्धियाँ, तन्त्र-मन्त्र तथा ज्योतिष—

चन्दवरदायी को देवी का दर्शन हुआ था और उसे देवी का वरदान प्राप्त था। हरप्रसाद शास्त्री कहते हैं—"चन्द की वरदायी उपाधि का अर्थ है कि उसने एक देवी से कवि होने का वरदान प्राप्त किया था। ये ज्वाला देवी थीं और ज्वाला नामक स्थान में प्रतिष्ठित थीं…" चंदवरदायी को देवी की सिद्धि थी इसका उल्लेख 'रासो' में चन्द की स्त्री, मंत्री कँमास, पृथ्वीराज, दुर्गा केदार, जयचंद की महारानी, जयचंद के मंत्री, हम्मीर सुलतान गोरी एवं देवी के वाक्यों द्वारा हो जाता है। देवी के वाक्य हम यहाँ उद्‌धृत करते हैं—

विनैं है मतिराज, उकति जौ बहु धरयो।
मोहि चन्द वरदाय, सु अंतर मति करयो॥

'पृथ्वीराज रासो' में कतिपय स्थल ऐसे भी आते हैं जिनमें देवी ने चन्द की सहायता की है। उसे दुर्गा की सिद्धि तथा ज्वालादेवी अथवा जालन्धरी देवी का इष्ट प्राप्त था। इसके उदाहरण कनक कथा समय, दुर्गाभट्ट केदार समय, एवं कनवज्ज समय में मिलते हैं।

चन्दवरदायी का तंत्र मंत्र विषयक ज्ञान अत्यन्त विलक्षण था। आषटक वीर वरदान स० ६ में इस बात का उल्लेख है कि उसने बावन वीरों को वश में करने की दीक्षा एक यती से प्राप्त की थी—

प्रसन्न चन्द सम जतिय दिन्न इक मन्त्र इष्ट जिय।
इह आराधत भट्ट प्रगट पंचास वीर लिय।

करि साधन इहि साध व्याधि भासत फल धारिय।
गुरु उपदेसह पाइ, सकल आधीन अकारिय।
धरि कान मन्त्र लीनो कविय, परसि पाइ अग्गे चलिय।
करबे सु परिष्षा मन्त्र की, रुचि आसन अग्गे बलिय।

चन्दवरदायी का सर्प बांधना, माया के कौतुक करना, दानव एवं दैत्यों का बध करना, भविष्यवाणी करना, स्वप्न फल बतलाना, अदृश्य वर्णन करना, गणों को आधीन करना आदि तो उसके लिए बहुत तुच्छ कार्य थे। भैरों देवी को वशीकरण करने का मन्त्र भी उसे इष्ट था और गाडुरी मन्त्र का ज्ञान तथा सिद्धि भी उसे प्राप्त थी।

(६) **शास्त्रार्थ ज्ञान**—महा कवि चन्द का ज्ञान अत्यन्त व्यापक था, यह हम कई बार कह चुके हैं। एक बार शाह गोरी के हिन्दू कवि भट्ट दुर्गाकेदार से चन्द का शास्त्रार्थ हुआ। दोनों को अपने-अपने ज्ञान का गर्व था। साहित्यिक दाव-पेचों एवं तन्त्र-मन्त्रों के बल से दोनों लड़ते रहे। अन्त में दुर्गा केदार ने चन्द की सराहना की और उसकी उसके व्यापक शास्त्र ज्ञान की दाद दी और उसे पुरस्कृत विदा किया।

(७) **युद्ध कौशल**—चन्द में कवित्व शक्ति के साथ-साथ वीरत्व एवं आत्माभिमान भी था। एक हाथ में वह लेखनी ग्रहण करता था तो दूसरे में तलवार थामकर रण प्रांगण में निर्भीकता का परिचय देता था। युद्ध करने में भी वह कुशल था। पृथ्वीराज के आदेश बिना ही वह युद्ध क्षेत्र में उतर आता था। एक उदाहरण से उसका युद्धोत्साह एवं युद्ध कौशल व्यक्त हो जाता है—

कृपान हथ्थ चंदयं, सुरग्गदेव वद्दयं।
झरंत मीर अग्गमं निकट्ट तट्ट गंगयं॥
घटं सुधाव गुम्मयं, परे सु मीर झुम्मयं।
लगे तुरंग अगयं, संपूर लोह जंगयं॥

फिर्‌यो सुचन्द तब्बायं, करन्न राज कब्बयं ।
लगे न घाव गातयं, सहाय द्रुग्ग मातयं ।।
कुंजर पंजर छिद्र करि, फिर वरदायी चन्द ।
तिन अन्दर जिद्दिन भ्रमत, ज्यो कंदरा मुनिदं ।।

अन्त में हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि चन्दवरदायी का ज्ञान अत्यन्त विस्तृत था और 'पृथ्वीराज रासो' चन्दवरदायी के व्यापक ज्ञान का सजीव निदर्शन है ।

पद्मावती समय

संक्षिप्त कथा एवं टीका सहित मूल पाठ

'पद्मावती' समय का कथा सार

'पद्मावती समय' 'पृथ्वीराज रासो' का बीसवाँ अध्याय है। रासो में अध्यायों के लिए 'समय' शब्द का प्रयोग किया गया है। रासो की कुछ प्रतियों में अध्याय के लिए 'सम्यौ', समय', 'प्रस्ताव', 'खंड' आदि शब्दों का भी प्रयोग किया है। परन्तु, 'रासो' के 'वृहद रूपान्तर' की लगभग सभी तेतीस प्रतियों में 'सम्यौ' अथवा 'समय' शब्द का ही प्रयोग हुआ है। इसलिए हमने 'समय' शब्द को ही स्वीकार किया है। 'पद्मावती समय' रासो के ६९ समयों अथवा अध्यायों में से एक अध्याय है। नीचे हम इसी 'समय' का कथा-सार प्रस्तुत करने का प्रयत्न करेंगे जो इस प्रकार है—

पूर्व दिशा में समुद्रशिखर नामक एक विशाल दुर्ग था। यादववंशी राजा विजयपाल वहाँ का शासक था। वह अत्यन्त शक्तिशाली राजा था। उसके पास अथाह सम्पत्ति, विशाल सेना तथा विस्तृत प्रदेश था। समुद्र पर्यन्त उसका यशोगान हुआ करता था। वह अद्वितीय वीर था और सन्नद्ध रह कर समस्त पृथ्वी के राज्य-वैभव की रक्षा किया करता था। उसके दस पुत्र और पुत्रियाँ थीं। पद्मसेन नामक उसकी सुन्दरी रानी थी। उसके गर्भ से पद्मावती नामक एक अनिन्द्य सुन्दरी कन्या ने जन्म लिया।

पद्मावती चन्द्र-कला के समान सुन्दर थी। वह रति के समान आकर्षक तथा अनुराग उत्पन्न करने वाली थी। पशु-पक्षी, जड़-चेतन, सुर-नर सभी उसके सौंदर्य को देख मुग्ध हो जाते थे। उसके शरीर में समस्त सामुद्रिक लक्षण थे। वह चौंसठ कलाओं, चौदह विद्याओं तथा छः अंगों मे निष्णात थी। वह रति के समान सुन्दर और वसन्त श्री के समान उल्लसित यौवन वाली थी। (इस स्थान पर कवि ने पद्मावती का बड़ा मनोरम नख-शिख-वर्णन किया है।)

एक दिन वह अपनी सखियों के साथ राजभवन के उद्यान में भ्रमण कर रही थी कि उसने एक शुक देखा। उस शुक को देख वह मोहित हो गई। पद्मावती के रक्ताभ अधरों को बिम्बाफल समझ शुक लोभ में आकर जो उस पर झपटा तो पद्मावती ने उसे पकड़ लिया। और प्रसन्न होकर अन्तपुर में ले जाकर एक स्वर्ण के पिंजड़े में बन्द कर दिया। पद्मावती अपना सारा खेल-कूद भूल तन्मय हो उस शुक को 'राम-नाम' पढ़ाने में तल्लीन रहने लगी। शुक ने पद्मावती के अपरूप सौन्दर्य तथा वयः सन्धि की अवस्था को देख प्रफुल्ल मन से शंकर और गौरा से प्रार्थना की कि इसे पृथ्वीराज वर के रूप में प्राप्त हो।

वह शुक उद्भट विद्वान था इसलिए पद्मावती को अनेक प्रकार की कथाएँ सुनाया करता था। पद्मावती हर समय उसी के साथ वार्तालाप करने को लालायित बनी रहती थी। एक दिन पद्मावती ने उस शुक से उसके देश तथा उस देश के राजा का नाम पूछा। शुक ने उत्तर देते हुए बताया कि हिन्दुस्तान में दिल्ली नामक एक गढ़ है जहाँ इन्द्र का अवतार अद्वितीय वीर पृथ्वीराज राज्य करता है। वह साँभर के चौहान वंश का सोलह वर्षीय युवक है। वह साँभर-नरेश सोमेश्वर का पुत्र है। देवता के रूप में उसने अवतार लिया है। उसके योद्धा तथा सामन्त उदभट योद्धा हैं। उसने सुल्तान शहाबुद्दीन गोरी को तीन बार बन्दी बनाकर उसकी सारी प्रतिष्ठा धूल में मिला दी है। वह अचूक शब्द-भेदी बाण मारने वाला ऐसा धनुर्द्धर है जिसके धनुष पर लोहे की प्रत्यंचा चढ़ती है। वह बलि के समान दृढ़ प्रतिज्ञ, कर्ण के समान दानी, शत सहस्र हरिश्चन्द्रों के समान शीलवान, विक्रमादित्य के समान साहसी और शुभ कर्म करने वाला, दैत्य के समान वीर और अंशधारी पुरुष (अवतार) के समान धैर्यशाली है। उसके तेज से चारों दिशाएँ प्रतिभासित होती रहती है। वह रूप में कामदेव का अवतार है। शुक द्वारा पृथ्वीराज का यह वर्णन सुन पद्मावती रोमांचित हो उठी और पृथ्वीराज पर आसक्त हो गई।

पद्मावती शनैः-शनैः बाल्यावस्था को पार कर यौवनवती हो गई। यह देख उसके माता-पिता चिन्तित हो उठे और उन्होंने उसके लिए उपयुक्त वर की खोज में ध्यान लगाया। उन्होंने अपने कुल-पुरोहित को बुलाकर सारी बातें समझाईं और आज्ञा दी कि वह किसी शीलवान् शुद्ध कुल के श्रेष्ठ राजा का

चयन कर उसके साथ पद्मावती की सगाई पक्की कर आए। राजा ने उस कुल पुरोहित को लग्न तथा शगुन की सामग्री दे प्रस्थान करने की आज्ञा दी। यह समाचार सुन समुद्रशिखर में उल्लास छा गया और मंगल वाद्य बजने लगे।

शिवालिक पर्वत श्रेणी में कुमाऊँ नामक एक दुर्ग था। यहाँ कुमोदमणि नामक राजा राज्य करता था। वह अथाह सम्पत्ति और विशाल सेना का स्वामी था। उसे पद्मावती के लिए उपयुक्त वर समझ विजयपाल के कुल पुरोहित ने नारियल प्रतिष्ठित कर तथा मणिरत्नों से चौक पूर कर कन्या का वाग्दान कर दिया। राजा कुमोदमणि ने सहास्य लग्न स्वीकार कर ली। सारे नगर में आनन्द की दुन्दुभियाँ बजने लगीं।

राजा कुमोदमणि अनेक राजाओं एवं गढ़-पतियों को सपरिवार निमन्त्रित कर खूब धूमधाम के साथ बरात सजाकर पद्मावती को व्याहने चला। उसके साथ उसकी सेना चली जिसमें दस हजार अश्वारोही, पाँच सौ हाथी तथा असंख्य पैदल थे। उधर समुद्रशिखर में विभिन्न प्रकार के वाद्य तथा शहनाइयाँ बज रही थीं। सारा नगर उत्साह एवं उल्लास से ओत-प्रोत हो रहा था। बरात के स्वागत के लिए अत्यन्त सुन्दर मण्डप तथा तोरण बनाए गए। विवाह की इन तैयारियों को देख पद्मावती बहुत व्याकुल हो उठी। उसने शुक से एकान्त में कहा कि तुम तुरन्त दिल्ली जाओ और पृथ्वीराज को बुला लाओ। उसने पृथ्वीराज के लिए सन्देश भेजते हुए कहलवाया कि प्राण रहते पृथ्वीराज ही मेरे प्रिय बने रहेंगे। इस मौखिक सन्देश के अतिरिक्त उसने पृथ्वीराज के लिए एक पत्र भी लिख कर दिया जिसमें मुहूर्त, दिन, सम्वत् आदि लिखकर आगे लिखा कि जिस प्रकार कृष्ण ने रुक्मिणी का हरण किया था उसी प्रकार तुम निश्चित दिवस को नगर के पश्चिम में स्थित शिव मंदिर से प्रातः पूजा के समय मेरा अपहरण करो।

पद्मावती के पत्र को लेकर शुक वायु-वेग से दिल्ली जा पहुँचा और उस पत्र को पृथ्वीराज को दे दिया। पृथ्वीराज ने पत्र को पढ़ तुरन्त समुद्रशिखर को चलने की तैयारियाँ करनी प्रारम्भ कर दीं। उसने चामुंडराय को दिल्ली का भार सौंपा और स्वयं समस्त शूरवीर सामन्तों तथा चन्दवरदायी को साथ लेकर पूर्व दिशा की ओर प्रयाण कर दिया।

जिस दिन राजा कुमोदमणि अपनी बरात के साथ समुद्रशिखर पहुँचा, उसी दिन पृथ्वीराज भी वहाँ जा पहुँचा और उसी दिन शहाबुद्दीन गोरी को भी पृथ्वीराज के इस अभियान की सूचना प्राप्त हुई। इस सूचना को पाकर शहाबुद्दीन अपने साथ अत्यन्त क्रूर एवं भयंकर लड़ाके सैनिकों की एक विशाल सेना लेकर पृथ्वीराज का मार्ग रोकने के लिए चढ़ दौड़ा। शहाबुद्दीन के इस आक्रमण की सूचना चन्दवरदायी ने पृथ्वीराज को दी।

कुमोदमणि की बरात के आगमन का समाचार सुन समुद्रशिखर के समस्त राजकुमार बरात की अगवानी के लिए अपने-अपने घोड़ों को सजाने लगे। समस्त स्त्रियाँ गौखों तथा छज्जों पर बैठ बरात को देखने लगीं। उधर पद्मावती इस दृश्य को देख अपने राजभवन में अत्यन्त व्याकुल हो रही थी और व्यग्र होकर दिल्ली से आने वाले मार्ग की ओर टकटकी लगाए बैठी थी। इसी समय शुक ने आकर उसे पृथ्वीराज के आगमन की सूचना दी। इस समाचार को सुन पद्मावती प्रसन्न हो उठी। उसने अपने मलिन वस्त्र त्याग सोलह शृंगार किए और मोतियों से भरा स्वर्ण का थाल सजा अपनी सखियों के साथ आरती करने के लिए मन्दिर की ओर प्रस्थित हुई। मन्दिर में जाकर उसने शंकर पार्वती की पूजा कर उनकी प्रदक्षिणा की और फिर उनके चरणों पर गिर पड़ी। वहीं उपस्थित पृथ्वीराज को देख उसने मोहित मुग्धा के समान अपने वस्त्र से घूँघट कर लिया।

पृथ्वीराज ने पद्मावती का हाथ पकड़ उसे घोड़े पर बैठाया और दिल्ली की ओर रवाना हो गया। पद्मावती के अपहरण का समाचार सुन समुद्रशिखर नगर में युद्ध के नगाड़े बज उठे। सारी सेना ने पृथ्वीराज का पीछा किया। तीव्र अश्वारोहियों ने आगे बढ़ कर पृथ्वीराज को जा घेरा। यह देख पृथ्वीराज ने अपना घोड़ा मोड़ा और उसके योद्धा शत्रु के साथ भिड़ गए। भयंकर संग्राम हुआ। शत्रुओं की पराजय हुई और विजय प्राप्त कर चौहान-नरेश दिल्ली की ओर रवाना हुआ।

पृथ्वीराज के आगे बढ़ते ही शहाबुद्दीन पृथ्वीराज को पकड़ने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर अपनी सेना सहित आगे बढ़ आया। उसने अपने अश्वारोहियों के साथ पृथ्वीराज को चारों ओर से घेर लिया। भयंकर रण-वाद्य बजने लगे। दोनों

पक्षों के समस्त योद्धा युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गए। यह देख पृथ्वीराज ने अपनी तलवार निकाल ली और भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। दोनों पक्ष प्राण हथेली पर रख लड़ने लगे। हार-जीत का कोई निर्णय नहीं हो पाता था। सारा रण-क्षेत्र योद्धाओं, घोड़ों एवं हाथियों के छिन्न-भिन्न अंगों से पट गया। यह देख पृथ्वीराज भयंकर रूप से कुपित हो शत्रु-सेना पर टूट पड़ा। उसके सामन्त गण भी भयंकर हुँकार कर शत्रु-सेना का विनाश करने लगे। धूल उड़ने से रणक्षेत्र में अँधेरा छा गया। इसी समय पृथ्वीराज ने युद्ध करते हुए शहाबुद्दीन की गर्दन में अपना धनुष डाल उसे पकड़ लिया और बन्दी बना, शत्रुसेना को छिन्न-भिन्न करता हुआ दिल्ली की ओर बढ़ गया। इस युद्ध में शहाबुद्दीन की सेना के पाँच सौ चुने हुए मीर तथा पृथ्वीराज के पचास राजपूत योद्धा खेत रहे। पृथ्वीराज की विजय हुई।

शहाबुद्दीन को बन्दी बना चौहान-नरेश ने गंगा पार की और दिल्ली के निकट दुर्गा मंदिर में जा पहुँचा। वहाँ पहुँच उसने शुभ मुहूर्त में पद्मावती के साथ विवाह किया। फिर शहाबुद्दीन को दण्ड दे तथा मुक्त कर उसने अपने राज-भवन में प्रवेश किया। चारों ओर नगाड़े बजने लगे। चन्द्रमुखी मृगनयनी सुन्द-रियों ने अपने राजा का स्वागत किया और स्वर्ण थाल सजा कर उसकी आरती उतारी और मंगल गीत गाने लगीं। पृथ्वीराज ने मस्तक पर मुकुट धारण किया और माथे पर तिलक लगाया। इसके उपरान्त हिन्दुओं में श्रेष्ठ पृथ्वीराज आनन्द के साथ अपने अन्तःपुर में प्रविष्ट हुए।

मूल पाठ व्याख्या सहित

(१)

दूहा—पूरब दिसि गढ़ गढ़न पति, समुद सिषर अति द्रुग्ग।
तहँ सु विजय सुरराज पति, जादू कुलह अभग्ग ॥

शब्दार्थ—समुदसिषर=समुद्र शिखर नामक नगर और दुर्ग। द्रुग्ग= दुर्ग, गढ़, किला। सु=सुन्दर, श्रेष्ठ। विजय=समुद्र शिखर का विजयपाल नामक राजा। सुरराज=इन्द्र। जादू कुलह=यादव वंश का। इसमें 'ह' अपभ्रंश भाषा के सम्बन्ध कारक की विभक्ति है। अभग्ग=अभंग, जिसे भंग न किया जा सके, तोड़ा न जा सके अर्थात् दुर्जेय।

व्याख्या—महाकवि चन्दवरदाई पूर्व दिशा में स्थित किसी समुद्र शिखर नामक गढ़ एवं उसके प्रतापी राजा विजयपाल का वर्णन करता हुआ कहता है कि—

पूर्व दिशा में सम्पूर्ण दुर्गों का स्वामी अर्थात् समस्त दुर्गों में सर्वश्रेष्ठ समुद्रशिखर नामक एक अत्यन्त विशाल एवं दुर्गम दुर्ग है। वहाँ अजेय यादव वंश का इन्द्र के समान ऐश्वर्यशाली एवं प्रतापी राजा विजयपाल राज्य करता है।

टिप्पणी—(१) समुद्र शिखर एवं राजा विजयपाल दोनों ही काल्पनिक हैं। इनका कहीं किसी भी प्रकार का ऐतिहासिक वृत्त नहीं मिलता। परन्तु 'पद्मावती समय' की कथा जायसी के 'पद्मावत' की कथा का हल्का सा आभास देती है। सम्भवतः चन्दवरदाई एवं जायसी दोनों ने ही किसी पूर्व प्रचलित लोक-प्रसिद्ध कथा को ही अपना आधार बनाया होगा। 'पद्मावती' नाम, शुक आदि प्राचीन कथानक रूढ़ियों के प्रमुख अंग रहे हैं। या तो यह कथा कोई

लोकप्रसिद्ध कथा रही है या दोनों ही कवियों ने प्राचीन कथानक-रूढ़ियों के आधार पर इन दोनों कथाओं का ढाँचा तैयार किया होगा। इस सम्बन्ध में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—

'रासो में पद्मावती के विवाह वाला अध्याय इसी परवर्ती काल के विचार-गत उलझन की सूचना देता है। कहानी उसमें वही है जो 'पद्मावत' में है। परन्तु वहाँ पद्मावती उत्तर देश की राजकन्या बताई गई है। पुरानी कहानी की स्मृति उसके कुछ शब्दों में जी रही है। जैसे, यह तो नहीं कहा गया कि पद्मावती सिंहल देश की राजकन्या थी। परन्तु उसके नगर का नाम समुद्र-शिखर यह सूचित करता है कि उस देश का सम्बन्ध किसी समय समुद्र से था। फिर उसका राजा विजयपाल सिंहल के प्रथम राजा विजयसिंह से मिलता-जुलता है और 'जादूकुल' में सम्भवतः यातुधानकुल की यादगार बची हुई है।'

—('हिन्दी साहित्य का आदिकाल')

यहाँ एक बात विचारणीय है। चन्द ने 'समुद्र शिखर' की स्थिति पूर्व दिशा में मानी है। जायसी के 'पद्मावत' का सिंहल द्वीप भी वहीं पूर्वी समुद्र अर्थात् बंगाल की खाड़ी में ही स्थित प्रतीत होता है क्योंकि राजा रत्नसेन उड़ीसा के तट से ही जहाजों में बैठ कर सिंहल द्वीप की यात्रा करता है। इस प्रकार चन्द की इस कथा में उन तीन प्राचीन कथानक रूढ़ियों का प्रयोग मिल जाता है जिनका प्रयोग चन्द के परवर्ती कवि जायसी ने 'पद्मावत' में किया है—नायिका का पूर्व दिशा में स्थित किसी स्थान का होना, शुक द्वारा प्रेम का उत्पन्न किया जाना तथा नाम 'पद्मावती' होना।

(२) **अलंकार**—छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास तथा रूपक।

(२)

दूहा—हसम हयग्गय देस अति, पति सायर अज्जाद।
प्रबल भूप सेवहिं सकल, धुनि निसाँन बहु साद॥

शब्दार्थ—हसम = (अरबी-शब्द) ऐश्वर्य, वैभव। हयग्गय = हय + गय, घोड़े और हाथी। 'हयग्गय' शब्द चन्द की भाषा पर अपभ्रंश के प्रभाव तथा 'डिंगल' की छाप को स्पष्ट करता है। अक्षरों का द्वित्त्व चन्द की भाषा की एक प्रधान विशेषता रही है। देस = देश, प्रदेश, राज्य। पति = पत, प्रतिष्ठा,

स्वामी । सायर=सागर, समुद्र । प्रवल=शक्तिशाली, प्रतापी । अ्रज्जाद=मर्यादा । सेवहिं=सेवा करते हैं । घुनि=ध्वनि, घोष । निसाँन=नगाड़ा, दुन्दुभी । साद=शब्द, निनाद ।

व्याख्या—राजा विजयपाल का वैभव अपार है । उसके पास (असंख्य) हाथी-घोड़े और विशाल राज्य है । उसकी प्रतिष्ठा की मर्यादा समुद्र के समान असीम है अर्थात् वह समुद्र के समान मर्यादा वाला है । अथवा वह समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का स्वामी है । अथवा समुद्र की सीमा तक उसकी प्रतिष्ठा व्याप्त है । भाव यह है कि राजा विजयपाल का यश विशाल समुद्र पर्यन्त फैला हुआ है और वह एक बहुत बड़े भू-प्रदेश का स्वामी है । समस्त शक्तिशाली राजा उसकी सेवा करते हैं । उसके नगाड़ों का घोष चारों ओर गूँजता रहता है अर्थात् उसके नगाड़े इतनी जोर के साथ बजते हैं कि उनका निर्घोष दिग्दिगन्त में व्याप्त रहता है । भाव राजा के अमित सैन्यबल से है ।

टिप्पणी (१) अलंकार—छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास ।

(२) 'पति सायर अ्रज्जाद' का अर्थ तीन प्रकार से किया जा सकता है—(i) समुद्र पर्यन्त उसकी प्रतिष्ठा है, (ii) वह समुद्र के समान गम्भीर मर्यादा वाला है, (iii) वह सागर पर्यन्त भूखंड का स्वामी है ।

(३) 'घुनि' का पाठान्तर 'घन' भी मिलता है । इसके अनुसार इसका अर्थ होगा कि उसके नगाड़ों का घोष बादलों की गर्जना के समान गम्भीर और भयंकर होता था ।

(४) चन्द की भाषा में 'षड्' भाषाओं का मिश्रण है । कवि इस मिश्रण द्वारा अपने पांडित्य का प्रदर्शन करता है । 'अत्युक्ति' प्राचीन-कवियों का अत्यन्त प्रिय विषय रहा है । यहाँ भी कवि ने अत्युक्ति का प्रयोग किया है ।

(३)

कवित्त—घुनि निसाँन बहु साद, नाद सुरपंच बजत दिन ।
दस हजार हय चढ़त, हेम नग जटित साज तिन ॥
गज असंख गजपतिय, मुहर सेना तिढ़ संषह ।
इक नायक कर धरी, पिनाक धर भर रज रष्षह ॥

दस पुत्र पुत्रिय एक सम, रथ सुरंग उंमर डमर ।
भण्डार लछिय अगनित पदम, सो पदमसेन कुँवर सुघर ॥

शब्दार्थ—सुरपंच=पंच स्वर, पंचम स्वर अर्थात् पूरे जोर से । दूसरा अर्थ पंच वाद्यों से भी लिया जा सकता है । दिन=प्रतिदिन, नित्यप्रति । हय चढ़त=घोड़ों पर सवार होते हैं, अश्वारोही । हेम=स्वर्ण । साज=घोड़ों का सामान ज़ीन, लगाम, तंग आदि । तिन=उनके । असंष=असंख्य । गज-पतिय=गजराज, विशालकाय हाथी । मुहर=(फा० मुखर) हरावल या सेना का अग्रभाग, पैदल (मेनारिया) । इस शब्द की व्युत्पत्ति तुर्की शब्द 'मुहरावल' से प्रतीत होती है जिसका अर्थ सेना का हरावल अर्थात् अग्रभाग होता है । तिय=तीन, मेनारिया के अनुसार 'उसके' । संषह=शंख, सौ खरब का एक शंख होता है । इक=एक, अद्वितीय, अनुपम । पिनाक=शिव के धनुष का नाम । धर भर=समग्र पृथ्वी अथवा समस्त पृथ्वी का भरण (रक्षा) करने वाला राजा । रज=राज्य, छात्र धर्म । रष्षह=रक्षण, रक्षा करना । एक समं=एक समान, एक से । सुरंग=सुन्दर रंग वाला, सुन्दर । उम्मर=अम्बर, आकाश, वस्त्र । डमर=चँदोवे । उम्मर डमर=सन्ध्या के रंग बिरंगे बादलों के समान अथवा आकाश स्थित चन्द्रमा के समान । भंडार=खजाना । लछिय=लक्ष्मी, धन सम्पत्ति । पदम=पद्म, एक संख्या । सो=उसकी । पदमसेन=पद्मसेन, विजय पाल की रानी । कुँवर=कुमारी, यहाँ रानी से अभिप्राय है । सुघर=सुन्दर ।

व्याख्या—राजा विजयपाल के नगाड़ों की ध्वनि अत्यन्त गम्भीर स्वर में गूँजती रहती है । उसके यहाँ नित्यप्रति पंच वाद्य बजते रहते हैं अर्थात् उसके राजद्वार पर नित्यप्रति मंगलसूचक पंच वाद्य बजते रहते हैं । उसके दस हजार सैनिक घोड़ों पर सवार रहते हैं अर्थात् उसके पास दस हजार अश्वारोही सैन्य हैं । इन घोड़ों का साज स्वर्ण से मंडित और रत्नों से जटित है । उसकी सेना में असंख्य गजराज अर्थात् विशालकाय हाथी हैं । उसकी हरावल सेना अर्थात् अग्रगामी पदाति (पैदल) सेना की संख्या तीन शंख है । मेनारिया ने 'तिय' का अर्थ 'उसकी' मान कर यह अर्थ किया है—'एक शंख पैदल सेना उसके आगे चलती थी ।' डा० भगीरथ मिश्र के अनुसार—'मोहरे पर की सेना तीन शंख

थी।' यदि 'मुहर' के स्थान पर 'मुखर' पाठान्तर स्वीकार किया जाय तो इसका अर्थ इस प्रकार माना जायेगा—'उसकी तीन शंख सेना शोर मचाती अर्थात् शत्रु को ललकारती हुई चलती थी।' परन्तु यह अर्थ अधिक संगत नहीं प्रतीत होता क्योंकि कवि सेना की विशालता का ही वर्णन कर रहा है।

वह अद्वितीय नायक अर्थात् सेनापति है। वह हाथ में शिव के 'पिनाक' नामक धनुष के समान भयंकर और भारी धनुष धारण कर सम्पूर्ण पृथ्वी के राज्य की रक्षा करता है। मेनारिया के अनुसार—'एक धनुर्धारी सेनानायक के अधिकार में यह सेना रहा करती थी।' परन्तु इस अर्थ में कोई चमत्कार या विशेषता नहीं है। रूप और गुण में एक समान उसके दस पुत्र और एक पुत्री है। उसके रथ सुन्दर रंगों वाले चंदोवे से ढके रहते हैं अथवा उसके रथ अकाशवासी चन्द्रमा के समान उज्ज्वल और शुभ्र रंग वाले चँदोवों से आच्छादित रहते हैं। उसके भंडार में असंख्य पद्म धन भरा रहता है। उसकी रानी पद्मसेन सुन्दरी है।

टिप्पणी—(१) **अलंकार**—छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, यमक और अतिशयोक्ति।

(२) सुरपंच—पंच वाद्य, यथा—भृग (सींगी), तम्भट (खंजड़ी), शंख, भेरी, जयघंटा। कुछ लोगों ने पंच वाद्य इस प्रकार माने हैं—मृदंग, तंत्री, मुरली, ताल तथा प्रतिध्वनित वाद्य। प्राचीन युग में अपने द्वार पर इन पंच वाद्यों को बजवाने का अधिकार केवल राजाओं को रहता था।

(३) पंचम पंक्ति के उत्तरार्द्ध का कुछ टीकाकारों ने इस प्रकार अर्थ किया है—'उसके रथ सन्ध्याकालीन रंग-बिरंगे दल बादल (चंदोवे) वाले हैं।' यह अर्थ सौन्दर्य की दृष्टि से अधिक सार्थक प्रतीत होता है।

(४) मूलग्रन्थ में इस छन्द का नाम 'कवित्त' मिलता है परन्तु दरअसल है यह 'छप्पय'। यह मात्रिक-संयुक्त छन्द होता है। प्रथम चार चरणों में रोला और अन्तिम दो चरणों में उल्लाला रहता है। चन्द ने इस छन्द का सर्वाधिक प्रयोग किया है। चन्द 'छप्पय' का सम्राट माना जाता है।

(५) इस पद में कवि ने विजयपाल की रानी के लिए 'कूँवर' शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ होता है 'कुमार'। यदि स्त्रीलिंग में इसका रूप

'कुमारी' माना जाय तो भी विवाहिता के लिए इस शब्द का प्रयोग ठीक नहीं प्रतीत होता। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में कविगण शब्दों के इस भेद के प्रति या तो सजग नहीं रहते थे या उस समय इन शब्दों के वर्तमान अर्थ प्रचलित नहीं थे। हमें जायसी में भी ऐसी ही प्रवृत्ति मिलती है। जायसी ने पद्मावती को कौमार्यावस्था में ही उसके लिए 'रानी' शब्द का प्रयोग किया है। अतः यह सिद्ध हो जाता है कि प्राचीन काल में 'कुमारी' और 'रानी' शब्द अपने वर्तमान अर्थ में प्रचलित नहीं थे। इनके अतिरिक्त विजय-पाल की रानी का नाम 'पद्मसेन' न होकर 'पद्मसेना' होना चाहिए था। 'पद्मसेन' शब्द पुल्लिंग वाचक सा प्रतीत होता है। सम्भव है मात्रा के कारण 'पद्मसेना' का 'पद्मसेन' हो गया हो। 'कूँवर' के स्थान पर यदि 'कूँवरि' मान लिया जाय तो अर्थ ठीक बैठ सकता है। अर्थात् पद्मसेन-कुमारी—पद्म-सेन की पुत्री। सम्भव हैं उसके पिता का नाम पद्मसेन रहा हो।

(४)

दूहा—पदसेन कुँवर सुघर, ता घर नारि सुजाँन।
ता उर एक पुत्री प्रगट, मनहुँ कला ससिभांन॥

शब्दार्थ—ता=उसके। सुजांन=चतुर। उर=हृदय, गर्भ। ससिभांन=चन्द्रमा।

व्याख्या—उसके अर्थात् राजा विजयपाल के घर में पद्मसेन नामक चतुर और सुन्दर स्त्री अर्थात् पत्नी है। उसके गर्भ से एक पुत्री ने जन्म लिया जो मानो चन्द्रमा की कला के समान सुन्दर थी। भाव यह है वह पुत्री इतनी सुन्दर थी मानो चाँद का टुकड़ा हो। (कुछ व्याख्याकारों ने 'ससिभान' शब्द का अर्थ ससि+भान=चन्द्र+सूर्य भी किया है अर्थात् वह बालिका चन्द्र और सूर्य के समान सुन्दर और दीप्ति वाली थी।)

टिप्पणी—(१) अलङ्कार—छेकानुप्रास, उत्प्रेक्षा।

(५)

कवित्त—मनहुँ कला ससिभांन, कला सोलह सो बन्निय।
बाल बेस ससि ता समीप, अंम्रित रस पिन्निय॥

बिगसि कमल स्रिग्र भ्रमर, बैंन, षंजन मृग लुट्टिय ।
हीर कीर अरु बिंब मोति नष सिष अहिघुट्टिय ॥
छप्पति गयंद हरि हंस गति, बिह बनाय संचै सचिय ।
पदमिनिय रूप पद्मावतिय, मनहुँ काम कामिनि रचिय ॥

शब्दार्थ— सो=से, द्वारा । बन्निय=बनाई गई हो । बेस=वयस, अवस्था । ता=उसके । पिन्निय=पान किया हो । बिगसि=विकसित, खिला हुआ । मिग्र=मृग, हरिण (पाठान्तर-स्रिग=(सं) स्रक, माला, शृंखला, श्रेणी । बैंन=वेणु, वंशी । षंजन=खंजन पक्षी । लुट्टिय=लूट लिया हो । हीर=हीरा । कीर=तोता । बिब=बिम्बा फल । मोति=मोती । नष सिष=नख-शिख । अहिघुट्टिय=अभिघटित किया, बनाया । छप्पति (पाठान्तर-छत्रपति) छिपाती है या छिप जाते हैं । यहाँ 'छत्रपति' पाठ अशुद्ध और असंगत है क्योंकि उससे अर्थ में कोई सौन्दर्य नहीं रहता । गयंद=गजराज । हरि=सिंह । गति=चाल विह=विधाता । संचै=साँचा । सचिय=शची, इन्द्राणी, संचित, ढाल कर गढ़ा हो । पदमिनिय=पद्मिनी । काम कामिनि=कामदेव की स्त्री, रति ।

व्याख्या—इस पद में कवि पद्मावती के रूप का नख-शिख वर्णन कर रहा है । इसमें उसने विभिन्न परम्पराभुक्त उपमानों द्वारा पद्मावती के अपरूप सौन्दर्य का अत्यन्त कलापूर्ण अंकन किया है । कवि कहता है कि—

पद्मावती इतनी सुन्दर है मानो साक्षात चन्द्रमा की कला ही इस भूमंडल पर अवतरित हुई हो । मानो उसका निर्माण चन्द्रमा की सम्पूर्ण सोलह कलाओं द्वारा किया गया हो । भाव यह है कि वह पूर्ण चन्द्र के समान सुन्दर है । अभी उसकी बाल्यावस्था है । उसके निर्मल एवं शान्ति प्रदायक रूप को देख ऐसा भान होता है मानो चन्द्रमा ने उसी से अमृत का पान किया हो अर्थात् उसी से अमृत प्राप्त किया हो । भाव यह है कि उसके रूप को देख नेत्रों को उसी प्रकार शीतलता प्राप्त होती है जिस प्रकार चन्द्रमा को देखकर नेत्र शीतल होते हैं । उसके विभिन्न अंगों—मुख, नेत्र, कर, चरण—के सौन्दर्य ने विकसित कमलों की श्रेणी के सौन्दर्य को (उक्त चार अंगों की उपमा कमलों से दी जाती है), उसके केशों की श्यामता ने भ्रमरों की श्यामता को, उसकी मधुर वाणी ने वेणु (वंशी) के स्वर के माधुर्य को, उसके नेत्रों की चंचलता ने खंजन की चप-

लता को तथा नेत्रों की विशालता एवं भोलेपन ने मृगों के नेत्रों की विशालता एवं भोलेपन को लूट लिया है। भाव यह है कि पद्मावती ने इन विशेषताओं को उपर्युक्त विभिन्न उपमानों से प्राप्त किया है अर्थात् उनसे छीन लिया है। अर्थात् ये सारे उपमान पद्मावती की उपर्युक्त विशेषताओं की तुलना में फीके प्रतीत होते हैं। नख से शिख तक उसने सम्पूर्ण सौन्दर्य को हीरा, शुक, बिम्बाफल तथा मोती द्वारा अभिघटित अर्थात् निर्मित किया गया है। भाव यह है कि उसकी दन्तपंक्ति हीरे के समान निर्मल एवं कान्तिमान, नासिका शुक नासिका के समान सुडौल, पतली और तनिक आगे की ओर झुकी हुई, अधर बिम्बाफल के समान लाल और मोहक, हाथ-पैरों के नख मोती के समान सुन्दर, सुडौल, स्वच्छ और प्रभामय हैं। (कुछ आलोचकों ने 'मोती' से यह अभिप्राय लिया है कि उसका सारा नखशिख मोती की सी कान्ति से निर्मित किया गया है। 'अहि' और 'घुट्टिय' शब्दों को पृथक मान कर कुछ आलोचकों ने यह अर्थ किया है कि उसके केश सर्प के समान काले और लहरियादार हैं तथा केशों के इस सौन्दर्य ने सर्प के सौन्दर्य को घटा दिया है, क्षीण कर दिया है। परन्तु यह दोनों ही अर्थ खींचतान-परक अर्थ प्रतीत होते हैं। कवि केशों की उपमा ऊपर भ्रमर से दे आया है, इसलिए उसकी पुनरावृति दोष मानी जायगी।)

पद्मावती की गर्व भरी, मन्द-मन्थर चाल को देख हाथी, सिंह और हंस लज्जित हो छिप जाते हैं। अर्थात् उसकी चाल में हाथी की सी मस्ती (Resignation), सिंह का सा गर्व और हंस की सी मन्थरता है। उसके सम्पूर्ण अंग ऐसे सुडौल हैं मानो विधाता ने उसे साँचे में ढाल कर गढ़ा हो। ('सचिय' शब्द का अर्थ शची (इन्द्राणी) मान कर कुछ व्याख्याकारों ने इसका अर्थ इस प्रकार भी किया है—मानो विधाता ने उसे साँचे में ढाल कर शची के समान सुन्दर बनाया हो। परन्तु यह अर्थ अधिक सुन्दर नहीं प्रतीत होता।) ऐसी वह पद्मावती पद्मिनी नारी के समान सुन्दर है। उसे देख ऐसा प्रतीत होता है मानो विधाता ने उसके रूप में कामदेव की पत्नी रति का ही दूसरा रूप निर्मित किया हो अर्थात् वह रति के समान अनिन्द्य सुन्दरी है। भाव यह है कि वह साक्षात रति स्वरूपा है।

टिप्पणी—(१) अलंकार—छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, उत्प्रेक्षा, रूपकातिशयोक्ति तथा व्यतिरेक ।
'ससिभान' में बहुव्रीहि समास माना जा सकता है ।

(२) इस पद में दो शब्द विचारणीय हैं—'म्रिग' तथा 'छप्पति' । इनके क्रमशः दो पाठान्तर मिलते हैं—'स्त्रिग' तथा 'छत्रपति' । 'म्रिग' का 'स्त्रिग' पाठान्तर अधिक संगत प्रतीत होता है । क्योंकि इसी पंक्ति में आगे चल कर पुनः 'मृग' शब्द का प्रयोग मिलता है । 'स्त्रिग' का अर्थ होता है श्रेणी, माला, हार आदि । यहाँ कवि ने नायिका के कई अङ्गों का अप्रत्यक्ष रूप से उल्लेख कर दिया है जिनकी उपमा कमल से दी जाती है, जैसे—मुख, नेत्र, कर तथा चरण । ये अङ्ग इतने सुन्दर हैं मानो प्रफुल्लित कमलों की माला हो । अर्थात् उसका सारा रूप कमलों के हार के समान शोभायमान है । इसलिए यहाँ 'स्त्रिग' पाठ ही स्वीकार करना चाहिए । एक आलोचक महोदय ने 'स्त्रिग' का अर्थ 'वाण' माना है । परन्तु बाल्यावस्था में नेत्रों में वाण की सी घातक तीक्ष्णता नहीं होती, यद्यपि चाल में मन्थरता का होना असम्भव नहीं । इसलिए 'स्त्रिग' का अर्थ श्रेणी या माला ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है ।

'छप्पति' के स्थान पर 'छत्रपति' पाठ पूर्णतः असंगत है, क्योंकि छत्रपति का अर्थ होता है राजा । 'गयन्द' का अर्थ होता है हाथियों का राजा । फिर 'छत्रपति गयन्द' का क्या अर्थ होगा, यह समझ में नहीं आता । कुछ आलोचकों ने इसी पाठान्तर को स्वीकार कर इसका अर्थ किया है 'श्रेष्ठ गज' जबकि 'गयन्द' का अर्थ ही 'श्रेष्ठ गज' होता है । 'छप्पति' का अर्थ है 'छिप जाना' । सूर, विद्यापति, जायसी आदि ने नायिकाओं का नख-शिख-वर्णन करते समय अनेक स्थलों पर यही भाव व्यक्त किया है कि नायिका के अङ्गों को देख उनके उपमान सिंह, हाथी, शुक आदि लज्जित हो वन में जा छिपे हैं । इसलिए यहाँ 'छप्पति' पाठ ही शुद्ध और संगत माना जाना चाहिए ।

(३) चन्द्र द्वारा किया गया पद्मावती का यह रूप-वर्णन परम्पराभुक्त वर्णन है ।

(६)

दूहा—मनहुँ काम कामिनि रचिय, रचिय रूप की रास।
पसु पंछी सब मोहिनी, सुर, नर, मुनियर पास ॥

शब्दार्थ—रास = राशि, पुंज, समूह। मुनियर = मुनिवर। पास = पाश।

व्याख्या—मानो विधाता ने पद्मावती के रूप में सम्पूर्ण रूप-सौन्दर्य की राशि कामदेव की प्रियतमा रति को ही पुनः रचा हो अर्थात् वह रति के समान अपरूप सुन्दरी है। वह पशु-पक्षी आदि सभी को अपने रूप से मोहित कर लेती है। देवता, मनुष्य एवं श्रेष्ठ मुनि आदि सभी के लिए उसका रूप फन्दे के समान घातक है। अर्थात् सभी उसके रूपजाल में उलझ कर उसे प्राप्त करने की कामना करने लगते हैं।

टिप्पणी—(१) **अलंकार**—छेकानुप्रास, यमक, पदमैत्री।

(७)

दूहा—सामुद्रिक लच्छिन सकल, चौंसठि कला सुजांन।
जानि चतुरदस अंग षट, रति वसन्त परमांन ॥

शब्दार्थ—सामुद्रिक = एक शास्त्र विशेष जिसके अनुसार मानव के शारीरिक अंगों के लक्षणों के आधार पर उसके विषय में शुभाशुभ निर्णय किया जाता है। लच्छन = लक्षण। चौंसठि कला = भारतीय शास्त्र के अनुसार सम्पूर्ण कलाओं की संख्या चौंसठ मानी गई है। हमारे यहाँ साहित्य को कला नहीं माना गया है जबकि यूरोपिय शास्त्र में साहित्य को कला स्वीकार किया गया है। गीत, वाद्य, नृत्य आदि चौंसठ कलाएँ होती हैं। सुजांन = निपुण। जानि = जानती है। चतुरदस = चौदह विद्याएँ। अंगषट = वेद के छः अंग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष तथा छन्द। कुछ आलोचकों ने इसका अर्थ 'षट् दर्शन' माना है। सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा तथा वेदान्त षट दर्शन कहलाते हैं। परमान = प्रमाण, समान।

व्याख्या—पद्मावती के शरीर में सम्पूर्ण शुभ सामुद्रिक लक्षण विद्यमान हैं। वह चौंसठ कलाओं में पारंगत है तथा चौदह विद्याओं और छः वेदांग अथवा षटदर्शनों की ज्ञाता है। वह रति के समान अनिन्द्य सुन्दरी एवं वसन्त के समान नवयौवनवती है। अर्थात् उसका यौवन वसन्त के समान मुकुलित है। यहाँ

कवि ने 'प्रमाण' शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ है—वह मुख्य हेतु जिसके द्वारा दूसरी अप्रस्तुत वस्तु का यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है। भाव यह है कि पद्मावती को देखकर रति के सौन्दर्य एवं वसन्तागम का अनुमान लगाया जा सकता है।

टिप्पणी—अलंकार—अनुप्रास और उपमा।

(८)

दूहा—सषियन संग खेलत फिरत, महलनि बाग-निवास।
कीर इक्क दिष्षिय नयन, तब मन भयौ हुलास॥

शब्दार्थ—सषियन=सखियों। बाग-निवास=उद्यानगृह, बाग के भीतर बना हुआ महल। कीर=तोता, शुक। इक्क=एक। दिष्षिय=देखा।

व्याख्या—एक दिन पद्मावती अपनी सखियों के साथ राजमहल के उद्यान भवन में क्रीड़ा कर रही थी। वहाँ उसने अपने नेत्रों से एक तोते को देखा जिसे देखकर उसका हृदय उल्लास से आपूरित हो उठा। अर्थात् वह अत्यन्त प्रसन्न हुई।

(९)

कवित्त—मन अति भयो हुलास, बिगसि जनु कोक किरन रवि।
अरुन अधर तिय सधर, बिम्बफल जानि कीर छवि।
यह चाहत चष चकित, उह जु तक्किय झरप्पि झर।
चंच चहुँट्टिय लोभ, लियौ तब गहित अप्प कर॥
हरषत अनंद मन महि हुलस, लै जु महल भीतर गई।
पन्जर अनूप नग मनि जटित, सो तिहि मँह रष्षत भई॥

शब्दार्थ—बिगसि=प्रफुल्लित होना। कोक=चक्रवाक, चकवा नामक पक्षी, कमल। सधर=ऊपर का होठ। अधर=नीचे का होठ। चाहत=देख रही थी। चष=चक्षु, नेत्र। उह=उसने। जु=जो। तक्किय=ताक कर। झरप्पि=झपट कर। झर=तुरन्त, तत्क्षण, झट। चंच=चंचु, चोंच। चहुँट्टिय=छिपट गया, चलायी। अप्प=अपने। गहित=पकड़ लिया। कर=हाथ। महि=में। पंजर=पिंजड़ा। अनूप=अनुपम। मनि=मणि। तिहि=उसके। मँह=भीतर, में। रष्षत भई=रखा।

व्याख्या—उस शुक को देखकर पद्मावती के मन में अत्यन्त उल्लास की भावना उत्पन्न हुई। वह इस प्रकार खिल उठी जिस प्रकार सूर्य की प्रथम किरण को देख चकवी के वियोग में दुखी चकवा प्रभात हुआ जान पुनः संयोग की आशा से प्रसन्न हो उठा हो अथवा सूर्य किरण का स्पर्श पा कमल खिल उठा हो। (यहाँ 'कोक' के दोनों अर्थ 'चकवा' और 'कमल' ग्रहण किए जा सकते हैं परन्तु अधिक सार्थक अर्थ 'कमल' ही होगा)। उस शुक ने उस सुन्दरी नारी पद्मावती के ऊपर नीचे के दोनों अरुण वर्ण के होठों की अरुण कान्ति को विम्बाफल समझा। भाव यह है कि शुक ने पद्मावती के लाल रंग के होठों को बिम्बाफल समझा। पद्मावती चकित नेत्रों से उस शुक की ओर देख रही थी। उस शुक ने जो ताक कर तुरन्त उन होठों पर झपट्टा मारा और फल के लोभ में उन पर अपनी चोंच चलाई तो पद्मावती ने अपना हाथ बढ़ाकर उसे पकड़ लिया। उसे पकड़ कर वह मन मे अत्यन्त प्रसन्न हुई और उल्लसित होती हुई उसे अपने साथ महल के भीतर ले गई। वहाँ जाकर उसने उस शुक को रत्न और मणियों से जटित एक अनुपम सुन्दर पिंजड़े के भीतर रख दिया।

टिप्पणी—(१) **अलंकार**— अनुप्रास, छेकानुप्रास, उत्प्रेक्षा तथा भ्रान्तिमान।

(२) 'सधर' शब्द का अर्थ कुछ टीकाकारों ने 'धारण करने वाला' माना है। इसके अनुसार अर्थ होगा—'वह स्त्री लाल रंग के होठ धारण करने वाली थी।'

(३) इस पद में दो भाषाओं—प्राकृत और ब्रजभाषा का अद्भुत मिश्रण हुआ है। भूषण आदि वीररस के कवियों में भी यही प्रवृत्ति आगे चलकर भी मिलती है। तविक्य, झर्प्प, चहुँट्टिय, अप्प, रष्षत आदि शब्दों में प्राकृत की प्रवृत्ति स्पष्ट है। इनके अतिरिक्त भाषा का शेष रूप विशुद्ध साहित्यिक ब्रज-भाषा का है जो रीतिकालीन ब्रजभाषा से किसी भी रूप में भिन्न नहीं माना जा सकता। भाषा के इसी रूप को देखकर कुछ आलोचकों ने 'पृथ्वीराज रासो' को चन्द की रचना नहीं माना है क्योंकि उस युग में भाषा का यह रूप प्रचलित नहीं था।

(१०)

दूहा—तिही महल रष्षत भइय, गइय षेल सब भुल्ल ।
चित्त चहूंटटयौ कीर सों, राम पढ़ावत फुल्ल ।।

शब्दार्थ—तिही=उसे, उसको । षेल=खेल । भुल्ल=भूल गई ।
चहुँट्टयौ=गया । राम=रामनाम । फुल्ल=प्रफुल्लित, प्रसन्न होकर ।

व्याख्या—पद्मावती ने उस शुक को अपने महल में रख लिया और उसके मोह में पड़ अपना सारा खेलना-कूदना भूल गई । उसका मन पूर्ण रूप से उस शुक में ही रम गया और वह प्रफुल्लित अर्थात् प्रसन्न होकर उसे 'रामनाम' पढ़ाने लगी ।

(११)

दूहा—कीर कुँवरि तन निरषि दिषि, नष सिष लौं यह रूप
करता करी बनाय कै, यह पदमिनी सरूप ।।

शब्दार्थ—कुवँरि=राजकुमारी । तन=शरीर । निरषि=देखकर ।
दिषि=दिशा, ओर, तरफ । लौं=पर्यन्त, तक । यह=ऐसा । करता=कर्त्ता, विधाता । करी=किया । कै=कर ।

व्याख्या—उस शुक ने राजकुमारी पद्मावती के शरीर की ओर दृष्टिपात कर उसके नख से लेकर शिख पर्यन्त समस्त रूप को देखा और मन में विचार किया कि विधाता ने इसे पद्मिनी नारी के समान रूप-गुण सम्पन्न बना कर इतना सौन्दर्य प्रदान किया है ।

टिप्पणी—(१) अलंकार—छेकानुप्रास, धर्मलुप्ता उपमा ।

(२) पद्मिनी नारी सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी नारी मानी गई है । कामशास्त्र के ग्रन्थों में इसके अनेक लक्षणों का वर्णन मिलता है । इसे 'पद्मगंधा' भी कहते हैं । चन्द ने पद्मिनी नारी के लक्षण इस प्रकार बताए हैं—

'कुटिल केस पदमिनी, चक्रहस्तन तन सोभा ।
स्निग्ध दन्त सोभा विसाल, गंध परम आलोभा ।।
सुर समूह हंसी समान, निद्रा तुच्छ जंपै ।
अलप वाद मित काम, रत्त अभया भय कंपै ।।

धीरज, छिमा लच्छिन सहज, असन बसन चतुरंग गति।
आबंक लोइ लग्गै सहज, कांम बांन भूलंत रति।'

(१२)

कवित्त—कुट्टिल केस सुदेस, पोहप रचियत पिक्क सद।
कमलगंध वयसंध, हंसगति चलत मंद-मंद॥
सेत वस्त्र सोहै सरीर, नष स्वाति बुंद जस।
भमर भँवहि भुल्लहिं, सुभाव मकरंद बास रस॥
नैन निरखि सुष पाय सुक, यह सुदिन मूरति रचिय।
उमा प्रसाद हर हेरियत, मिलहिं राज प्रथिराज जिय॥

शब्दार्थ—कुट्टिल=कुटिल, टेढ़े, घुँघराले। सुदेस=सुन्दर। पौहप=पुष्प, फूल। रचियत=रचित। पिक्क=पिक, कोयल। सद=शब्द, बोली। कमल गन्ध=कमलगन्धा, जिसके शरीर में से कमल की सुगन्धि आती है। वयसंध= वयः सन्धि, वह अवस्था जब बाल्यावस्था की समाप्ति और यौवन का प्रारम्भ होने लगता है अर्थात् जिसमें बाल्यावस्था तथा यौवन दोनों के ही लक्षण मिले-जुले से रहते हैं। मद=मदभरी, उन्मत्त। सेत=श्वेत, सफेद। स्वातिबुंद= स्वाति की बूँद अर्थात् मोती। जस=जैसी, समान। भँवहि=घूमते हैं, चक्कर लगाते हैं। भुल्लहिं=भूलकर, विभोर होकर। सुभाव=अनुरक्त होकर। बास=गन्ध। सुष=सुख। सुदिन=शुभ घड़ी। रचिय=रची गई, बनाई गई। उमा=पार्वती। प्रसाद=कृपा। हर=शिव। हेरियत=देखता है। जिय= मन।

व्याख्या—कवि पद्मावती के मोहक रूप का वर्णन करता हुआ कहता है कि—उसके केश सुन्दर और घुँघराले हैं। उनमें पुष्प गुँथे हुए हैं। उसकी वाणी कोयल के समान मधुर और सुरीली है। (कुछ आलोचकों ने 'पौह पर-चियत पिक्क सद' पाठ मान कर 'पौह' का पुहे हुए अर्थात् गुँथे हुए, 'परिचियत का दिखाई देते हैं, 'पिक्क' का पृक्क अर्थात् मोती तथा 'सद' का सुन्दर अर्थ स्वीकार कर इस पंक्ति का अर्थ इस प्रकार किया है, उसके केशों में गुँथे हुए मोती अत्यन्त सुन्दर दिखाई देते हैं। इस अर्थ को भी स्वीकार किया जा

सकता है। प्राचीन काल में केशों में मोती गूँथ कर शृङ्गार करने की परिपाटी थी।

पद्मावती कमलगन्धा है अर्थात् उसके शरीर में से कमल की सुगन्धि आती रहती है। (पद्मिनी नायिका को 'कमलगन्धा' या 'पद्मगंधा' कहा गया है।') उसकी अवस्था वयः सन्धि की है अर्थात् अभी उसकी बाल्यावस्था पूर्णरूप से समाप्त नहीं हो पाई है और उसके शरीर में यौवन के लक्षण प्रस्फुटित होने प्रारम्भ हो गए हैं। वह हंस के समान मन्द-मंथर गति से चलती है। उसके शरीर पर श्वेत वस्त्र शोभित हैं। उसके नख मोती की सी उज्ज्वल कान्ति वाले एवं सुडौल हैं। भ्रमर उसके शरीर से आने वाली मकरन्द की सुगन्धि में अनुरक्त हो अपने चंचल स्वभाव को भूल उसका रसपान करने के लिए रातदिन उसके चारों ओर चक्कर काटते रहते हैं। (भ्रमर का यह स्वभाव होता है कि वह एक ही पुष्प पर अधिक समय तक नहीं रहता। परन्तु यहाँ भ्रमर अपने उस चंचल रसलोभी स्वभाव को भूल बराबर पद्मावती के शरीर के चारों ओर चक्कर काटते रहते हैं।)

पद्मावती के इस अलौकिक सौन्दर्य को देख उस शुक को अमित सुख प्राप्त हुआ। इस अलौकिकता (कि भ्रमर उसके चारों ओर मँड़राते रहते हैं) को देख कर उसने मन में सोचा कि विधाता ने किसी शुभ घड़ी में पद्मावती की इस मनोहर मूर्ति को रचा होगा। यह सोच वह मन ही मन पार्वती की स्तुति कर शिव की ओर इस आशा से देखने लगा कि यदि शंकर भगवान कृपा करें तो मेरी यह कामना है कि इसे राजा पृथ्वीराज पति रूप में प्राप्त हो।

टिप्पणी—(१) अलंकार—अनुप्रास, छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, धर्मलुप्तोपमा तथा भ्रान्तिमान। 'भमर—रस' में भ्रान्तिमान अलंकार माना जा सकता है।

(२) पाँचवीं पंक्ति में 'सुदिन' के 'सदिन', 'सुभदिन' 'सुदिव्य' आदि कई पाठान्तर मिलते हैं। प्रथम दो पाठान्तरों से मूल अर्थ में कोई अन्तर नहीं पड़ता। 'सुदिव्य' को स्वीकार कर लेने से अर्थ होगा—'विधाता ने इस दिव्य मूर्ति की रचना की है।'

(३) कुछ टीकाकारों ने चतुर्थ पंक्ति का अर्थ कई प्रकार से किया है, जैसे—'इसके अधरामृत रस रूपी मकरन्द तथा शरीरजन्य वास (कमल गन्ध) के

रस (लोभ) से आकृष्ट हो भ्रमर स्वभावतः भूल कर (अर्थात् भ्रमवश उसे एक खिला कमल पुष्प समझ कर) उसके चारों ओर मँडराते हैं।' तथा 'स्वभावतः मकरन्द की सुगन्धि के आनन्द में विभोर (भुल्लहिं) होकर भ्रमर (उसके चारों ओर) मँडराते हैं।' इस प्रकार के अर्थ 'सुभाव' शब्द का 'स्वभाव अर्थ करने के कारण ही किए गए हैं। परन्तु हमने 'सुभाव' का अर्थ सुन्दर भाव सहित अर्थात् अनुरक्त होना माना है। यह अर्थ स्वीकार कर लेने से भ्रमर के स्वभाव का प्रश्न ही नहीं उठता। यहाँ अर्थ का यही चमत्कार है कि भ्रमर स्वभाव से चंचल होता है परन्तु पद्मावती के शरीर से निरन्तर पद्मगंध आती रहती है। कमल पुष्प जब मुरझा जाता है तो उसकी गन्ध नष्ट हो जाती है इसलिए भ्रमर उसे त्याग कर दूसरे पुष्प के पास चला जाता है। परन्तु पद्मगंध नायिकाओं के शरीर से निरन्तर आने वाली सुगन्धि के कारण भ्रमर निरन्तर उनके चारों ओर मस्त होकर मँडराता रहता है, ऐसी कवियों की कल्पना है।

(४) अन्तिम पंक्ति का अर्थ टीकाकारों ने अस्पष्ट किया है, जैसे—'पति खोजने में पार्वती की कृपा की आकांक्षा करती है, तथा 'वह मन में गौरी तथा शंकर के अनुग्रह की याचना करने लगा कि इसे पृथ्वी राज (वर रूप में) प्राप्त हों।' यहाँ 'उमा' के उपरान्त 'प्रसाद' शब्द का आना इस पंक्ति की कुंजी है। पति प्राप्त करने के लिए कुमारिकाएँ पार्वती की पूजा करती हैं। पार्वती प्रसन्न हो शिव को उनकी मनोकामना पूर्ण करने के लिए प्रेरित करती हैं। ऐसी लोक मान्यता है। इसलिए यहाँ पार्वती की कृपा प्राप्त करना प्रमुख है। अतः हमने अर्थ करते समय इसी तथ्य को दृष्टि में रखकर अर्थ किया है।

(५) कुछ टीकाकारों ने 'मिलहि राज प्रथिराज जिय' का 'जिय मिलहिं राज प्रथिराज' पाठ मान कर इसमें दूरान्वय दोष माना है।

(१३)

दूहा—सुक समीप मन कुँवदि कौ, लग्यौ बचन कै हेत।
अति विचित्र पँडित सुआ, कथत जु कथा असेत॥

शब्दार्थ—लग्यो = लग गया। वचन = बात। हेत = हेतु, लिए। कथत = कहा करता था। असेत = अमित, अनेक।

व्याख्या—राजकुमारी पद्मावती उस शुक को पाकर उसमें इतनी अनुरक्त हो गई कि उसका मन सदैव उस शुक की बातें सुनते रहने के लिए उसी में लगा रहता था। वह शुक अत्यन्त विचित्र पंडित था जो राजकुमारी को अनेक प्रकार की विभिन्न कथाएँ सुनाया करता था।

टिप्पणी—(१) प्राचीन कथाओं में मानव की बोली बोलने वाले पक्षियों का प्रायः उल्लेख मिलता है। शुक प्राचीन कथानक रूढ़ियों का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पात्र रहा। अनेक लगभग प्राचीन प्रसिद्ध प्रेम-कथाओं में मनुष्य भाषा-भाषी शुक का उपयोग मिलता है। चन्द ने यहाँ उसी प्रसिद्ध कथानक-रूढ़ि का उपयोग किया है।

(१४)

गाथा—**पुच्छत बयन सुबाले, उच्चरिय कीर सच्च सच्चाये।**
कवन नाम तुम देस, कवन यंद करै परवेस॥

शब्दार्थ—पुच्छत=पूछती है। सुबाले=सुबाला, श्रेष्ठ नारी। उच्चरिय=उच्चारण करो, बताओ। सच्च सच्चाये=सच-सच। कवन=क्या। यंद=इन्द्र, राजा। परवेस=राज्य।

व्याख्या—वह श्रेष्ठ बाला पद्मावती उस शुक से यह बात पूछने लगी कि हे शुक! तुम सच-सच बताना कि तुम्हारा क्या नाम है, तुम किस देश के रहने वाले हो तथा तुम्हारे यहाँ कौन राजा राज्य करता है?

टिप्पणी—(१) इस पद का छन्द 'गाथा' है। यह प्राकृत का सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय छन्द रहा है। चन्द ने इसका काफी प्रयोग किया है।

(१५)

गाथा—**उच्चरिय कीर सुनि बयनं, हिंदवान दिल्ली गढ़ अयनं।**
तहाँ यंद अवतार चहुवानं, तहँ प्रथिराज सूर सुभारं॥

शब्दार्थ—बयनं=वचन। हिंदवान=हिन्दुस्तान। अयनं=स्थान। यंद=इन्द्र। चहुवानं=चौहान वंश। सूर=शूर. वीर। सुभारं (पाठान्तर सुभानं)=श्रेष्ठ, भारी, बलवान। सुभानं=सूर्य के समान श्रेष्ठ।

व्याख्या—पदमावती के वचनों को सुनकर शुक कहने लगा कि हिन्दुस्तान में दिल्ली गढ़ नामक एक स्थान है। वहाँ चौहान वंश में देवराज इन्द्र ने

पृथ्वीराज के रूप में अवतार लिया है जो उत्कट वीर और बलशाली राजा है। अथवा जो वीर और सूर्य के समान प्रतापशाली है।

टिप्पणी—(१) अलंकार—छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास।

(१६)

पद्धरी—पदमावतिहि कुँवरी संघत्त, दुज कथा कहत सुनि सुनि सुवत्त।
हिंदवान थान उत्तम सुदेस, तहँ उदत द्रुग्ग दिल्ली सुदेस॥

(१७)

संभरि नरेस चहुआंन थानं, प्रथिराज तहाँ राजंत भानं।
बैसह बरीस षोडस नारिंदं, आजानु बाहु भुअलोक यंदं॥

(१८)

संभरि नरेस सोमेस पूत, देवंत रूप अवतार धूत।
सामंत सूर सब्बै अपार, भूजांन भीम जिम सार भार॥

(१९)

जिहि पकरि साह साहाब लीन, तिहुँ बेर करिल पानीप हीन।
सिगिनि सुसद्द गुन चढ़ि जंजीर, चुक्के न सबद बेधंत तीर॥

(२०)

बल बैन करन जिमि दाँन मान, सत सहस सील हरिचंद समान।
साहस सुक्रंम विक्रम जु वीर, दांनव सुमत्त अवतार धीर॥

(२१)

दस च्यार जानि सब कला भूप, कंद्रप्प जाँन अवतार रूप॥

शब्दार्थ—संघत्त=साथ, समीप। दुज=द्विज, पक्षी। सुवत्त=सुवृत्त, अच्छी कथा। थान=स्थान। उदत=उदित, प्रकट, प्रसिद्ध। द्रुग्ग=दुर्ग, गढ़। संभरि=शाकम्भरी, सांभर झील के आसपास का प्रदेश। प्राचीन काल में अजमेर और सांभर का बड़ा लम्बा-चौड़ा राज्य था। थान=स्थान, वंश। राजंत=शोभित। बैसह=वयस, अवस्था। षोडस=सोलह। बरीस=वर्ष। नरिंदं,=नरेन्द्र राजा। आजानु बाहु=घुटनों तक लम्बी भुजाओं वाला। यह सामुद्रिक शास्त्रानुसार श्रेष्ठता एवं महानता का लक्षण माना जाता है।

भुअलोक=भूलोक पृथ्वी । यद=इन्द्र । सोमेस=सोमेश्वर, पृथ्वीराज का पिता । पूत=पुत्र । देवंत=देवता के समान । धूत=वीर, पराक्रमी, धृत, धारण किया, लिया । सब्बै=सर्व, समस्त । भूजांन=भोक्ता, भुजाओं में । भीम=भीषण, भयानक, पांडवों में से एक, भीमसेन । जिमि=ज्यों, समान । सार=शक्ति लोहा । भार=भारी । जिहि=जिसने । साह=बादशाह । साहाब=शहाबुद्दीन गोरी । लीन=लिया । तिहुँ बेर=तीन बार । पानीप=पानी, प्रतिष्ठा, कान्ति । सिंगिनि=शिंजिनी, प्रत्यंचा, धनुष की डोरी । सुसद्द=सुशब्द, प्रचंड शब्द, टंकार । गुन=गुण, रस्सी, प्रत्यंचा । जंजीर=साँकल । चुक्के=चूकना । सबद=शब्द । बेधंत=भेद देता है । तीर=वाण । बल=राजा बलि । बैन=वचन । करन=राजा कर्ण । दाँनपान=दानपाणि, बहुत दान देने वाला । सत=शत, सौ । सहस=सहस्र, हजार । सत सहस=सौ हजार, एक लाख । सील=शील । हरिचन्द=दानी राजा हरिश्चन्द्र । सुक्रम=सुकर्म । विक्रम=विक्रमादित्य । जु=जो । सुमत्त=अत्यधिक उन्मत्त । धीर=धैर्यवान । दिस=दिशा । च्यार=चार । कला=तेज, प्रताप । कंद्रप्प=कंदर्प, कामदेव । दसच्यार=चौदह विद्याएँ ।

व्याख्या—इन पदों में शुक पद्मावती से दिल्ली नरेश पृथ्वीराज के रूप, गुण; चरित्र आदि का विस्तार के साथ उल्लेख करता है ।

वह पक्षी अर्थात् शुक—'सुनो ! सुनो !' कह कर पद्ममावती के समक्ष (पृथ्वीराज की) सुन्दर कथा का वर्णन करने लगा कि हिन्दुओं का उत्तम और सुन्दर देश हिन्दुस्तान है जहाँ दिल्ली नामक एक सुन्दर दुर्ग उदय हुआ है अर्थात् निर्मित किया गया है । चौहान वंशी शाकम्भरी (साँभर) नरेशों का वह केन्द्र स्थान अर्थात् राजधानी है । वहाँ राजा पृथ्वीराज सूर्य के समान शोभायमान हैं । अथवा सूर्य के समान अखंड राज्य करते हैं । उनकी अवस्था सोलह वर्ष की है वह नरों अर्थात् मानवों में इन्द्र के समान प्रतापशाली हैं । (यहाँ नरिंदं का अर्थ केवल 'राजा' भी माना जा सकता है क्योंकि अन्तिम पंक्ति में 'यंद' शब्द का पुनः प्रयोग हुआ है ।) वह आजानुबाहु हैं अर्थात् उनकी भुजाएँ घुटनों तक लम्बी हैं (जो उनके श्रेष्ठ पुरुष होने का प्रमाण है) । वह इस पृथ्वीलोक के इन्द्र के समान

हैं अर्थात् सर्व शक्तिशाली नरेश हैं। (मेनारिया ने 'यंद' का अर्थ 'इन्दु' अर्थात् चन्द्रमा मान कर यह अर्थ किया है कि—'वे इस पृथ्वी पर चन्द्रमा के समान हैं।' परन्तु यह अर्थ असंगत है क्योंकि पुरुष की उपमा कभी भी चन्द्रमा से नहीं दी जाती।) वह साँभर-नरेश सोमेश्वर के पुत्र हैं। उन्होंने देवताओं जैसा अद्भुत रूप धारण कर इस पृथ्वी पर अवतार लिया है। अथवा उन्होंने देवता के रूप में अवतार धारण किया है। उनके सारे सामन्त अत्यन्त बलवान और वीर हैं। उनकी भुजाओं में भीमसेन के समान अपार शक्ति है। अथवा उनकी भुजाएँ अत्यन्त भीषण और लोहे के समान दृढ़ हैं। अथवा वह पृथ्वी का भार भोगने के लिए भीम के समान वीर हैं। (इनमें से पहला अर्थ ही अधिक संगत है, इसलिए उसे ही स्वीकार करना चाहिए।

इसके उपरान्त कवि पृथ्वीराज के पराक्रम और शब्द वेधी वाण मारने की कला का वर्णन करता हुआ कहता है कि यह वही पृथ्वीराज हैं जिन्होंने तीन बार बादशाह शहाबुद्दीन गोरी को पकड़ कर प्रतिष्ठा हीन किया था। अर्थात् उसे तीन बार पराजित कर उसकी सारी प्रतिष्ठा धूल में मिला दी थी। उनके धनुष पर अथवा उनके सींग के धनुष पर लोहे की जंजीर की प्रत्यंचा चढ़ती है अर्थात् उनके धनुष की प्रत्यंचा लोहे की जंजीर की है। (लोहे की जंजीर की प्रत्यंचा महाबलशाली धनुर्धरों के धनुषों में ही लगाई जाती थी।) उस प्रत्यंचा की टङ्कार से भयानक शब्द उत्पन्न होता है। (धनुष से वाण छोड़े जाने पर प्रत्यंचा के धनुष से टकराने से झङ्कार सी उत्पन्न होती है। महाभारत में अर्जुन के गांडीव की टङ्कार को सुन कर ही योद्धा यह पता लगा लेते थे कि अर्जुन युद्ध में उतर आया है।) पृथ्वीराज अचूक शब्दवेधी वाण मारते हैं। इस पंक्ति का अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है कि संकेत-वाचक सिंगी (शृङ्गी) के शब्द को सुन कर वह अपने धनुष पर जंजीर की प्रत्यंचा चढ़ा कर अचूक शब्दवेधी वाण मारते हैं।

पृथ्वीराज वचन का पालन करने में राजा बलि के तथा दान देने में कर्ण के समान हैं। शील अर्थात् सदाचरण में वह लाखों हरिश्चन्द्र के समान हैं। (कुछ लोगों ने इसका अर्थ इस प्रकार भी किया है कि 'सत्य, साहस और शील में वह हरिश्चन्द्र के समान हैं।' परन्तु आगामी पंक्ति में 'साहस' का पुनः उल्लेख

हुआ है इसलिए यहाँ 'सहस' से 'साहस' का अभिप्राय नहीं ग्रहण किया जा सकता।) साहस तथा सुकर्म करने में वह राजा विक्रमादित्य के समान वीर हैं। उन्होंने मदमत्त दानवों का संहार करने के लिए अवतार धारण किया है। अथवा वह मदमत्त दानवों का संहार करने में अवतार (राम, कृष्णादि) के समान अमित धैर्यशाली हैं। (कुछ टीकाकारों ने इसका अर्थ इस प्रकार भी किया है—'वे दानव के समान मदमत्त हैं और धैर्य के तो मानो अवतार हैं।' तथा—'मदमत्त दैत्य की तरह वे वीर हैं और अवतार के समान उनमें धैर्य है। परन्तु हमारे यहाँ वीर पुरुष की उपमा कभी भी (प्राचीन काल में) दानव या दैत्य से नहीं दी गई। यह तो अंग्रेजी शैली की उपमा है जैसे—'Mighty like a giant', या Intellectual giant.' आदि। इसलिए हमने इसका उपर्युक्त अर्थ ही स्वीकार किया है।)

चारों दिशाओं में सब लोग ऐसे उस राजा पृथ्वीराज के तेज से परिचित हैं। रूप में अर्थात शारीरिक सौन्दर्य में वह कामदेव के समान सुन्दर प्रतीत होते हैं। (यहाँ प्रथम चरण में 'दिस' के स्थान 'दस' पाठ भी मिलता है। उसे स्वीकार कर लेने में इसका अर्थ इस प्रकार किया जायेगा कि वह दस+चार अर्थात् चौदह विद्याओं तथा सम्पूर्ण कलाओं में पारंगत हैं।

टिप्पणी—(१) अलंकार—उपर्युक्त सम्पूर्ण पदों में छेकानुप्रास तथा वृत्यनुप्रास अलङ्कार है।

पद संख्या (१६) में पुनरुक्ति, (१७) में वाचक लुप्तोपमा, (१८) में उपमा, अनुप्रास, (२०) में अनुप्रास, पूर्णोपमा; लुप्तोपमा, तथा (२१) में उत्प्रेक्षा।

(२२)

दूहा— **कामदेव अवतार हुआ, सुअे सोमेसर नंद।**
सहस-किरन झलहल कमल, रिति समीप बर बिंद॥

शब्दार्थ—हुअ=हुआ हो। सुअे=सुत, पुत्र। नंद=आनन्द देने वाला। सहस किरन=सहस्र किरण अर्थात् सूर्य। झलहल झलझलाने वाला, खिला हुआ या खिलना, प्रफुल्ल होना। रिति=रति, कामदेव की स्त्री का नाम। वर=श्रेष्ठ। बिन्द=(राजस्थानी-बींद) पति, दूल्हा, विद्यमान, शोभित।

व्याख्या—राजा सोमेश्वर को आनन्द देने वाला उसका पुत्र (पृथ्वीराज) मानो साक्षात कामदेव का अवतार हो। अर्थात् मानो कामदेव ने ही पृथ्वीराज के रूप में अवतार धारण किया हो। वह कमल को प्रफुल्लित करने वाले सूर्य के समान (अमित तेजस्वी) तथा रति के समीप शोभित कामदेव के समान सुन्दर है। भाव यह है कि वह तुम्हारे सम्पर्क से अत्यन्त प्रफुल्लित होगा। (कुछ व्याख्याकारों ने इसका अर्थ इस प्रकार भी किया है—'जैसे सूर्य के प्रकाश से कमल खिल उठता है वैसे ही रति के समीप श्रेष्ठ पति कामदेव के होने पर उसकी शोभा होगी।' यह अर्थ अस्पष्ट है। यह उक्ति शुक की है इसलिए इसके ऐसे अर्थ करना भ्रान्तिपूर्ण होगा।)

टिप्पणी—(१) छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास तथा पदमैत्री।

(२) इस पद में 'हुअ', 'सुअ' आदि प्राकृत के शब्दों का प्रयोग दृष्टव्य है।

(२३)

दूहा—सुनत स्रवन प्रथिराज जस, उमग बाल विधि अंग।
तन मन चित चहुँवान पर, बस्यौ सु-रत्तह रंग॥

शब्दार्थ—स्रवन=कानों द्वारा। जस=यश, कीर्ति। उमग=उमंगित हुए, खिल उठे। बाल=बाला, पद्मावती। बिधि=भली प्रकार, विविध। सुरत्तह= सुरति, प्रेम। रंग=प्रेम अथवा रंग में रंग कर।

व्याख्या—जब पद्मावती ने अपने कानों द्वारा पृथ्वीराज की इस कीर्ति का वर्णन सुना तो वह अपने प्रत्येक अङ्ग में प्रेम से विद्ध होकर प्रफुल्लित हो उठी अर्थात् उसके सारे अङ्ग प्रेम के प्रभाव से उमंगित हो उठे। भाव यह है कि उसका सारा शरीर रोमांचित हो उठा। उसका तन, मन और चित्त प्रेम के रंग में रंग कर चौहान वंशी पृथ्वीराज के वश में हो गया अर्थात् वह तन-मन और हृदय से पृथ्वीराज के प्रति पूर्णरूपेण अनुरक्त हो उठी।

टिप्पणी—(१) इस पद में सात्विक-अनुभाव के अन्तर्गत रोमांच का सुन्दर उदाहरण दृष्टव्य है।

(२) इसमें नायिका का नायक के गुणों को सुन पूर्वराग के वशीभूत होना दिखाया गया है। ऐसी प्रेमकथाओं में इसी प्रकार पूर्वराग का उत्पन्न होना

...या जाता रहा है। 'पद्मावत' में रत्नसेन हीरामन शुक द्वारा इसी प्रकार पद्मावती के प्रति अनुरक्त होता है। इसे 'पूर्वराग' की स्थिति माना जाता है।

(२४)

दूहा-- बैस बिती ससित्ता, आगम कियौ बसंत।
मात पिता चिंता भई, सोधि जुगति कौ कंत॥

शब्दार्थ—बैस=वयस, अवस्था। बिती=व्यतीत हुई। ससिता=शिशुता, बाल्यावस्था। आगम=आगमन। बसन्त=यौवन रूपी बसन्त। सोधि=शोधना, खोजना। जुगति=युक्ति। कौ=का। कत=वर, पति।

व्याख्या—पद्मावती के सयानी होने पर माता-पिता द्वारा उसके विवाह की चिन्ता करने का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि—

पद्मावती की बाल्यावस्था पूरी तरह से समाप्त हो गई और उसके जीवन में यौवन रूपी वसन्त का आगमन हुआ। यह देखकर उसके माता-पिता को इस बात की चिन्ता हुई कि अब इसके लिए उपयुक्त वर को खोजने का प्रबन्ध करना चाहिए।

टिप्पणी—(१) **अलंकार**—रूपकातिशयोक्ति।

(२५)

कवित्त— सोधि जुगति कौ कंत, कियौ तब चित्त चहौं दिस।
लयौ विप्र गुरु बोल, कहीं समुझाय बात तस॥
नर नरिंद नरपती, बड़े गढ़ द्रुग्ग असेसह।
सीलवन्त कुल सुद्ध, देहु कन्या सुनरेसह॥
तब चलन देहु दुज्जह लगन, सगुन बन्द हिय अप्प तन।
आनन्द उछाह समुदह सिषर, बजत नद्द नीसाँन घन॥

शब्दार्थ—बोल=बुलाया। तस=इस प्रकार। नरपति=राजा। द्रुग्ग=दुर्ग। असेसह=असंख्य। कुल सुद्ध=शुद्ध कुल, कुलीन वंश। सुनरेसह=श्रेष्ठ राजा की। चलन=रस्म, रीति, रस्म की सामग्री। लगन=लग्न। दुज्जह=द्विज को, ब्राह्मण को। सगुन=तिलक, टीका। बंद=बन्दन, रोली। अप्प तन=अपने हाथ

से, स्वयं। समुदह सिषर=समुद्र शिखर में। नद्द=नाद, घोष। नीसाँन=नगाड़े। घन=प्रचंड, घोर।

व्याख्या=पद्मावती के पिता राजा विजयपाल ने पद्मावती के लिए उपयुक्त वर की तलाश में अपने मन को चारों ओर दौड़ाया। अर्थात् यह सोचा कि पद्मावती के लिए कौन सा राजा उपयुक्त वर हो सकता है। (फिर किसी निश्चय पर न पहुँच सकने पर) उसने अपने कुलगुरु ब्राह्मण को बुलवाया और उससे इस प्रकार सारी बात समझा कर कही कि इस संसार में अनेक मनुष्य, नरेन्द्र और नरश्रेष्ठ राजा तथा असंख्य बड़े-बड़े विशाल गढ़ और दुर्ग हैं। तुम इनमें से खोज कर जिसे शुद्ध कुलीन वंश का शीलवान श्रेष्ठ राजा समझो उसे इस कन्या को दे दो। अर्थात् उसके साथ पद्मावती की सगाई पक्की कर आओ। यह समझा कर राजा ने स्वयं अपने हाथ से उस ब्राह्मण को लग्न और टीके की सारी सामग्री—रोली आदि देकर उसे प्रस्थान करने की आज्ञा दी। समाचार को सुन कर समुद्रशिखर नगर आनन्द एवं उत्साह से आलोड़ित हो उठा और वहाँ प्रचंड स्वर के साथ नगाड़े बजने लगे।

टिप्पणी—(१) तृतीय पंक्ति में 'नरपती' के स्थान पर 'गढ़पती' पाठान्तर मि लता है। 'नरिंद' के उपरान्त 'नरपती' शब्द में पुनरावृत्ति दोष है क्योंकि दोनों शब्दों का अर्थ एक ही है—राजा। इसलिए इस स्थान पर 'गढ़पती' पाठ संगत और शुद्ध माना जा सकता है। इससे अर्थ में कोई अन्तर नहीं आता।

(२६)

दूहा— सवालष्ष उत्तर सयल, कमऊँ गढ़ दूरंग।
राजत राज कुमोदमनि, हय गय द्रिब्ब अभंग॥

शब्दार्थ—सवालष्ष=शिवालिक श्रेणी, सपादलक्ष। साँभर और अजमेर का प्राचीन राज्य, सवालाख। सयल=शैल, पर्वत। कमऊँ=कुमायूँ। दूरंग=दूरवर्ती, दुर्गम। राजत=शोभित, राज्य करता है। कुमोदमनि=कुमोदमणि, कुमाऊँ के राजा का नाम। दिब्ब=द्रव्य, धन-सम्पत्ति। अभंग=असंख्य; अटूट।

व्याख्या—प्रथम पंक्ति के प्रथम चरण के तीन अर्थ किए जा सकते हैं। १—उत्तर में शिवालिक पर्वत श्रेणी में स्थित दूरवर्ती कुमाऊँ नामक एक गढ़ है। २—सपादलक्ष (साँभर और अजमेर का प्राचीन राज्य) के उत्तर में पर्वतों में स्थित कुमाऊँ नाम का एक दुर्गम दुर्ग है। ३—उत्तर दिशा में स्थित सवा-लाख अर्थात् असंख्य पर्वतों में कुमाऊँ नामक एक दूरवर्ती दुर्ग है। (इन तीनों अर्थों में से प्रथम अर्थ ही अधिक संगत प्रतीत होता है। वहाँ राजा कुमोदमणि राज्य करता है अथवा सुशोभित है। उसके पास असंख्य हाथी, घोड़े तथा अटूट सम्पत्ति है।

टिप्पणी—(१) हिमालय के चरणों में स्थित पर्वत श्रेणी शिवालिक के नाम से प्रसिद्ध है।

(२७)

दूहा—नारिकेल फल परठि दुज, चौक पूरि मनि-मुत्ति।
दई जु कन्या बचन वर, अति अनंद करि जुत्ति॥

शब्दार्थ—नारिकेल = नारियल। परठि = स्थापित किया। दुज = द्विज, ब्राह्मण। मनि-मुत्ति = मणि-मुक्ता। जुत्ति = युक्ति, विधि पूर्वक।

व्याख्या—समुद्रशिखर पहुँच कर राजा विजयपाल के ब्राह्मण ने मणि और मोतियों से चौक पूर उसके मध्य नारियल का फल स्थापित किया और सबके हृदय में आनन्द की सृष्टि करते हुए विधि पूर्वक कन्या का वाग्दान कर दिया अर्थात् राजा कुमोदमणि के साथ पद्मावती की सगाई पक्की कर दी।

टिप्पणी—(१) 'परठि' का अर्थ कुछ लोगों ने 'देकर' माना है। इसके अनुसार अर्थ होगा—ब्राह्मण ने मणि-मुक्ता से चौक पूर कर शकुन का नारियल कुमोदमणि को अर्पित किया।

(२) 'बचन वर' का यह अर्थ भी हो सकता है—श्रेष्ठ वचनों द्वारा अर्थात् पवित्र श्लोकों का उच्चारण करते हुए।

(२८)

भुजंगी—विहिसित वरं लगन लिन्नौ नरिंदं ।
बजी द्वार द्वारं सु आनन्द दुंदं ।
गढ़नं गढ़ं पत्ति सब बोल नुंत्ते ।
आइयं भूप सब कट्टुम्ब सुजत्ते ।

शब्दार्थ—विहिसित=मधुर हास्य के साथ । लिन्नौ=लिया । दुन्दं=दुन्दुभि, नगाड़े । नुंत्ते=न्यौता दिया, निमंत्रित किया । गढ़पत्ति=गढ़पति, राजा । आइयं=आए, पधारे । कट्टुवं=कुटुम्ब, परिवार । सजुत्ते=साथ अर्थात् सपरिवार ।

व्याख्या—वर अर्थात् राजा (कुमोदमणि) ने मधुर हास्य के साथ लग्न को स्वीकार कर लिया । यह देख कर सारे नगर में द्वार-द्वार पर आनन्द की दुन्दुभियाँ बजने लगीं । राजा कुमोदमणि ने सारे दुर्गों के दुर्गपति राजाओं को निमंत्रित किया । सारे राजा सपरिवार वहाँ पधारे ।

टिप्पणी—(१) अलङ्कार—छेकानुप्रास, पुनरुक्ति ।

(२) इस पद में संस्कृत की शैली का अनुकरण द्रष्टव्य है ।

(३) इस पद का छन्द 'भुजंगी' है जिसमें १२ वर्ण तथा ४ यगण होते हैं । रासो में प्रयुक्त यह छन्द वस्तुतः 'भुजंगी' न होकर 'भुजंग प्रयात' छन्द है। इसमें वर्णों का मनमाना प्रयोग हुआ है ।

(२९)

भुजंगी—चले दस सहस्सं असब्बार जानं
पूरियं पैदलं तेतीसु थानं ।
मत्त मद गलित सै पच्च दंती ।
मनो साँम पाहार बुगपंति पंती ।

शब्दार्थ—असब्बार=घुड़सवार । जानं=बारात (राजस्थानी शब्द), यान, रथ, अनुभवी । पूरियं=पूर्ण हो गए, भर गए । थानं=स्थान, मंडल, डेरे, पड़ाव । मत्त मद गलित=जिनके मस्तक से मद झर रहा था ऐसे मदोन्मत्त

हाथी । सै पंच=पांच सौ । दन्ती=हाथी । सांम=श्याम, काले । पाहार=पहाड़, पर्वत । बुगपंति=बगुलों की पंक्ति । पन्ती=पंक्ति ।

व्याख्या—कवि राजा कुमोदमणि के साथ चली विशाल बरात का वर्णन करता हुआ कहता है कि—राजा की बारात में दस हजार अनुभवी घुड़सवार, इतने पैदल जिनसे तेतीस पड़ाव भर गए अथवा राज्य के तेतीस मंडलों के आए सारे पैदल सैनिक तथा ऐसे पांच सौ विशाल हाथी चले जिनके गंड स्थल से मद टपक रहा था । इन हाथियों के सफेद दाँत ऐसे शोभा दे रहे थे मानो काले पर्वतों पर बगुलों की पंक्तियाँ पंक्ति बाँधे बैठी हुई हों । यदि 'पाहार' का अर्थ पयोधर अर्थात् बादल माना जाय तो इसका अर्थ होगा—मानो काले बादल में सफेद बगुलों की अनेक पंक्तियाँ सुशोभित हों । यह अर्थ अधिक संगत प्रतीत होता है क्योंकि संस्कृत काव्य में प्रायः काले बादलों के बीच उड़ती हुई सफेद बक्-पंक्ति का उल्लेख मिलता है ।)

टिप्पणी—(१) अलंकार—छेकानुप्रास, उत्प्रेक्षा ।

(२) 'जानं' शब्द का अर्थ 'अनुभवी' अधिक संगत प्रतीत होता है । 'यान', 'रथ' आदि अर्थ यहाँ संख्याहीन होने के कारण उचित नहीं प्रतीत होता ।'

(३०)

भुजंगी—चले अग्गि तेजी जु तत्ते तुषारं ।
चौवरं चौरासी जू साकत्ति भारं ।
कंठं नगं नूपं अनोपं सुलालं ।
रंग पंच रंगं ढलकंत ढालं ।

शब्दार्थ—अग्गि=अग्नि, आगे । तेजी=वेग के साथ । तत्ते=तप्त, तीव्र, तेज । तुषारं=तुषार देश के तुखारी घोड़े जो अपनी तीव्र गति के लिए प्रसिद्ध थे । चौवरं=घुंघरू चमर या चौलड़ी । चौरासी=घोड़े के पैरों का एक आभूषण । साकत्ति=शक्ति, तलवार । भारं=बोझ, भारी । नूपं=अनूप । अनोपं=अनुपम । सुलालं=लाल, एक रत्न । रंग=रंगी हुई । ढलकंत=हिलती हुई । ढालं=ढाल ।

व्याख्या—कवि राजा कुमोदमणि की बरात के चलने वाले घोड़ों का वर्णन करता हुआ कहता है कि तुषार देश के तीव्रगामी तुखारी घोड़े अत्यन्त तीव्रगति

से बरात के आगे-आगे चले। इन घोड़ों की गर्दनों में घुँघरू बँधे हुए थे तथा पैरों में चौरासी नामक आभूषण थे। ये घोड़े अत्यन्त शक्तिशाली अर्थात् तीव्र-गति वाले थे। इनके गले में अत्यन्त सुन्दर अनुपम रत्न और लालों से जटित कंठियाँ पड़ी हुईं थीं। और इनकी पीठ पर पड़ी पाँच रंगों से चित्रित ढालें इनके चलने से हिलती जा रही थीं।

टिप्पणी—(१) प्रथम पंक्ति का अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है—अग्नि के समान तेजस्वी तुखार जाति के घोड़े तीव्र गति से आगे बढ़े। उनके ऊपर चँवर, पैरों में घुँघरू थे। ऐसे वे घोड़े अत्यन्त शक्ति-शाली थे।

(३१)

भुजंगी—पंच सुर सावद्द बाजित्र बाजं।
सहस सहनाय म्रिग मोहि राजं।
समुद सिर सिषर उच्छाह छाहं।
रचित मण्डपं तोरन श्रीयगाहं।

शब्दार्थ—पंच सुर=पाँच प्रकार के बाजे—तंत्री, ताल, नगाड़ा, झाँझ और तुरही। ये पंच मंगल-वाद्य माने जाते हैं। बाजित्र=बज रहे हैं। बाज=बाजे, वाद्य यंत्र। सहस=सहस्रों, हजारों। सहनाय=शहनाई, नफीरी। राज=राजित, सुशोभित। सिर=ऊपर। छाहं=छाया, छा रहा था। तोरन=वन्दनवार। श्रीयगाहं=अगाध श्री, अनुपम सौन्दर्य।

व्याख्या—चारों ओर पंच-वाद्य—तन्त्री, ताल, नगाड़ा, झाँझ, तुरही—बज रहे थे और उनका मधुर स्वर व्याप्त हो रहा था। मृगों को मोहित करने वाली सहस्रों शहनाइयों का स्वर चारों ओर गूँज रहा था। सम्पूर्ण समुद्र-शिखर पर आनन्द का वातावरण छाया हुआ था। चारों ओर अगाध शोभा वाले मण्डप और बन्दनवार लगाए गए थे।

टिप्पणी—(१) **अलंकार**—छेकानुप्रास और वृत्यनुप्रास।

(३२)

भुजंगी—पदमावती बिलषि बर बाल बेली ।
कही कीर सों बात तब हो अकेली ।
झटं जाहु तुम कीर दिल्ली सुदेसं ।
बरं चहुवानं जु आनौ नरेसं ।

शब्दार्थ—बिलषि—बिलखकर, व्याकुल होकर। वर=श्रेष्ठ, सुन्दर। बाल=नवीन। बेली=लता, बेल। झटं=तुरन्त। अनौ=लाओ।

व्याख्या—अपने विवाह का समाचार सुन नवीन सुन्दर कोमल लता के समान पद्मावती ने व्याकुल हो, शुक को एकान्त में बुला यह बात कही कि तुम तुरन्त सुन्दर देश दिल्ली को जाओ और मेरे मनचाहे वर चौहान-नरेश पृथ्वीराज को यहाँ बुला लाओ। इसका दूसरा अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है कि—यदि तुम चौहान नरेश को यहाँ ले आओ तो मैं उन्हें ही अपना वर (पति) बनाऊँगी।

टिप्पणी—(१) **अलंकार**—वाचक धर्म लुप्तोपमा, अनुप्रास, छेकानुप्रास।

(३३)

दूहा—आँनो तुम चहुवान वर, अरु कहि इहै सँदेस ।
साँस सरीरहि जौ रहै, प्रिय प्रथिराज नरेस ।।

शब्दार्थ—अरु=और। कहि=कहना। इहै=यह। जौ=जब तक।

व्याख्या—पद्मावती ने शुक से कहा कि तुम मेरे मनचाहे वर चौहान-नरेश पृथ्वीराज को यहाँ ले आओ और उनसे मेरा यह सन्देश कह देना कि जब तक मेरे इस शरीर में साँस रहेगी अर्थात् जब तक मैं जीवित रहूँगी तब तक राजा पृथ्वीराज ही मेरे एकमात्र प्रिय बने रहेंगे। भाव यह है कि मैं जीवित रहते पृथ्वीराज के अतिरिक्त अन्य किसी को भी अपना वर नहीं स्वीकार करूँगी।

(३४)

कवित्त—प्रिय प्रथिराज नरेस, जोग लिषि कग्गर दिन्नौ ।
लगुन बरग रचि सरब, दिन द्वादस ससि लिन्नौ ।।

सै अरु ग्यारह तीस, साष संवत परमानह।
जोवित्री कुल सुद्ध, वरन वर रष्षहु प्रानह।।
दिष्षंत दिप्ट उच्चरिय वर, इक पलक बिलंब न करिय
अलगार रयन दिन पंच महि, ज्यों रुकमिनि कन्हर वरिय।।

शब्दार्थ—जोग=योग्य, यथायोग्य, सेवा में। कग्गर=कागज, पत्र। दिन्नौ=दिया। लगुन=लग्न। वरग=कुंडली। सरव=सब, सभी। द्वादस ससि=शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि। सै अरु ग्यारह तीस=ग्यारह सौ तीस, ११३०। साष=शक संवत। परमानह=प्रमाणित, अवधि, वैशाख मास। जोवित्री (पाठान्तर—जोषित्री, जोपित्री, जोवित्री)। जोवित्री कुल सुद्ध=यदि मैं पवित्र कुल की स्त्री हूँ। जोषित्री कुल सुद्ध=ज्योतिषियों के समूह अर्थात् अनेक ज्योतिषियों द्वारा शोधे हुए समय में। (मेनारिया ने जो+षित्री अन्वय कर 'षित्री' का अर्थ क्षत्रिय माना है। इसके अनुसार अर्थ हुआ यदि मैं शुद्ध क्षत्रिय कुल की होऊँ।) जो पित्री कुल सुद्ध=जो पितृकुल से मैं शुद्ध होऊँ अर्थात् मेरा पितृ कुल शुद्ध क्षत्रिय वंश का हो। वरनि=वरण करने योग्य, वरणीया, दुल्हन। वर=वरण करके। रष्षहु=रखो या रक्षा करो। प्रानह=प्राणों को। दिष्षंत=देखते ही। उच्चरिय (पाठान्तर-वह घरिय)=उठ कर चल दीजिए। पलक=पल, क्षण भर भी। अलगार=अलग ही अलग, गुप्त रूप से। रयन=रैन, रात्रि। महि=में। रुकमिनि=रुक्मिणी, कृष्ण की पटरानी। कन्हर=कृष्ण। वरिय=वरण किया।

व्याख्या—पद्मावती ने पृथ्वीराज के लिए पत्र लिखा जिसमें उसने अपने विवाह की लग्न, समय आदि का उल्लेख करते हुए उसे तुरन्त चले आने की सूचना दी। कवि इसी पत्र का वर्णन करता हुआ कह रहा है कि—

पद्मावती ने अपने प्रिय पृथ्वीराज नरेश को यथायोग्य लिख कर पत्र लिखा और उसे शुक को दे दिया। उसने उस पत्र में अपनी सम्पूर्ण लग्न कुण्डली बनाई अर्थात् यह लिखा कि उसका विवाह किस दिन होने जा रहा है। उसने लिखा कि शक संवत् ११३० के वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी को उसका विवाह होना निश्चित हुआ है। इसका दूसरा अर्थ यह भी हो सकता

है कि उसने अपनी सम्पूर्ण लग्न कुण्डली बना कर पत्र में लिख दी जिससे पृथ्वीराज को उसके कुल आदि का पूर्ण ज्ञान हो जाय। यह लिख कर उसने पुनः आगे लिखा कि यदि तुम मुझे शुद्ध कुल की स्त्री समझो अर्थात् अपने योग्य समझो तो मुझ वरणीया का वरण करके मेरे प्राणों की रक्षा करो। इसका दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि यदि तुम शुद्ध क्षत्रिय कुल के हो अर्थात् यदि सच्चे क्षत्रिय हो तो मेरा वरण करके मेरे प्राणों की रक्षा करो। हे श्रेष्ठ ! तुम इस पत्र को अपनी दृष्टि से देखते ही तुरन्त उठकर चल दो, प्रस्थान करो, एक क्षण का भी विलम्ब मत करना। जिस प्रकार कृष्ण ने विदर्भराज भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी का वरण किया था उसी प्रकार तुम पाँच दिन-रात में गुप्त रूप से यहाँ आकर मेरा वरण करो।

टिप्पणी—(१) **अलंकार**—छेकानुप्रास, दृष्टान्त।

(२) 'परमानह' का अर्थ "वैशाख' ही शुद्ध और संगत प्रतीत होता है क्योंकि पत्र में जब तिथि और संवत् का उल्लेख हुआ है तो मास का भी होना चाहिए।

(३) कृष्ण-रुक्मिणी की अन्तर्कथा इस प्रकार है—

रुक्मिणी विदर्भ देश के कुंडिनपुर के राजा भीष्मक की पुत्री थी। इसका बड़ा भाई रुक्म श्रीकृष्ण का द्वेषी था। वह रुक्मिणी का विवाह चेदिदेश के राजा शिशुपाल से करना चाहता था। परन्तु रुक्मिणी कृष्ण को वरना चाहती थी। इसलिए उसने ब्राह्मण द्वारा कृष्ण को इसकी सूचना भिजवा दी। शिशु-पाल और कृष्ण एक साथ कुंडिनपुर पहुँचे। वहाँ गौरीपूजन के लिए आई हुई रुक्मिणी का कृष्ण ने हरण किया और उसे लेकर चल दिए। शत्रुओं द्वारा पीछा किए जाने पर भयंकर युद्ध हुआ जिसमें श्रीकृष्ण विजयी हुए और द्वारिका पहुँच कर उन्होंने विधिवत रुक्मिणी के साथ विवाह कर लिया। रुक्मिणी श्रीकृष्ण की पटरानी बनी।

(४) इस पद में अनेक पाठ भेद हैं परन्तु उनसे मूल अर्थ में किसी प्रकार का विशेष अन्तर नहीं आता।

(३५)

दूहा—ज्यों रुकमनि कन्हर वरिय, ज्यों वरि संभर कांत।
सिव मंडप पच्छिम दिसा, पूजि समय सप्रांत॥

शब्दार्थ—ज्यों = जिस प्रकार। ज्यों = उसी प्रकार। संभर कांत = सांभर नरेश। पूजि समय = पूजा के समय। सप्रांत = सुन्दर प्रातःकाल।

व्याख्या—पद्मावती ने आगे अपने पत्र में लिखा कि—हे साँभर नरेश। जिस प्रकार कृष्ण ने (गौरी पूजन के अवसर पर) रुक्मिणी का वरण किया था उसी प्रकार तुम भी (नगर की) पश्चिम दिशा में स्थित शिवमंदिर से सुहावने प्रातःकाल में उस समय मेरा वरण करना जब मैं वहाँ पूजा करने के लिए जाऊँगी।

टिप्पणी—(१) **अलंकार**—छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास और दृष्टान्त।

(३६)

दूहा—लै पत्री सुक यों चल्यौ, उड्यौ गगनि गहि बाव।
जहँ दिल्ली प्रथिराज नर, अट्ठ जाम में जाव॥

शब्दार्थ—गगनि = गगन, आकाश। बाव = वायु। अट्ठजाम = अष्टयाम, आठ प्रहर, एक दिन रात। गहिवात्र = हवा का रुख पकड़ कर।

व्याख्या—वह शुक पद्मावती के पत्र को लेकर इस प्रकार चल दिया। वह उड़ कर ऊपर आकाश में उठा और हवा का रुख पकड़ कर उड़ने लगा। अथवा वह आकाश में उठ कर वायुगति से उड़ने लगा। (यहाँ शुक की तीव्र-गति अभिप्रेत है।) इस प्रकार उड़ता हुआ वह आठ प्रहर अर्थात् एक दिन-रात में दिल्ली जा पहुँचा जहाँ नरश्रेष्ठ पृथ्वीराज थे।

(३७)

दूहा—दिय कग्गर नृपराज कर, षुलि बँचिय प्रथिराज।
सुक देखत मन में हँसे, कियौ चलन कौ साज॥

शब्दार्थ—नृपराज = राजाधिराज। कर = हाथ में। षुलि = खोलकर। बंचिय = बाँचा, पढ़ा। साज = तैयारी।

व्याख्या—शुक ने जाकर उस पत्र को राजाधिराज पृथ्वीराज के हाथ में दे दिया और उन्होंने खोल कर उसे पढ़ा। पृथ्वीराज शुक को देख कर मन में हँसे और चलने की तैयारी करने लगे।

(३८)

कवित्त—उहै घरी उहि पलनि, उहै दिनावेर उहै सजि।
सकल सूर सामंत, लिए सब बोलि बंब बजि॥
अरु कवि चंद अनूप, रूप सरसै बर कह बहु।
और सैन सब पच्छ, सहस सेना तिय सष्षहु॥
चामंडराय दिल्ली धरह, गढ़पति करि गढ़ भारे दिय।
अलगार राज प्रथिराज तब, पूरब दिस तब गमन किय॥

शब्दार्थ—उहै=उसी। बेर=वेला, समय। सजि=तैयार होकर। बंव=नगाड़ा, भेरी, बिगुल जैसा सींग का बाजा। चंद=चन्द वरदाई। सरसै=शोभा देना। बर=वर, पृथ्वीराज। पच्छ=पीछे। सष्षहु (पाठान्तर-सथ्थहु) संख्या में, साथ में। चामंडराय=चामुण्डराय नामक पृथ्वीराज का एक सेनापति और दुर्द्धर्ष योद्धा। धरह=धरा, प्रदेश, रखा। अलगार=गुप्त रूप से, अलग ही अलग।

व्याख्या—राजा पृथ्वीराज ने उसी घड़ी, उसी पल, उसी दिन तथा उसी समय तैयार होकर भेरी बजा कर अपने सारे वीर योद्धाओं एवं सामन्तों को बुला लिया। उसने अद्वितीय (अनुपम) कवि चन्द वरदाई को भी अपने साथ ले लिया जिसने वर अर्थात् पृथ्वीराज के रूप का अनेक प्रकार से सरस वर्णन किया। अथवा जिसका सुन्दर रूप पृथ्वीराज के रूप से बहुत-कुछ मिलता-जुलता हुआ था। अथवा उस समय वर पृथ्वीराज का रूप अत्यधिक शोभित हो रहा था। पृथ्वीराज ने तीन हजार सेना को अपने साथ रखा और शेष सारी सेना पीछे रही। इसका यह अर्थ भी लिया जा सकता है कि पृथ्वीराज ने तीन हजार सेना तो अपने साथ ले ली और शेष सारी सेना को पीछे दिल्ली में ही छोड़ दिया। (यहाँ 'सष्षहु' के स्थान पर 'सथ्थहु' पाठ अधिक शुद्ध प्रतीत होता योंकि 'सष्षहु' का अर्थ 'संख्या' मानने से अर्थ में कोई आकर्षण या संगतता

नहीं उत्पन्न होती ।) उसने अपने सेनापति चामुण्ड राय को दिल्ली-प्रदेश का शासक नियुक्त कर, उसे दिल्ली गढ़ का गढ़पति घोषित किया और गढ़ की रक्षा का सारा भार उसे सौंप दिया। इतना प्रबन्ध कर पृथ्वीराज ने गुप्त रूप से पूर्व दिशा की ओर गमन किया।

टिप्पणी—(१) अलंकार—अनुप्रास, छेकानुप्रास, श्रुत्यनुप्रास, वृत्यनुप्रास।

(२) लोक प्रसिद्धि है कि चन्दवरदाई रूप और सौन्दर्य में बिल्कुल पृथ्वीराज के ही अनुरूप था।

(३) अन्तिम पंक्ति में 'तब' शब्द की पुनरावृत्ति निरर्थक प्रतीत होती है। द्वितीय 'तब' के स्थान पर 'तन' पाठान्तर भी मिलता है, जिसका अर्थ है—ओर, तरफ। इस पाठ को स्वीकार कर लेने से अर्थ की संगति बैठ जाती है। अतः इसे ही स्वीकार कर लेना समीचीन प्रतीत होता है।

(३६)

दूहा—जा दिन सिषर बरात गय, ता दिन गय प्रथिराज।
ताही दिन पतिसाह कौं, भइ गज्जनै अवाज।

शब्दार्थ—जा दिन=जिस दिन। सिषर=समुद्रशिखर। गय=गई, गया ताही=उसी। पतिशाह=बादशाह शहाबुद्दीन गोरी। गज्जनै=गजनी में। अवाज=आवाज, सूचना, खबर।

व्याख्या—जिस दिन राजा कुमोदमणि की बारात समुद्रशिखर गई उसी दिन पृथ्वीराज भी वहाँ पहुँच गए और उसी दिन गजनी में वहाँ के बादशाह शहाबुद्दीन गोरी को पृथ्वीराज के वहाँ पहुँचने की सूचना मिली।

टिप्पणी—(१) गजनी अफगानिस्तान के वर्तमान घिलजाई प्रान्त में गजनी नदी के किनारे काबुल से कंधार जाने वाले मार्ग पर स्थित है। प्राचीन काल में यह महमूद गजनवी तथा शहाबुद्दीन गोरी जैसे इतिहास-प्रसिद्ध बाद-

शाहों की राजधानी रहा था। आजकल यह अफ़गानिस्तान के अमीर के अधिकार में है।

(४०)

कवित्त—सुनि गज्जनै अवाज, चल्यौ साहाबदीन बर।
षुरासांन सुलतान, कास काबिलिय मीर धर।
जंग जुरन जालिम जुझार, भुजसार भार भुग्र।
धर धमंकि भजि सेस, गगन रवि लुप्पि रैन हुग्र।।
उलटि प्रवाह मनौं सिंधु सर, रुक्कि राह अड्डौ रहिय।
तिहि घरी राज प्रथिराज सों, चंद बचन इहि विधि कहिय।।

शब्दार्थ—बर=श्रेष्ठ। षुरासांन=खुरासान देश। कास=खस, एक प्राचीन देश का नाम। काबिलिय=काबुल निवासी पठान। मीर=नायक, सेनापति, सैयद। धर (पाठान्तर-धुर)=अग्रणी, पक्का, दृढ़, सच्चा। जुरन=भिड़ना, लड़ना। जालिम=क्रूर। जुझार=योद्धा, लड़के वाले। भुअ=भू, पृथ्वी। सार=लोहा। धर=पृथ्वी, धरा। धमंकि=धमक उठना, डगमगाना। भजि=भागना। सेस=शेषनाग। लुप्पि=लुप्त हो जाना, छिप जाना। हुअ=हो गई। सर=नदी। सिन्धु=समुद्र। रुक्कि=रोककर। राह=मार्ग, रास्ता। अड्डौ रहिय=अड़कर जम गया।

व्याख्या—जब श्रेष्ठ बादशाह शहाबुद्दीन गोरी ने गजनी में पृथ्वीराज की यात्रा का समाचार सुना तो उसने तुरन्त चढ़ाई कर दी। उसकी सेना में खुरासान के सुलतान, खस और काबुल के सच्चे मीर (सरदार) आदि थे। ये सारे योद्धा युद्ध में भयंकर, क्रूर और प्रचंड रूप धारण कर लेते थे अर्थात् भयंकर लड़ाकू थे। उनकी भुजाएँ इस पृथ्वी पर लोहे के समान कठोर, दृढ़ और शक्तिशाली मानी जाती थीं। जब शहाबुद्दीन की ऐसी विशाल सेना ने प्रयाण किया तो उसके चलने की धमक से पृथ्वी डगमगाने लगी, उस भार को झेलने में असमर्थ हो शेषनाग भाग खड़ा हुआ। उस सेना के चलने से उठी धूल के कारण सूर्य छिप गया और संसार में रात्रि का सा अन्धकार छा गया।

वह सेना इतनी विशाल थी और इस प्रकार पृथ्वीराज के लौटने के मार्ग को रोक अड़ कर खड़ी हो गई थी कि उसे देख कर ऐसा प्रतीत होता था मानो समुद्र और नदियों का प्रवाह उलट कर ऊपर की ओर बढ़ने लगा हो। भाव यह है कि बादशाह की सेना पृथ्वीराज के मार्ग में इस प्रकार अड़ गई मानो समुद्र नें नदियों के प्रवाह को रोक दिया हो और नदियों की धारा उल्टी बह कर चारों ओर फैल गई हो। यहां सेना की विशालता से अभिप्राय है।

इस समाचार को सुनकर उसी क्षण चन्दवरदाई ने पृथ्वीराज से इस प्रकार वचन कहे।

टिप्पणी—(१) **अलङ्कार**—अनुप्रास, छेकानुप्रास, उत्प्रेक्षा।

(२) यहाँ यह तथ्य दृष्टव्य है कि शहाबुद्दीन गोरी पृथ्वीराज के लौटने के मार्ग को रोक कर जम गया था, न कि उसने जाते हुए पृथ्वीराज के मार्ग को रोका था।

कवित्त—निकट नगर जब जाँन, जाय वर बिंद उभय भय।
समुद सिषर घन नद्द, इंद दुहुँ घोर गय॥
अगिवानिय अगिवान, कुँअर बनि बनि हय सज्जति।
दिष्षन को त्रिय सबनि, चढ़ि गौष छाजन रज्जति॥
विलषि अवास कूँवरि बदन, मनो रौह छाया सुरत।
झंषति गवष्षि पल पल पलकि, दिषति पंथ दिल्ली सुपति॥

शब्दार्थ—जाँन=बरात। बर=श्रेष्ठ। बिंद=दूल्हा, वर, विद्यमान। उभय=दोनों। भय=हुए। घन नद्द=घोर निनाद। इन्द=राजा। पाठान्तर दुंद=दुन्दुभि, नगाड़े। गय=गति, ढंग। घोर गय=घोड़े और हाथी। अगिवानिय=अगवानी, स्वागत। अगिवान=स्वागत करने वाला। बनि बनि=बनठन कर, सजकर। हय=घोड़े। सज्जति=सजाकर। दिष्षन को=देखने के लिए। त्रिय=त्रिया, स्त्रियां। गौष=गौरव, गवाक्ष। छाजन=छज्जा। रज्जत=शोभित हुई। विलषि=व्याकुल होकर। अवास=आवास, महल।

कूँबरि=राजकुमारी पद्मावती । बदन=मुख । सुरत=अच्छी तरह से, पूर्ण रूप से, प्रेम । झंषति=झाँकती है, कुढ़ती है । गवष्षि=गौख, गवाक्ष । पलकि (पाठान्तर पुलकि)=पुलकित होकर, या पलकें उठा कर । दिषति=देखती है। पाठान्तर विषद=विषाद के साथ ।

व्याख्या—जब समुद्र शिखर नगर के पास कुमोदमरिण की बरात पहुँची तो वहाँ उसकी बरात और वह स्वयं दोनों विद्यमान हुए । बरात को आया हुआ देख कर समुद्रशिखर के राजा के तथा कुमोदमरिण के नगाड़े भयंकर स्वर के साथ निनाद कर उठे । अर्थात् राजा विजय पाल ने नगाड़े बजवा कर बरात के आने का समाचार दिया तथा कुमोदमरिण ने अपने आने की सूचना दी । भाव यह है कि दोनों राजाओं ने अपने-अपने नगाड़े बजा कर घोर स्वर किया । बरात को आया हुआ जान कर समुद्रशिखर के राजकुमार खूब बन-ठन कर, अपने-अपने घोड़ों को सजा कर बरात की अगवानी करने के लिए नगर से बाहर निकल आए । बरात को देखने के लिए नगर की सारी स्त्रियाँ गौखों और छज्जों पर बैठी हुई शोभा देने लगीं । उधर कुमोदमरिण के आगमन का समाचार सुन राजकुमारी पद्मावती अपने महल में व्याकुल हो उठी । उसका प्रेम से उमंगित मुख विषाद की छाया से इस प्रकार मलिन हो उठा मानो राहु ने चन्द्रमा को ग्रस लिया हो । वह (पृथ्वीराज के न आने से) गौख में बैठी झाँकती हुई बार-बार क्षरण-क्षरण में पलकें उठाकर दिल्ली पति पृथ्वीराज का मार्ग जोहने लगी ।

टिप्पणी—(१) **अलंकार**—यमक, उत्प्रेक्षा, वृत्यनुप्रास, श्रुत्यनुप्रास ।

(२) कुछ टीकाकारों ने प्रथम पंक्ति का बड़ा भ्रामक अर्थ किया है । जैसे—'जब नगर निकट समझा तो दोनों वर (कुमोदमरिण तथा पृथ्वीराज) वहाँ जाकर विद्यमान हुए ।' यहाँ दोनों वरों का एक साथ समुद्र शिखर में प्रत्यक्ष रूप से जा पहुँचना अप्रासंगिक एवं असंगत है । क्योंकि पृथ्वीराज 'अलगार' अर्थात् गुप्त रूप से वहाँ पहुँचा है न कि प्रगट रूप से । यदि पृथ्वीराज वहाँ प्रत्यक्ष रूप से पहुँचता तो विजयपाल तथा कुमोदमरिण दोनों की सेनाओं से उसका युद्ध होना अनिवार्य होता परन्तु ऐसा नहीं हुआ है । इसलिए 'उभय'

शब्द का अर्थ बरात और दूल्हा के लिए ही माना जाना चाहिए न कि दो वरों के लिए ।

(३) पंचम् पंक्ति में आए 'सुरत' शब्द का अर्थ 'प्रेम से उमंगित' ही मानना चाहिए न कि 'पूर्ण', 'लीन', आदि । कुछ टीकाकार इस शब्द का अर्थ ही गायब कर गए हैं । 'लीन' से अर्थ की संगति नहीं बैठती ।

(४) अन्तिम पंक्ति में आए 'पलकि' शब्द का अर्थ 'पुलकित होना' नहीं माना जा सकता । विषाद की अवस्था में 'पुलकित होना' सर्वथा असम्भव है । इसलिए हमने 'पलकि' का अर्थ 'पलकें उठा-उठा कर' माना है जिससे अर्थ की संगति बैठ जाती है ।

(५) पद्मावती की मानसिक व्याकुलता का कवि ने प्रभावशाली चित्रण किया है ।

(४२)

पद्धरी— **दिष्षत पंथ दिल्ली दिसांन,**
सुष भयौ सूक जब मिल्यौ आंन ।
संदेस सुनत आनन्द नैन,
उमगिय बाल मनमथ्य सैन ।

शब्दार्थ—दिसांन = दिशा की ओर । सुष = सुख, आनन्द । आंन = आकर । उमगिय = उमंगित हुई । बाल = बाला, पदमावती । मनमथ्य = मन्मथ, कामदेव ।

व्याख्या—पद्मावती दिल्ली की तरफ से आने वाले मार्ग पर टकटकी लगाए बैठी रही । जब उसका सन्देशवाहक वह शुक उससे आकर मिला तो उसे अत्यन्त सुख प्राप्त हुआ । (शुक के मुख से पृथ्वीराज का) सन्देश सुनते ही आनन्द से उसके नेत्र चमकने लगे । वह बाला (पद्मावती) कामदेव की सेना के समान उमंगित हो उठी । अर्थात् अपने प्रियतम पृथ्वीराज के आगमन का समाचार सुन पद्मावती के अङ्ग-प्रत्यंग काम के प्रभाव से उद्वेलित हो उठे ।

टिप्पणी—(१) अलंकार—अनुप्रास, उपमान, उत्प्रेक्षा ।

(४३)

पद्धरी—

तन चिकट चीर डार्यो उतारि ।
मज्जन मयंक नवसत सिंगार ॥
भूषन मँगाय नष सिष अनूप ।
सजि सेन मनो मनमथ्थ भूप ॥

शब्दार्थ—चिकट=चिक्कट, मैला, मलीन । चीर=वस्त्र । मज्जन=स्नान, लज्जित करने वाली । मयंक=चन्द्रमा । नवसत=९+७=सोलह । भूषन=आभूषण । नष सिष=नख-शिख । मनमथ्थ=मन्मथ, कामदेव ।

व्याख्या—पृथ्वीराज के सन्देश को सुन पद्मावती ने अपने शरीर पर धारण किए मलीन वस्त्र उतार डाले । तत्पश्चात् उसने स्नान कर अपना सोलह श्रृङ्गार किया । अथवा चन्द्रमुखी पद्मावती ने सोलह श्रृङ्गार किया । अथवा चन्द्रमा के रूप को भी लज्जित करने वाली पद्मावती ने सोलह श्रृङ्गार कर स्वयं को सज्जित किया । इसके उपरान्त उसने आभूषण मँगा कर अपने शरीर को नख से लेकर शिख तक इस प्रकार अनुपम रूप से सजाया कि उसे देखकर ऐसा भान होता था मानो राजा कामदेव ने (किसी पर आक्रमण करने के लिए) अपनी सेना सजाई हो । भाव यह है कि उस समय पद्मावती अद्भुत सुन्दरी प्रतीत हो रही थी ।

टिप्पणी—(१) **अलंकार**— छेकानुप्रास, प्रतीप, उत्प्रेक्षा ।

(२) 'मज्जन' के स्थान पर 'मंडान' पाठ भी मिलता है जिसका अर्थ है—सजाना, श्रृङ्गार करना । परन्तु श्रृङ्गार करने से पूर्व स्नान किया जाता है, इसलिए यहाँ 'मजन' पाठ ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है । 'मज्जन' का एक अर्थ 'लज्जित करने वाला' भी होता है । यहाँ इस अर्थ को स्वीकार कर लेने से भी अर्थ ठीक बैठ जाता है । इस अर्थ द्वारा 'मयंक' शब्द की उपस्थिति सार्थक होती है अन्यथा 'मयंक' का अर्थ खींचतान कर ही बैठाया जा सकता है ।

(४४)

पद्धरी— सोब्रन्न थार मोतिन भराय।
झल[1] हल करंत दीपक जराय॥
संगह सषिय लिय सहस बाल[2]।
रुकमनिय जेम लज्जत[3] मराल॥

पाठान्तर—१—कल। २—यव रस चाल। ३—मज्जत।

शब्दार्थ—सोब्रन्न=सुवर्ण, स्वर्ण। भराय=भर कर। झलहल=झिल-मिल। करंत=करते हुए। जराय=जलाकर, प्रज्वलित कर। संगह=साथ में। सषिय=सखियाँ। बाल=बाला, पद्मावती। जेम=जिमि, ज्यों, समान। लज्जत=लज्जित करती हुई। मराल=हंस।

व्याख्या—पृथ्वीराज के साथ पूर्व निश्चित किए गए संकेत के अनुसार पद्मावती शिव-मन्दिर में पूजा करने जा रही है। यहाँ कवि उसकी उस तैयारी का वर्णन करता हुआ कह रहा है कि—

(पद्मावती ने) एक स्वर्ण के थाल को मोतियों से भरा और फिर उसमें झिलमिलाते हुए दीपक जला कर रखे। इसके उपरान्त अपने साथ एक सहस्र सखियों को लेकर पद्मावती रुक्मिणी के समान हंस की चाल को भी लज्जित करती हुई मन्द-मन्थर गति से चली।

टिप्पणी—(१) **अलंकार**—अनुप्रास, उपमा।

(२) 'झल' के स्थान पर 'कल' पाठ असंगत है क्योंकि उससे किसी संगत अर्थ की उपलब्धि नहीं होती। 'सहस बाल' के स्थान पर 'यव रस चाल' पाठ का अर्थ होगा—'वेगपूर्ण सरस गति'। परन्तु यह पाठ भी कोई चमत्कार उत्पन्न नहीं करता। पद्मावती का सखियों के साथ पूजन के लिए जाना ही अधिक संगत प्रतीत होता है। 'लज्जत' के स्थान पर 'मज्जत' अर्थात् नहाते या तैरते हुए पाठ भी स्वीकार किया जा सकता है। परन्तु यहाँ एक शंका उठती है। हंस के जल में तैरने की गति से गति के सौन्दर्य की उपमा नहीं दी

जाती। उपमा उसके पृथ्वी पर चलने की गति से ही दी जाती है। इसलिए यहाँ 'लज्जत' पाठ ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

(४५)

पद्धरी— पूजिय गवरि शंकर मनाय।
दच्छिनै ग्रंग कर लगिय पाय॥
फिर देषि देषि प्रथिराज राज।
हँस मुद्ध मुद्ध कर पट्ट लाज॥

शब्दार्थ—पूजिय=पूजा की। गवरि=गौरी, पार्वती। दच्छिनै=प्रदक्षिणा करके, दक्षिण अथवा दाहिनी ओर। लगिय पाय=पैर लगना, प्रणाम करना। देषि-देषि=देख देख कर। हँस=हँस कर। मुद्ध=मुग्ध होकर। मुद्ध=मुग्धा नायिका। पट्ट=वस्त्र। लाज=लज्जित हो घूँघट कर लिया।

व्याख्या—पद्मावती पूजन सामग्री ले अपनी सखियों के साथ शिव मन्दिर में पहुँची और वहां पहुँच कर उसने—

अपनी मनोकामना की मनौती मनाते हुए शंकर-पार्वती की पूजा की। फिर शंकर-पार्वती की प्रदक्षिणा कर अर्थात् उनकी मूर्तियों को अपनी दाहिनी ओर रख घूमते हुए उनके चरणों में प्रणाम किया। इसके उपरान्त उसने हँस कर पृथ्वीराज की ओर देखा और उनके रूप पर मुग्ध हो उस मुग्धा ने हाथ से अपना वस्त्र खींच कर घूँघट निकाल लिया।

टिप्पणी—(१) अलंकार—छेकानुप्रास, यमक और पुनरुक्ति प्रकाश।

(२) मुग्धा नायिका उस नायिका को कहते हैं जो यौवनवती तो होती है परन्तु उसमें काम चेष्टाएँ नहीं होतीं। इसके दो भेद माने जाते हैं—(१) अज्ञात यौवना, तथा (२) ज्ञात यौवना। इसकी चेष्टाएँ बड़ी मोहक और मधुर होती हैं। वह जीवन में पहली बार प्रेम का अनुभव करती है। शृङ्गार रस के कवियों ने मुग्धा नायिकाओं के बड़े विस्तृत वर्णन किए हैं।

(३) यह पद भाव शवलता का उत्कृष्ट उदाहरण है।

(४) 'कर' के स्थान पर 'चर' पाठ भी मिलता है। जिसका अर्थ है शीघ्र।

(४६)

पद्धरी— कर पकर पीठ हय परि चढ़ाय ।
लै चल्यौ नृपति दिल्ली सुराय ।।
भइ षबरि नगर बाहिर सुनाय ।
पदमावतीय हरि लीय जाय ।।

शब्दार्थ—षबरि = खबर, समाचार । सुराय = श्रेष्ठ राजा । हरि = हरण ।

व्याख्या—जब पद्मावती ने पृथ्वीराज की ओर मुग्ध दृष्टि से देख घूँघट निकाल लिया तब—

पृथ्वीराज ने पद्मावती का हाथ पकड़ कर उसे (अपने साथ) घोड़े की पीठ पर चढ़ा लिया और वह श्रेष्ठ नृपति उसे लेकर दिल्ली की ओर रवाना हुआ । तुरन्त ही समुद्रशिखर नगर के भीतर तथा बाहर अर्थात् चारों ओर यह समाचार (तीव्रगति से) फैल गया कि पद्मावती हर ली गई अर्थात् पृथ्वीराज पद्मावती का हरण कर लिए जा रहा है ।

(४७)

पद्धरी— बाजी सुबंब हय गय पलाँन ।
दौरे सुसज्जि दिस्सह दिसाँन ।।
तुम्ह लेहु लेहु मुष जंपि जोध ।
हन्नाह सूर सब पहरि क्रोध ।।

शब्दार्थ—बाजी = बज उठी । सुबंब = रणभेरी, युद्ध का बिगुल । हय गय = घोड़े हाथी । पलांन = जीन और हौदे कसे जाने लगे । दौरे = दौड़ पड़े । दिस्सह दिसाँन = दिशा दिशा से, चारों ओर से । सुसज्जि = सुसज्जित होकर । लेहु लेहु = पकड़ लो, पकड़ लो । मुष = मुख । जंपि = कहते हैं । जोध = योद्धा । हन्नाह = सनाह, कवच, जिरह वख्तर । सूर = योद्धा ।

व्याख्या—पद्मावती के हरण का समाचार सुन कर रणभेरी बज उठी । उसे सुन कर हाथी और घोड़ों पर हौदे और जीनें कसी जाने लगीं । दिशा

से अर्थात् चारों ओर से योद्धागण (रण के लिए) सुसज्जित होकर दौड़ पड़े। सारे शूरवीर योद्धा क्रोध में भर कर कवच धारण करने लगे। वे लोग दौड़ते हुए आपस में एक दूसरे से कहते जाते थे तुम पकड़ लो, तुम पकड़ लो। अर्थात् सारे योद्धा एक दूसरे को इस बात के लिए प्रोत्साहित कर रहे थे कि तुम आगे बढ़ कर पृथ्वीराज को पकड़ लो।

टिप्पणी—(१) **अलंकार**—छेकानुप्रास और वीप्सा।

(४८)

पद्धरी— अग्गे जु राज प्रथिराज भूप।
पच्छै सु भयौ सब सेन रूप॥
पहुँचे सु जाय तत्ते तुरंग।
भुअ भिरन भूप जुरि जोध जंग॥

शब्दार्थ—अग्गे = आगे आगे। पच्छै = पीछे। तत्ते = तीव्रगामी। तुरंग = घोड़े। भुअ = भू, पृथ्वी। भिरन = भिड़ने वाले, युद्ध करने वाले। जुरि = युद्ध करने लगे। जोध = योद्धा। जंग = युद्ध। भुअ भिरन = युद्ध क्षेत्र।

व्याख्या—आगे-आगे राजा पृथ्वीराज (पद्मावती को अपने घोड़े पर बिठाए) चला जा रहा था। (विजयपाल और कुमोदमणि की) सारी सेना ने उसका पीछा किया। (पीछा करने वाली सेना के) तीव्रगामी घोड़े दौड़ते हुए पृथ्वीराज के पास तक जा पहुंचे। उसी स्थान पर घमासान युद्ध छिड़ गया। पीछा करने वाले राजा पृथ्वीराज के योद्धाओं से युद्ध-क्षेत्र में भिड़ गए। अथवा युद्धवीर एकत्रित हो युद्ध क्षेत्र में जा पहुँचे।

टिप्पणी—(१) **अलंकार**—अनुप्रास, छेकानुप्रास।

(४९)

पद्धरी— उलटी जु राज प्रथिराज बाग्र।
थकि सूर गगन धर धसत नाग।
सामंत सूर सब काल रूप।
गहि लोह छोह बाहै सुभूप॥

शब्दार्थ—बाग = घोड़े की लगाम । उलटी = मोड़ी, घोड़े को पीछे की ओर मोड़ा । सूर = सूर्य । थकि = थकित होना, रुकना, ठहर जाना । नाग = शेषनाग, पर्वत । धर = धरा, पृथ्वी । काल रूप = काल के समान विकराल रूप धारण कर । गहि = पकड़ कर । लोह = लोहा, हथियार । छोह = उत्साह के साथ । बाहैं = घालने लगे, चलाने लगे । सुभूप = राजा ।

व्याख्या—शत्रुओं द्वारा अपना पीछा होता देख कर जैसे ही राजा पृथ्वीराज ने (क्रुद्ध) होकर अपने घोड़े की बाग मोड़ी अर्थात् वह आगे बढ़ना छोड़ जैसे ही शत्रुओं का सामना करने के लिए अपने घोड़े को पीछे की ओर मोड़ने लगे, वैसे ही (भयंकर युद्ध की सम्भावना से) सूर्य थकित अर्थात् स्तम्भित होकर आकाश में रुक गए और भय के मारे शेषनाग व्याकुल हो उठे जिससे उनके फन पर स्थित पृथ्वी डगमगाने लगी । पृथ्वीराज के सारे सामंत और योद्धा काल के समान विकराल रूप धारण कर शत्रु का सामना करने लगे । और श्रेष्ठ राजा पृथ्वीराज हाथ में लोहे की तलवार पकड़ कर उत्साह के साथ शत्रुओं पर प्रहार करने लगे ।

टिप्पणी—(१) **अलंकार**—छेकानुप्रास, धर्म लुप्तोपमा, पदमैत्री ।

(२) 'नाग' का अर्थ 'पर्वत' स्वीकार करने पर अर्थ होगा—पर्वत धसकने लगे ।

(३) इस पद में पृथ्वीराज की वीरता और युद्ध का वर्णन दृष्टव्य है ।

(५०)

पद्धरी— **कम्मान बाँन छुट्टहि अपार ।**
लागंत लोह इम सारिधार ॥
घमासान घान सब बीर षेत ।
घन श्रोन बहत अरु रकत रेत ॥

शब्दार्थ—कम्मान = कमान, धनुष । लागंत = लगता है । इम = समान । सारिधार = तलवार की धार । घमसान = घमासान, भयानक । घान = युद्ध । षेत = खेत रहे, मारे गए । घन = घना, अधिक । श्रोन = रक्त । रकत = रक्त-वर्ण, लाल । रेत = भूमि ।

व्याख्या—दोनों सेनाओं में घनघोर युद्ध होने लगा। कवि इसी युद्ध का वर्णन करता हुआ कह रहा है—

धनुषों से असंख्य वाण छूटने लगे। उन वाणों के लोहे के फलक शत्रुओं के शरीरों में इस प्रकार जाकर घुस जाते थे जैसे तलवार की धार काटती चली जाती है। उस स्थान पर भयंकर घमासान युद्ध हुआ और सारे वीर मारे गए। युद्ध क्षेत्र में रक्त की नदी सी बहने लगी और सारी धरती रक्त से भींग कर लाल हो गई।

टिप्पणी—(१) **अलंकार**—छेकानुप्रास।

(२) कुछ टीकाकारों ने द्वितीय पंक्ति का अर्थ इस प्रकार किया है—'सारिधार=धारासार वर्षा। अर्थात् वर्षा की अजस्र झड़ी के समान शस्त्रों (लोहे) की झड़ी लगी हुई थी।' इसका अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है—वाणों की झड़ी (लोहे के फलक वाले वाण) मूसलाधार वर्षा के समान आघात कर रही थी।

(३) अन्तिम पंक्ति में 'रकत' का पाठान्तर 'रुकत' भी मिलता है परन्तु इसे स्वीकार करने से अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाता।

(४) तृतीय पंक्ति का अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है—भयानक संहार (घान) हुआ, सारे वीर खेत रहे अर्थात् मारे गए।

(५१)

पद्धरी— **मारे बरात के जोध जोह।**
परि रुंड मुंड अरि षेत सोह॥

शब्दार्थ—बरात=यहाँ कुमोदमणि की बरात से अभिप्राय है। जोध=योद्धा। जोह=ढूँढ़-ढूँढ़ कर, खोज-खोज कर। रुंड=कबन्ध, सिर कटा हुआ धड़। मुंड=सिर, मस्तक। अरि=शत्रु। षेत=रणक्षेत्र। सोह=शोभित।

व्याख्या—पृथ्वीराज और उनकी सेना ने कुमोदमणि की बरात के सारे योद्धाओं को खोज-खोज कर मारा। शत्रु सेना के वीरों के कटे हुए मस्तक

और धड़ रणक्षेत्र में पड़े शोभा दे रहे थे । अथवा रणक्षेत्र शत्रुओं के छिन्न-भिन्न मस्तकों एवं धड़ों से पटा हुआ शोभा दे रहा था ।

टिप्पणी—(१) अलंकार—पदमैत्री ।

(५२)

दूहा—परे रहत रिन षेत अरि, करि दिल्लिय मुष रुष्ष ।
जीति चल्यौ प्रथिराज रिन, सकल सूर भय सुष्ष ॥

शब्दार्थ—रिनषेत = रणक्षेत्र । अरि—शत्रु । दिल्लय = दिल्ली की ओर मुष = मुख । रुष्ष = रुख । रिन = युद्ध । सुष्ष = सुख, आनन्द ।

व्याख्या—मरे हुए शत्रुओं को रणक्षेत्र में पड़ा हुआ छोड़ कर पृथ्वीराज ने अपना मुख दिल्ली की ओर मोड़ा अर्थात् वह पुनः दिल्ली की ओर रवाना हो गए इस प्रकार पृथ्वीराज युद्ध में विजय प्राप्त कर चल दिए और समस्त शूर-वीरों को आनन्द प्राप्त हुआ । प्रथम पंक्ति का अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है कि शत्रु रणक्षेत्र में धराशायी हुए । वे रणक्षेत्र में दिल्ली की ओर मुख करके पड़े हुए थे । भाव है कि शत्रुपक्ष के योद्धा इतने वीर थे कि मरते दम तक उन्होंने युद्ध से कदम पीछे नहीं हटाया था और दिल्ली पहुँचने की लालसा लिए हुए ही रणक्षेत्र में स्वर्गवासी हुए थे (इस अर्थ को स्वीकार कर लेने से पृथ्वीराज की वीरता में चार चाँद लग जाते हैं । अर्थात् उन्होंने साधारण योद्धाओं पर विजय नहीं प्राप्त की थी अपितु अत्यन्त रणबांकुरे दुर्द्धर्ष योद्धाओं को पराजित किया था । 'दिल्लय मुख रुष्ष' बड़ी सार्थक उक्ति है । उन योद्धाओं में अन्त तक युद्ध करने की चाह बनी रही थी । यह अर्थ अधिक सुन्दर एवं भाव पूर्ण है ।)

टिप्पणी—(१) अलंकार—अनुप्रास

(५३)

दूहा—पदमावति इम लै चल्यौ, हरिषि राज प्रथिराज ।
एतें परि पतिसाह की, भई जु आनि अबाज ॥

शब्दार्थ—इम=इस प्रकार। हरषि=प्रसन्न होकर, हर्षित होकर। एतें=इतने। परि=में। एतें परि=इतने में, इसी बीच। पतिशाह=बादशाह शहाबुद्दीन गोरी। आनि=आने का। अबाज=समाचार, शब्द।

व्याख्या—इस प्रकार पृथ्वीराज मन में हर्षित हो पद्मावती को अपने साथ लेकर चल दिया। इतने में ही अर्थात् इसी बीच बादशाह शहाबुद्दीन गोरी के आने का समाचार मिला। (यहाँ यदि 'अबाज' से 'शब्द' का अर्थ लिया जाय तो अर्थ इस प्रकार होगा—इतने में ही बादशाह की सेना के नगाड़ों की आवाज सुनाई पड़ी। भाव यह है कि बादशाह की सेना नगाड़े बजाती हुई तथा कोलाहल करती हुई पृथ्वीराज का मार्ग रोकने के लिए आगे बढ़ी।)

टिप्पणी—(१) अलंकार—छेकानुप्रास।

(५४)

कवित्त— भई जु आनि अबाज, आय साहाबदीन सुर।
आज गहौं प्रथिराज, बोल बुल्लंत गजत धुर॥
क्रोध जोधा अनन्त, करिय पंती अनि गज्जिय।
बाँन नालि हथनालि, तुपक तीरह स्रब सज्जिय॥
पब्बै पहार मनो सार के, भिरि भुजांन गजनेस बल।
आए हकारि हंकारि करि, षुरासान सलतान दल॥

शब्दार्थ—आय=आया। सुर=शूरवीर, असुर ('अ' का लोप है), राक्षस, मध्यकाल में मुसलमानों को असुर कहा जाता था। 'असुर' शब्द का प्रयोग पश्चिम से आने वाले सभी विदेशी आक्रमणकारियों के लिए समान रूप से हुआ है। गहौं=पकड़ूँगा। बोल=वचन। बुल्लंत=बोलता हुआ। गजत=गर्जन करता हुआ। धुर=निश्चय ही। जोध=युद्धवीर। जोधा=योद्धा। अनंत=असंख्य। करिय=करी, हाथी। पंती=पंक्ति। अनि=अनीक, सेना। गज्जिय=गर्जन करना। बान=तीर। नालि=बन्दूक, तोप। हथनालि=बड़ी तोप, हाथियों द्वारा खींची जाने वाली बड़ी तोप। तुपक=कड़ाबीन छोटी तोप, एक लम्बी नाल की बन्दूक। तीरह=बाण। स्रब=सब, समस्त।

सज्जिय=सज्जित। पब्बै पाठ्यान्तर 'पवै') =पवि, वज्र, पर्वत, चलते हैं। सार=लोहा। भिरि=युद्ध। भुजाँन=भुजाओं। गजनेस=गजनीश, गजनी का स्वामी, शहाबुद्दीन गोरी। हकारि=बुलाए गए। हंकार=अहंकार, गर्व। षुरासान=खुरासान, एक देश का नाम।

व्याख्या—कवि शहाबुद्दीन गोरी की विशाल सेना का वर्णन करता हुआ कह रहा है कि—

जैसे ही शहाबुद्दीन के आने का समाचार मिला, अथवा जैसे ही शहाबुद्दीन की सेना के नगाड़ों का स्वर सुनाई पड़ा, वैसे ही शूरवीर अथवा असुर शहाबुद्दीन स्वयं यहाँ आ पहुँचा। भाव यह है कि शहाबुद्दीन ने अपनी सेना सहित बड़ी तीव्रगति से चल कर पृथ्वीराज को घेर लिया। शहाबुद्दीन ऊँचे बुलन्द स्वर में गर्जना करता हुआ यह घोषणा कर रहा था कि आज मैं निश्चय ही पृथ्वीराज को पकड़ लूँगा। उसकी सेना में असंख्य युद्धवीर योद्धा थे जो युद्ध की कल्पना कर क्रोध से भर उठे थे। उसकी सेना के ये योद्धा, हाथियों की पंक्तियाँ तथा सारी सेना क्रोध में भर गर्जन कर रही थी। भाव यह है कि बादशाह की सम्पूर्ण सेना पृथ्वीराज को पकड़ने के लिए क्रोध में भर गरज रही थी। सेना के सम्पूर्ण योद्धा तोप, बन्दूक, बड़ी-बड़ी तोप, कड़ाबीन, धनुष वाण आदि अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित थी। बादशाह की सेना के सारे योद्धा इस प्रकार बढ़ते हुए चले आ रहे थे मानो लोहे के पर्वत आगे बढ़ते चले आ रहे हों। भाव यह है कि लोहे के हथियारों से सुसज्जित विशालकाय योद्धा लोहे के पर्वत के समान भयानक प्रतीत हो रहे थे। (यहाँ 'पब्बै' का अर्थ 'चलते हुए' ही स्वीकार करने से अर्थ में संगति बैठती है।) वे सारे योद्धा शहाबुद्दीन की शक्ति को अपनी भुजाओं में भर कर अर्थात् उसकी शक्ति से प्रभावित और उत्साहित होकर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो उठे थे। बादशाह द्वारा बुलाए गए अथवा निमंत्रित खुरासान के सुलतान की सेना हुँकार भरती हुई अर्थात् क्रोध से गर्जन करती हुई वहाँ आ पहुँची।

टिप्पणी—(१) **अलंकार**—अनुप्रास, उत्प्रेक्षा।

(२) चतुर्थ पंक्ति में आए 'बाँन' का अर्थ तोप माना जा सकता है न कि 'वाण', 'अग्निवाण' आदि। जायसी ने भी 'वाण' का प्रयोग तोप के ही अर्थ

में किया है। यहाँ 'बाँण' से तीर का अर्थ मान लेने से इसी पंक्ति में आए 'तीरह' का फिर 'तीर' अर्थ नहीं माना जा सकता।

(३) 'रासो' की कुछ प्रतियों में इस पद की तृतीय पंक्ति में आया 'करिय' शब्द नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में अर्थ होगा—उसकी सेना में असंख्य वीर योद्धाओं की पंक्तियाँ गर्जन कर रहीं थीं।

(४) पंचम पंक्ति का अर्थ टीकाकारों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है। जैसे—'भुजाओं से भिड़ जाने वाली (अस्त्र-शस्त्रों के अभाव में) गजनीश की सेना ऐसी लग रही थी मानो लोहे के पहाड़ चल रहे हों।' तथा—गजनी के अधिपति (शहाबुद्दीन) की सेना एकत्रित होकर अपनी भुजाओं के कारण ऐसी मालूम पड़ रही थी मानो लोहे के पहाड़ उड़ रहे हों। परन्तु हमें इनमें से कोई भी अर्थ ठीक नहीं जँचा। इसी कारण हमने उपर्युक्त अर्थ (ऊपर व्याख्या में दिया गया) स्वीकार किया है। यह अर्थ भाव को स्पष्ट करने में पूर्ण समर्थ है।

(५) अन्तिम पंक्ति में आए 'हङ्कारि' शब्द का अर्थ 'बुलाना' होता है। इसलिए यहाँ 'बुलाए गए' अथवा 'निमंत्रित' अर्थ संगत प्रतीत होता है। कुछ लोगों ने 'हङ्कारि' का अर्थ 'अहङ्कार' मान इस पंक्ति का इस प्रकार अर्थ किया है—"खुरासान के सुल्तान के दल अहङ्कार के कारण हुँकार करते हुए आए।"

(५५)

पद्धरी— षुरासान सुलतान षंधार मीरं।
बलक सो बलं तेग अच्चूक तीरं॥
रुहंगी फिरंगी हलंबी समानी।
ठटी ठट्ट बल्लोच ढालं निसानी।

शब्दार्थ—षंधार=कंधार, अफगानिस्तान का एक प्रदेश जिसे प्राचीन भारतीय वांगमय में गान्धार कहा जाता था। मीरं=सरदार। बलक=बलख, मध्य एशिया का एक प्रदेश तथा नगर। सो (पाठान्तर स्यों)=साथ, सहित।

बलं=बल से युक्त, सेना । तेग=तलवार । अच्चूक=न चूकने वाले । रुहंगी=तुर्क । फिरंगी=यूरोपिय, यह शब्द मध्यकालीन भारत में यूरोप के सभी देशों के निवासियों के लिये प्रयुक्त होता था । हलंबी=हलब देश के वासी, सीरिया के सैनिक । समानी=सगर्व, अभिमानी । ठटी ठट्ट=समूह के समूह, दल के दल । बल्लोच=बलूची, बलूचिस्तान के निवासी । ढालं=ढाल । निसानी=निशान, झंडे ।

व्याख्या—कवि शहाबुद्दीन गोरी की सेना का विस्तृत वर्णन करता हुआ कहता है कि—

बादशाह की सेना में खुरासान के सुल्तान, कंधार के मीर, बलख के योद्धा थे जिनकी तलवारें अपार शक्ति के साथ चलती थीं तथा जिनके तीर निशाने को भेदने में कभी नहीं चूकते थे । अर्थात् जो अचूक निशानेबाज थे । इस सेना में तुर्क, फिरंगी, हलब्बी जाति के अभिमानी योद्धा थे । बल्लूचियों के दल के दल ढाल और अपने-अपने झंडे लिये इस सेना में सम्मिलित थे ।

टिप्पणी—(१) **अलंकार**—छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास ।

(२) इस पद में तथा इससे आगे कई पदों में चन्द वरदाई ने यवन-सेना का एक संश्लिष्ट चित्र अंकित किया है जिसमें युद्ध की भीषणता का सुन्दर भावपूर्ण अंकन हुआ है । सैन्य-वैभव, राजसी ठाठबाट, दिग्गजों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट, शस्त्रों की झंकार एवं युद्ध की भीषणता के अन्यतम-चित्र अंकित हुए हैं ।

पद्धरी— मंजारी चषी मुष्ष जंबक्क लारी ।
हजारी हजारी इकै जोध भारी ।।
तिनं पष्षरं पीठ हय जीन सालं ।
फिरंगी कती पास सुकलात लालं ।।

शब्दार्थ—मंजारी=मार्जारी, बिल्ली । चषी=चक्षु वाले, आँख वाले । मुष्ष=मुख । जंबक्क (पाठान्तर जंब्रुक्क)=जम्बूक, शृगाल, गीदड़ । लारी=

लोमड़ी, लोमश । हजारी = एक हजार सैनिकों का नायक, एक एक-योद्धा एक-एक हजार सैनिकों के बराबर शक्तिशाली । इकै = एक । जोध = योद्धा । भारी = मुकाबले में भारी पड़ता था । तिनं = उनके । पष्षर = पाखर, युद्ध के समय हाथी घोड़ों पर सुरक्षा हेतु डाली जाने वाली लोहे की कड़ियों की बनी झूलें । हय = घोड़े । सालं = अलंकृत, सजे हुए । फिरंगी = विलायती । कती = छुरी, कटारी । पास = पाश, फंदा । सुकलात = बनात, लाल रंग का ऊनी वस्त्र, कलात देश की । लालं (यह पाठ अशुद्ध है। इसका एक पाठान्तर 'नालं' मिलता है । जिसका अर्थ है तोप ।)

व्याख्या—बादशाह शहाबुद्दीन गोरी की सेना में बिल्ली की सी कंजी आँखों तथा शृगाल और लोमड़ी के से लम्बे मुख वाले सैनिक थे । इनमें से एक-एक योद्धा युद्ध क्षेत्र में शत्रु के एक-एक हजार सैनिकों के लिए भी भारी पड़ जाता था । अर्थात् एक-एक योद्धा में एक-एक हजार सैनिकों के बराबर बल था । उनके घोड़ों की पीठ पर लोहे की झूलें (पाखर) पड़ी हुई थीं तथा सजी हुई जीनें कसी हुई थीं । उनके पास विलायती कटारें, फन्दे (फेंक कर शत्रुओं को बाँध लेने वाले फन्दे) तथा कलात देश की तोपें या बन्दूकें थीं । (यहाँ 'लाल' के स्थान पर 'नालं' पाठ ही शुद्ध प्रतीत होता है क्योंकि 'लालं' से किसी संगत अर्थ की उपलब्धि नहीं होती । 'नालं' का अर्थ 'तोप' तथा 'बन्दूक' दोनों ही होते हैं । यहाँ बन्दूक अर्थ ही ग्रहण करना चाहिए क्योंकि घोड़ों पर सवार बन्दूक ही रख सकते हैं न कि तोप ।)

टिप्पणी (१) **अलंकार**—अनुप्रास, छेकानुप्रास तथा पुनरुक्ति ।

(२) द्वितीय पंक्ति में 'इकै' के स्थान पर 'हुंकै' पाठ भी मिलता है जिसका अर्थ है 'हुँकार भर कर' । इसके अनुसार अर्थ होगा—उस सेना में हजार-हजार सैनिकों से हुँकार भर कर युद्ध करने वाले योद्धा थे ।

(३) 'सुकलात' का अर्थ 'सुन्दर कलात देश' ही मानना चाहिए । पुराने जमाने में बिलोचिस्तान की राजधानी कलात तोपें ढालने के लिए प्रसिद्ध थी ।

(५७)

पद्धरी— जहाँ बाग बाघं महूरी रिछोरी ।
घनं सार संमूह अरु चार मोरी ॥

एराकी अरब्बी पटी तेज ताजी।
तुरक्की महाबांन कम्मांन बाजी॥

शब्दार्थ—बाग=वल्गा, लगाम। बांध=बांधी गई। मरुरी=मरोड़ कर, बल देकर। रिछोरी=रिछोली, मोतियों की माला, पछाड़कर। घन=सघन, अत्यधिक। सार=लोहा। चौंर=चँवर। झौरी=गुच्छेदार, झौंरदार, हिलाना एराकी=इराक देश के घोड़े। अरब्बी=अरब देश के घोड़े। पटी=घोड़ों की एक विशेष जाति जो अपनी तेजी के लिए प्रसिद्ध थी। तेज=तीव्रगामी। ताजी=घोड़े। तुरक्की=तुर्की घोड़े। महाबांन=घोड़ों की एक जाति। कम्मान=घोड़ों की एक जाति। बाजी=घोड़े।

व्याख्या—कवि शहाबुद्दीन की सेना के विविध नस्लों के घोड़ों का वर्णन करता हुआ कहता है कि—

उनके घोड़ों की लगामें बल देकर बाँधी गई थीं। भाव यह है कि वे घोड़े इतने तेज थे कि साधारण रस्सी की लगामों से काबू में नहीं आते थे, उन्हें तोड़ डालते थे, इसलिए उनकी लगामों की रस्सियाँ अनेक बल देकर खूब मजबूत बना दी जाती थीं। उनकी लगामों में अत्यन्त सघन अर्थात् फौलादी लोहे की जंजीरें पड़ी रहती थीं। उनके गर्दन के बाल चँवर के समान भारी, लम्बे और सघन थे तथा पूँछों के बाल खूब गुच्छेदार थे। अथवा उनकी पूँछे चँवर की तरह खूब सघन गुच्छेदार बालों वाली थीं। ये घोड़े अनेक नस्लों के थे। इनमें एराकी, अरबी, पटी, तीव्रगामी ताजी, तुर्की महावान तथा कम्मान जाति के घोड़े थे।

टिप्पणी—(१) प्रथम और द्वितीय पंक्तियों का अर्थ कुछ टीकाकारों ने इस प्रकार भी किया है—'वहाँ घोड़ों की लगामों में मरोरकर मोतियों की मालाएँ बाँधी गई हैं, उन पर अनेक अस्त्र-शस्त्रों का समूह लदा हुआ है और वे अपनी पूँछें हिला रहे हैं।' तथा—'उन पर अनेक अस्त्र-शस्त्रों का समूह, चौंर तथा झोले लदे हुए हैं।' ये दोनों ही अर्थ प्रसंग से मेल नहीं खाते। यहाँ वर्णन केवल घोड़ों का है न कि अस्त्र-शस्त्रों का। सवारों के साथ घोड़ों पर अस्त्र-शस्त्रों का समूह लाद देना युद्ध कला से अपनी पूर्ण अनभिज्ञता प्रकट

करता है। भार से लदा हुआ घोड़ा युद्ध में स्वयं भार बन जायेगा न कि सहायक।

(२) इस पद में कवि ने घोड़ों की विभिन्न नस्लों का ही वर्णन किया है। महाबान, कम्मान आदि घोड़ों की जातियाँ हैं। जायसी ने भी घोड़ों का इसी प्रकार का वर्णन किया है। जैसे—

'चले पंथ बेसर सुलतानी। तीख तुरंग बाँक कनकानी॥
कारे, कुमइत, लील, सुपेते। खिंग-कुरङ्ग, बोज दुर केते॥
अबलक, अरबी-लखी सिराजी। चौधर चाल, समँद भल, ताजी॥
किरमिज, नुकरा, जरदे, भले। रूपकरान, बोलसर, चले॥
पँच कल्यान, सँजाब, बखाने। महि सायर सब चुनि चुनि आने॥
मुशकी औ हिरमिजी, एराकी। तुरकी कहे भोथार बुलाकी॥'

—आदि

प्राचीन कवियों में विविध वस्तु-विषयक अपने ज्ञान का प्रदर्शन करने का उत्कट मोह रहता था। कवि चन्द बरदाई भी इस मोह में ग्रस्त प्रतीत होते हैं।

(५८)

पद्धरी—ऐसे असिव[1] असवार अग्गेल गोलं।
भिरे जून[2] जेते सुतत्त[3] अमोलं॥
तिनं मद्धि सुलतान साहाब आयं।
इसे रूप सों फौज बरनाय जायं॥

पाठान्तर—१—अस्मि। २—भूप। ३—सुतेते।

शब्दार्थ—असिव=प्रचंड। असवार=घुड़सवार। अग्गेल=आगे के। गोलं=गोल, दल। भिरे=युद्ध में लड़े, एकत्र हुए। जून=योद्धा। जेते=जितने। सुतत्ते=जोशीले, मंजे हुए, प्रचंड। अमोलं=अमूल्य, अनमोल रत्न के समान। तिनं=उनके। मद्धि=बीच में। आय=आया। इसे=इस। बरनाय=वर्णन। जायं=किया जा सकता है।

व्याख्या—बादशाह शहाबुद्दीन गोरी की सेना के अग्र भाग में ऐसे प्रचंड घुड़सवार चल रहे थे। वहाँ जितने भी ऐसे योद्धा एकत्र हुए वे सब अत्यधिक प्रचंड और अमूल्य रत्नों के समान महत्त्वपूर्ण थे। ऐसे उन योद्धाओं के मध्य स्वयं बादशाह शहाबुद्दीन आया। इस प्रकार इस रूप में उस सेना का वर्णन प्रस्तुत किया जा सकता है।

टिप्पणी—(१) प्रथम पंक्ति में 'असिव' के स्थान पर 'अस्सि' पाठ मिलता है, जिसका अर्थ किसी ने 'अस्सो' तथा किसी ने 'अशिव', 'अमंगलकारो' आदि किया है। परन्तु यहाँ 'प्रचंड' अर्थ से ही अर्थ की पूर्ण संगति बैठती है क्योंकि कवि संख्या का वर्णन न कर योद्धाओं के रूप का ही वर्णन कर रहा है।

(२) द्वितीय पंक्ति में आए 'जून' का अर्थ कुछ लोगों ने 'यवन', 'जवान' आदि माना है। 'यवन' का 'जवन' तो बन जाता है परन्तु 'जून' बनना भाषा-विज्ञान के नियमों के अनुसार असम्भव है। इसलिए 'जून' का अर्थ 'योद्धा' ही मानना चाहिए। इसके कई पाठान्तर मिलते हैं, जैसे—'भिरे भूप जेते', 'भूदरे जून जेते', 'भिभरे जून जेते' आदि। इन पाठान्तरों से मूल अर्थ में कोई विशेष अन्तर नहीं आ पाता।

(५६)

पद्धरी—तिनं घेरियं राज प्रथिराज राजं।
चिहौं ओर घनघोर नीसाँन बाजं।

शब्दार्थ—घेरियं=घेर लिया। चिहौं=चारों। नीसाँन=नगाड़े। राजं=शोभित। बाजं=बजने लगे।

व्याख्या—शहाबुद्दीन की ऐसी उस सेना ने आकर राजा पृथ्वीराज को घेर लिया। पृथ्वीराज उस सेना के मध्य शोभित हुए। चारों ओर बादलों के घोष के समान भयङ्कर रूप से नगाड़े बजने लगे।

टिप्पणी—(१) **अलंकार**—छेकानुप्रास, यमक।

(६०)

कवित्त—बज्जिय घोर निसाँन, राँन चौहान चहौं दिसि।
सकल सूर सामंत, समरि बल जंत्र मंत्र तस[1] ॥
उट्ठि राज प्रथिराज, बाग मानों लग वीर नट।
कढ़त तेग मन[2] बेग, लगत मनों बीज झट्ट घट ॥
थकि रहे सूर कौतिग गिगन, रगन मगन भइ श्रोन घर।
हर[3] हरषि वीर जग्गे हुलसि, हुरव[4] रंगि[5] नव रत्त वर ॥

पाठान्तर—१—तिस। २—मनों। ३—हृदि। ४—हुरेउ। ५—रंग।

शब्दार्थ—बज्जिय=बजने लगे। घोर=घनघोर स्वर के साथ। निसाँन=नगाड़े। राँन=राजा, राणा। समरि=स्मरण करके। बल=शक्ति। जंत्र मंत्र=जादू-टोना, युक्ति। तस=तस्य, उसका। तेग=तलवार। कढ़त=निकलती है। बेग=गति। लग=लगती है। मानों=मानो। बीज=बिजली। झट्ट=तुरन्त, तत्क्षण। घट=मेघघटा, शरीर। सूर=सूर्य। कौतिग=कौतुक। गिगन=गगन, आकाश। रगन मगन=आप्लावित, सराबोर। श्रोन=रक्त। घर=धरा, पृथ्वी। हर (पाठान्तर हृदि)=शिव, हृदय में। हरषि=हर्षित होकर। जग्गे=जाग उठे, चैतन्य हो उठे। दुख=दु+ख=हुँकार का शब्द। हुरेउ=स्फुरित हुआ। रंगि=रंग। नव=नवीन। रत्त=रक्त।

व्याख्या—कवि शहाबुद्दीन की सेना द्वारा पृथ्वीराज के घिर जाने पर उनके प्रबल वेग के साथ शत्रुओं पर टूट पड़ने का वर्णन करता हुआ कहता है—

राजा पृथ्वीराज के चारों ओर घनघोर स्वर के साथ युद्ध के नगाड़े बजने लगे। (यह देख कर) उनके समस्त शूरवीर योद्धा एवं सामंत अपनी-अपनी शक्ति और युद्ध-कौशल (जंत्र मंत्र) का स्मरण कर सजग हो उठे। अथवा समस्त शूरवीर तथा सामन्त उनकी (पृथ्वीराज की) शक्ति, नियंत्रण तथा मंत्रणा का स्मरण कर सजग हो उठे। (हमें पहला अर्थ ही अधिक संगत प्रतीत हुआ है। दूसरे अर्थ में खींचतान अधिक है 'जंत्र मंत्र' का अर्थ युक्ति अथवा युद्ध-कौशल अधिक सार्थक एवं संगत है। यहाँ 'तस' का अर्थ 'उसी प्रकार' माना

जा सकता है, अर्थात् जिस तीव्रगति से नगाड़े बज रहे थे, उसी तीव्रगति से उन्होंने अपनी शक्ति एवं युद्ध कौशल का स्मरण किया। भाव यह है कि वे पूर्ण सन्नद्ध हो युद्ध के लिए तत्पर हो गए।) यह देखकर राजा पृथ्वीराज ने उत्साहित हो अर्थात् सम्हल कर घोड़े पर शासन जमाया और लगाम को नट के से लाघव एवं कौशल के साथ पकड़ लिया। अथवा उन्होंने वीर नट के समान उसी प्रकार घोड़े की लगाम को साध लिया जिस प्रकार नट रस्सी पर अपने शरीर को साध लेता है। भाव यह है कि पृथ्वीराज का घोड़ा लगाम के इशारे पर रणक्षेत्र में इधर से उधर दौड़ने लगा। पृथ्वीराज की तलवार मन की सी तीव्र गति से म्यान में से निकली। (मन सर्वाधिक तीव्रगामी माना जाता है। यहाँ तलवार की तीव्रगति को बताना ही कवि का अभिप्रेत है।) जब उन्होंने तलवार निकाली तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो मेघघटा में बिजली चमक गई हो। (यहाँ म्यान मेघघटा तथा तलवार बिजली के समान है।) इसका दूसरा अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है कि पृथ्वीराज की तलवार मन की सी तीव्रगति से म्यान में से बाहर आ शत्रुओं के शरीरों पर उसी प्रकार प्रहार करती थी जैसे बिजली बादलों की घटा पर प्रहार करती है।

पृथ्वीराज की ऐसी अद्भुत वीरता एवं तीव्रता को देख सूर्य थकित (स्तम्भित) हो आकाश में आगे बढ़ना भूल, एक स्थान पर खड़े हो इस कौतुक (आश्चर्यजनक व्यापार) को देखने लगे। उस युद्ध में इतना रक्त बहा कि सारी पृथ्वी रक्त से आप्लावित हो उठी। युद्ध के इस रूप को देखकर वीर गण हृदय में हर्षित हो उल्लास से भर गए और इस उल्लास के कारण उनके मुख पर नवीन रक्त की लालिमा स्फुरित हो उठी। अर्थात् उल्लास के कारण उनके मुख लाल हो गए। (अथवा हृदय में हर्षित होकर उल्लास के साथ वीरगण समुत्थित हुए और उनमें—उनके अंग-प्रत्यंग में—उत्तम तथा नवीन रक्त का रंग स्फुरित हुआ।)

टिप्पणी—(१) **अलंकार**—अनुप्रास, छेकानुप्रास, उत्प्रेक्षा, पदमैत्री।

(२) द्वितीय पंक्ति का एक अर्थ इस प्रकार भी किया गया है—'समस्त शूरवीर तथा सामंतों ने उसकी (पृथ्वीराज की) शक्ति के जादू का स्मरण किया अथवा उसके बल, अस्त्र-शस्त्र तथा मन्त्रणा का स्मरण किया।'

(३) तृतीय पंक्ति के अन्तिम अंश का अर्थ कुछ टीकाकारों ने इस प्रकार भी किया है—'वह लगाम को इस प्रकार पकड़े था, जैसे नट रस्सी के साथ खेल दिखाता है।' अथवा—'वह बागडोर से ऐसे चिपक गया जैसे कोई वीर नट हो।'

(४) अन्तिम पंक्ति के 'हर' पाठ के स्थान पर 'हदि' या 'हृदि' पाठ अधिक सार्थक प्रतीत होता है। श्री भगीरथ मिश्र ने 'हदि' का अर्थ 'बहुत' माना है अर्थात् 'बहुत हर्षित होकर'। परन्तु 'हदि' का अर्थ 'हृदय में' ही अधिक उपयुक्त है। यदि 'हर' पाठ को ही स्वीकार किया जाय तो इसका यह अर्थ होगा कि 'हर के वीर' अर्थात् 'शिव के गण'।

(५) अन्तिम पंक्ति में आए 'दुख' शब्द का एक पाठान्तर 'हरेउ' भी मिलता है जिसका अर्थ कुछ टीकाकारों ने 'दु+ख'=हुंकार माना है। इसके अनुसार इस पंक्ति का अर्थ होगा—शत्रुओं का ताजा रक्त पीने की कल्पना से शिव के गण प्रसन्न होकर चाव से जाग उठे और हुँकार करने लगे।

(६) इस वर्णन में कवि ने सुन्दर उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग कर युद्ध एवं पृथ्वीराज की वीरता का चित्रोपम वर्णन किया है।

(६१)

दूहा—हुरव रंग नव रत्त वर, भयौ जुद्ध अति चित्त।
निस बासुर समुझि न परत, न को हार नह जित्त॥

शब्दार्थ—जुद्ध=युद्ध। अति चित्त=बड़े उत्साह के साथ। निस=निशा, रात्रि। बासुर=बासर, दिन। को=कोई। नह=नहीं। हार=हारता। जित्त=जीतता।

व्याख्या—पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गोरी के भयंकर संग्राम का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि—

योद्धाओं के मुख पर उत्साह के कारण नए खून की लालिमा छा गई अर्थात् उनके मुख लाल हो उठे। उस स्थान पर बड़े उत्साह के साथ दोनों पक्ष के योद्धाओं ने जी खोल कर युद्ध किया। वहाँ इतना घनघोर एवं भयानक युद्ध हुआ कि दिन और रात का अन्तर ही प्रतीत नहीं होता था। (इसका अर्थ

कुछ टीकाकारों ने यह लगाया है कि वहाँ रात-दिन लगातार युद्ध होता रहा। परन्तु हमारी समझ में इसका भाव यह है कि युद्ध क्षेत्र में दोनों पक्षों के सैनिकों, घोड़ों, हाथियों आदि के भागने-दौड़ने से इतनी धूल उड़ी कि वहाँ रात्रि का सा अन्धकार छा गया और योद्धागण इस बात का निर्णय नहीं कर पाए कि कब दिन डूबा और कब रात हुई। प्राचीन युग में रात्रि के समय युद्ध करने का नियम नहीं था। इसलिए यहाँ यह अर्थ नहीं स्वीकार किया जा सकता कि वहाँ रात-दिन बराबर युद्ध होता रहा।)

दोनों पक्ष इतने प्रबल थे कि उनमें से न किसी को हार होती थी और न किसी की जीत। अर्थात् दोनों पक्ष समान उत्साह एवं वीरता के साथ बिना कदम पीछे हटाए बराबर युद्ध करते रहे।

(६२)

कवित्त—न को हार नह जित्त, रहेइ न रहहि सूरवर।
धर उप्पर भर परत, करत अति जुद्ध महाभर॥
कहौं कमध कहौं मथ्थ, कहौं कर चरन अन्तरुरि।
कहौं कंध बहि तेग, कहौं सिर जुट्टि फुट्टि उर॥
कहौं दन्त मन्त हय षुर षुपरि, कुम्भ भ्रसुंडह रुंड सब।
हिंदवान रान भय भांन मुष, गहिय तेग चहुवान जब॥

शब्दार्थ—रहेइ=रोकने पर भी। रहहि=सकते। धर=धरा, पृथ्वी। उप्पर=ऊपर। भर=भट, वीर। परत=गिरते। महाभर=महाभट, बड़े-बड़े योद्धा। कहौं=कहीं। कमध=कबन्ध, बिना, मस्तक का धड़। मथ्थ=मस्तक। कर=हाथ। चरन=चरण, पैर। अंतरुरि=अन्तड़ियाँ। वहि=पार हो जाती थी। कंध=कन्धे में से। जुट्टि=जुटना, टकराना। फुट्टि=फूटना। उर=हृदय, वक्षस्थल। दंत=दाँत। मंत=मदोन्मत। हय=घोड़े। षुर=खुर, सुम। षुपरि=खोपड़ी। कुंभ=गंडस्थल, मस्तक। भ्रसुंडह=भुशुंड, सूँड़। हिंदवानरान=हिन्दुओं के राणा, राजा। भय=हुआ। भांन मुष=सूर्य के समान देदीप्यमान मुख। गहिय=पकड़ी। चहुवान=चौहान नरेश।

व्याख्या—कवि पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गोरी के युद्ध का विस्तृत वर्णन करता हुआ कह रहा है कि—

उस युद्ध में न कोई हारता था और न कोई जीतता ही था। श्रेष्ठ योद्धा-गणों पर ऐसा युद्धोन्माद छा गया था कि वे रोकने पर भी नहीं रुकते थे। भाव यह है कि सेनापतियों द्वारा रोकने पर भी योद्धा युद्ध करने से पीछे नहीं हटते थे अथवा शत्रुओं द्वारा रोकने का पूरा प्रयत्न करने पर भी वे नहीं रुकते थे। योद्धा आहत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते थे। महान योद्धा भयंकर युद्ध कर रहे थे। युद्ध क्षेत्र में कहीं कवन्ध (धड़) कहीं मस्तक, कहीं हाथ, कहीं चरण और कहीं अंतड़ियाँ बिखरी हुई पड़ी थीं। अर्थात् योद्धाओं के कटे हुए छिन्न-भिन्न अंग-प्रत्यंग सारे युद्ध क्षेत्र में इधर-उधर बिखरे हुए पड़े थे। कहीं तलवार कन्धे को काटती हुई पार हो जाती थी, कहीं सिर एक दूसरे से टकरा जाते थे और कहीं वक्षस्थल फट जाते थे। कहीं मदोन्मत्त हाथियों के दाँत, कहीं घोड़ों के खुर और खोपड़ियाँ, कहीं हाथियों के मस्तक, सूँड़े तथा धड़ कटे हुए पड़े थे। जब हिन्दुओं के राणा (राजा) चौहान-नरेश पृथ्वीराज ने हाथ में तलवार पकड़ी तो क्रोध एवं उत्साह के कारण उनका मुख सूर्य के समान देदीप्यमान हो उठा।

टिप्पणी—(१) **अलंकार**—अनुप्रास, वाचक धर्म लुप्तोपमा, पदमैत्री।

(२) डिंगल भाषा के ग्रन्थों में 'भर' शब्द 'भट' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। परन्तु भाषा शास्त्र के किसी भी नियमानुसार 'ट' का 'र' में परिवर्तन होना कठिन है। इस स्थान पर 'भर' का अर्थ यदि 'भहरा कर' माना जाय तो इसका इस प्रकार अर्थ किया जा सकता है—(योद्धा गण) भहरा कर पृथ्वी पर गिर पड़ते थे।

(३) इस पद में युद्धोन्माद का सजीव चित्र अंकित हुआ है।

(४) भाषा वीररस के सर्वथा अनुकूल है।

(६३)

भुजंगी— गही तेग चहुवांन हिंदवांन रानं।
गजं जूथ परि कोप केहरि समानं॥

करे रुंड मुंड करी कुंभ फारे।
बरं सुर सामंत हकि गर्ज भारे॥

शब्दार्थ—जूथ=यूथ, समूह। परि=टूट पड़ा। करी=हाथी। कुंभ=गंडस्थल, मस्तक। बरं सूर=श्रेष्ठ शूरवीर। हुकि=हुँकार कर। गर्ज=गर्जना करने लगे। भारे=भारी, भयंकर।

व्याख्या—हिन्दुओं के राजा चौहान-नरेश पृथ्वीराज ने हाथ में तलवार पकड़ी और सिंह के समान क्रुद्ध होकर हाथियों के समूह पर टूट पड़े। उन्होंने अपनी तलवार द्वारा शत्रुओं को काट कर रुंड मुंड कर डाला तथा हाथियों के मस्तक फाड़ डाले। भाव यह है कि उन्होंने हाथियों पर सवार योद्धाओं को मार कर उनके सिर धड़ से अलग कर दिए और हाथियों के मस्तक फाड़ डाले।

टिप्पणी—(१) **अलंकार**—छेकानुप्रास, उपमा, निदर्शना।

(२) इस पद का छन्द तथा भाषा वीर रस के उपयुक्त है।

(३) युद्ध का भयानक चित्र स्पृहणीय हैं।

(६४)

भुजंगी—करी चीह चिक्कार करि कलप भग्गे।
मदं तंजियं लाज ऊमंग मग्गे॥
दौरि गज अंध चहुआंन केरो।
घेरियं गिरद्दं चिहौ चक्क फेरो॥

शब्दार्थ—करी=करि, हाथी। चीह-चीक्कार=चीत्कार, करते चिंघाड़ते हुए। करि=सूंड़। कलप=कटी हुई। भग्गे=भागने लगे। मंद=मद, हाथियों के कुम्भस्थल से द्रवित होने वाला एक सुगन्धित पदार्थ। तंजियं=तजकर, छोड़ कर। लाजं=लार, लज्जा। ऊमंग=उमंगना, आगे बढ़ना। मग्गे=मार्ग। दौरि=दौड़ना। अंध=अन्धे के समान, उन्मत्त होकर। केरो=का। घेरियं=घेर लिया। गिरद्दं=इर्द गिर्द, धूल। चिहौं=चारों। चक्क=चक्र, दिशा। फेर=फेरा। चक्क फेरो=चारों ओर चक्कर लगाने लगे।

व्याख्या—जब पृथ्वीराज ने हाथियों की सूड़ें काट डालीं तो वे पीड़ा से चिंघाड़ते हुए भागने लगे। वे अपने मद अर्थात् मदोन्मत्तता का त्याग चारों

ओर लार टपकाते हुए जिधर मार्ग मिला उधर ही भागने लगे। चौहान-नरेश पृथ्वीराज का हाथी उन्मत्त होकर इधर-उधर उनका पीछा करने लगा और उसने दौड़ कर उन्हें चारों ओर से घेर लिया। अथवा पृथ्वीराज के हाथी ने उन्हें चारों ओर से चक्कर काट कर घेर लिया और वे उसी घेरे के भीतर चारों ओर चक्कर काटने लगे। अथवा हाथियों के भागने से उड़ी हुई धूल में वे हाथी मार्ग न सूझने के कारण इधर-उधर उसी स्थान पर चक्कर काटने लगे।

टिप्पणी—(१) अलंकार—छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास।

(२) कुछ टीकाकारों ने प्रथम पंक्ति के भिन्न-भिन्न अर्थ किए हैं। जैसे—'हाथियों के समूह चीत्कार करके भागने लगे।' अथवा—'हाथियों ने चीख-चीत्कार की और व्याकुल होकर भागने लगे।' इन अर्थों में 'करि कलप' शब्दों का अर्थ स्पष्ट नहीं हुआ है। हमने 'करि' का अर्थ सूँड़ तथा 'कलप' का 'कटा हुआ' मानकर 'सूँड़ कट जाना' अर्थ माना है।

(३) इसी प्रकार द्वितीय पंक्ति का अर्थ भी विभिन्न टीकाकारों ने भ्रमपूर्ण किया है। जैसे—'मद, लाज और उमंग को छोड़ कर हाथी मार्ग पर भाग खड़े हुए।' अथवा—'वे (हाथी) लज्जा को छोड़कर, मद गिराते हुए मार्ग पर अग्रसर हुए अथवा सूँड़ के कटने से चिंघाड़ते हुए हाथी भागने लगे।' यहाँ 'मद' और 'लाज' के अर्थ भ्रामक हैं। हाथी के मद तब रिसता है जब वह मदोन्मत्त होता है और 'लज्जा' से हाथी का क्या सम्बन्ध हो सकता है, इस पर प्राणिशास्त्र के अधिकारी विद्वान ही प्रकाश डालने में समर्थ हो सकते हैं। अतः हमने यहाँ 'मद' का अर्थ 'मन्दोन्मत्त', 'लाज' का 'लार' लिया है। ये अर्थ स्वीकार कर लेने पर अर्थ को संगति बैठ जाती है। 'ऊमंग' का अर्थ 'मुँह उठा कर बेतहाशा भागना' भी लिया जा सकता है।

(४) इस पद में भयानक रस के अनुभावों का सुन्दर चित्रण हुआ है।

(५) 'गिरद्द' का अर्थ गर्द अथवा धूल भी माना जा सकता है।

(६५)

भुजङ्गी—गिरद्दं उड़ी भाँन अंधार रैनं।

गई सूधि, सुझ्झै नहीं मझ्झि नैनं॥

सिरं नाय कम्मान पृथिराज राजं।
पकरिये साहि जिम कुलिंग बाजं ॥

शब्दार्थ--गिरद्द =गर्द, धूल। भाँन=सूर्य। अंधार=अंधकार। गई=मारी गई। सूधि=ज्ञान, होश हवास, चेतना, सुध-बुध। सुज्झै=सूझता, दिखाई देता। मज्झि=मध्य। नाय=डालकर। कम्मान=धनुष। पकरिये=पकड़ लिया। साहि=बादशाह शहाबुद्दीन गोरी। जिम=जैसे। कुलिंग=गौरैया, एक चिड़िया। बाजं=बाज।

व्याख्या—उस युद्ध में (हाथियों के इधर-उधर भागने से) इतनी धूल उड़ी कि उसने सूर्य को ढक लिया और चारों ओर रात्रि का सा अन्धकार छा गया। अन्धकार छा जाने के कारण लड़ने वालों के होश-हवास जाते रहे और वहाँ युद्धक्षेत्र में क्या हो रहा है यह आँखों से नहीं दिखाई देता था। ऐसे अवसर पर पृथ्वीराज ने बादशाह शहाबुद्दीन गोरी की गर्दन में अपना धनुष डाल कर उसे इस प्रकार पकड़ लिया जैसे बाज झपट्टा मार कर कुलिंग (गौरैया) पक्षी को पकड़ लेता है।

टिप्पणी—(१) अलंकार—छेकानुप्रास, धर्मलुप्तोपमा।

(६६)

भुजङ्गी—लै चल्यौ सिताबी करी फारि फौजं।
परे मीर सै पंच तहँ षेत चौजं।
रजंपुत्त पंचास झुज्झै अमोरं।
बजै जीत के नद्द नीसान घोरं ॥

शब्दार्थ—सिताबी=शिताबी (फारसी शब्द) शीघ्र, तेजी से। करी=हाथी। फारि=चीरता हुआ। सै पंच=पांच सौ। षेत=खेत, रणक्षेत्र। चौजं=चूजे, मुर्गी के बच्चे, चारों तरफ, चुने हुए, मरे हुए। रजंपुत्त=राजपूत। पंचास=पचास। झुज्झै=जूझ गए, मारे गए। अमोरं=अमूल्य, अमुड़, पीठ न दिखाने वाले, अडिग। नद्द=शब्द।

व्याख्या—शहाबुद्दीन को पकड़ कर पृथ्वीराज शत्रु सेना को चीरता हुआ तेजी के साथ अपने हाथी को आगे बढ़ा ले चला। वहाँ रणक्षेत्र में शहाबुद्दीन

की सेना के पाँच सौ मीर (सरदार) मुर्गी के बच्चों की तरह पड़े हुए थे। अथवा चारों तरफ़ बिखरे पड़े थे, अथवा चारों ओर मरे हुए पड़े थे। इस युद्ध में पचास अडिग अथवा अमूल्य राजपूत योद्धा मारे गए। विजय के नगाड़े घोर शब्द के साथ बजने लगे।

टिप्पणी—(१) प्रथम पंक्ति का पाठान्तर इस प्रकार मिलता है—'लै चल्यौ निकसि सब फारि फौजं' अर्थात् पृथ्वीराज गोरी को पकड़ उसकी सारी सेना को चीरता हुआ उसे अपने साथ ले निकल गया।

(२) द्वितीय पंक्ति में आए 'चौजं' शब्द का अर्थ यदि चुने हुए माना जाय तो इसका अर्थ इस प्रकार होगा—वहाँ रणक्षेत्र में पाँच सौ चुने हुए मीर (गोरी के सरदार) पड़े हुए थे।

(३) 'सिताबी' शब्द फारसी का है। इसका तत्सम् रूप है—'शिताबी', जिसका अर्थ है 'तेज'।

(६७)

दूहा—जीति भई प्रथिराज की, पकरि साह लै सङ्ग।
दिल्ली दिसि मारगि लगौ, उतरि घाट गिरि गंग॥

शब्दार्थ—दिसि=दिशा। मारगि=मार्ग, रास्ता। लगौ=लगा, पकड़ा। गिरि गंग=पहाड़ी गंगा। उतरि=उतर कर।

व्याख्या—उस युद्ध में पृथ्वीराज की विजय हुई। उन्होंने बादशाह शहाबुद्दीन को पकड़ कर अपने साथ लिया और पर्वती गंगा को घाट पर से पार कर दिल्ली जाने वाला मार्ग पकड़ा।

टिप्पणी—(१) 'गिरि गंग' के दो अर्थ हो सकते हैं—'पर्वती गंगा', तथा 'पर्वत के पास घाट उतर कर गंगा को पार किया'। समुद्र शिखर पूर्व दिशा में स्थित बताया गया है। कुमोदमणि कुमाऊँ का राजा था। पृथ्वीराज को समुद्रशिखर से लौटते समय किसी पर्वत के पास गंगा को पार कर दिल्ली की ओर बढ़ना पड़ा था या उसे पर्वती गंगा को पार करना पड़ा था। इन दोनों ही अर्थों से यह ध्वनि निकलती है कि वह स्थान या तो हरद्वार के आसपास कहीं होना चाहिए अथवा शिवालिक श्रेणी में कहीं उत्तर की तरफ। हरद्वार

से आगे गंगा कहीं भी न तो किसी पर्वत के पास होकर बहती है और न उसे पर्वती गंगा ही कहा जाता है । अत: समुद्रशिखर कहीं दिल्ली से पूर्व-उत्तर दिशा में हिमालय की तराई में स्थित होना चाहिए । परन्तु इतिहासकार इसे कल्पित नगर मानते हैं । हमारी समझ में पृथ्वीराज का हरद्वार के पास गंगा को पार करना ही अधिक संगत प्रतीत होता है । यहाँ पर्वत भी है और गंगा को पर्वती गंगा भी कहा जा सकता है ।

(२) इस दोहे की भाषा आधुनिक बोलचाल की ब्रजभाषा से बहुत कुछ मिलती हुई है । इसमें प्राचीन भाषा का एक भी लक्षण नहीं मिलता । 'रासो' में यत्र-तत्र बिखरे हुए भाषा के ऐसे रूप उसकी प्रामाणिकता में पर्याप्त सन्देह उत्पन्न कर देते हैं ।

(६८)

दूहा—वर गोरी पद्मावती, गहि गोरी सुरताँन ।
निकट नगर दिल्ली गए, अत्रभुजा[1] चहुआँन ।।

पाठान्तर—१—चत्रभुजा, प्रथिराज, त्रभुजा ।

शब्दार्थ—गोरी=गौरवर्णा, गोरी स्त्री । गहि=पकड़ कर । गोरी सुरताँन=सुलतान शहाबुद्दीन गोरी । अत्रभुजा=अष्टभुजा, दुर्गा । चत्रभुजा=चतुर्भुज, गायत्री रूपधारिणी महाशक्ति, चतुर्भुजनाथ महादेव । त्रभुजा=इसका अर्थ स्पष्ट नहीं है ।

व्याख्या—गौरवर्णा पद्मावती का वरण करके तथा सुल्तान शहाबुद्दीन गोरी को पकड़ कर चौहान-नरेश पृथ्वीराज दिल्ली नगर के निकट अष्टभुजा देवी के मन्दिर पर पहुँचे ।

टिप्पणी—(१) **अलंकार**—यमक, गोरी' शब्द में यमक अलंकार है ।

(२) 'अत्रभुजा' पाठ ही शुद्ध प्रतीत होता है क्योंकि 'चत्र-भुजा', 'त्रभुजा' पाठ किसी निश्चित अर्थ को ध्वनित नहीं करते । सम्भव है कि प्राचीन काल में दिल्ली के निकट अष्टभुजा देवी का कोई मन्दिर रहा हो । और यह प्रथा भी प्रचलित रही हो कि सारे वैवाहिक अनुष्ठान वहीं सम्पन्न होते हों । क्योंकि पृथ्वीराज इस स्थान पर पद्मावती के साथ विवाह कर तब दिल्ली में प्रविष्ट हुए थे ।

(६९)

कवित्त—बलि विप्र सोधे लगन्न, सुध धरी परट्ठिय।
हर बाँसह मंडप बनाय, करि भाँवरि गंठिय॥
ब्रह्म वेद उच्चरहिं, होम चौरी जु प्रत्ति वर।
पद्मावती दुलहिन अनूप, दुल्लह प्रथिराज नर।
डंड्यौ साह साहाबदीं, अट्ठ सहस हय बर सुबर।
दै दाँन माँन षटभेष कौं, चढ़े राज द्रुग्गह हुजर॥

शब्दार्थ—बोलि=बुलाकर। सोधे=शोधी, निकाली। लगन्न=लग्न। सुध=शुद्ध, शुभ। परट्ठिय=प्रतिष्ठित की, निश्चित की। हर=हरे, हरित। बाँसह=बाँस का। गंठिय=ग्रन्थिबन्धन किया, गाँठ जोड़ी। ब्रह्म=ब्राह्मण गण। वेद=वेदमंत्र। उच्चरहिं=उच्चारण करते हैं। चौरी=चौरा, वेदी। जु=जहाँ। प्रत्ति=प्राप्ति। वर=पति। नर=वीर। डंड्यौ=दंडित किया, दंड दिया। साहाबदीं=शहाबुद्दीन। अट्ठ सहस=आठ हजार। हय=घोड़े। वर=श्रेष्ठ। सुबर=सुन्दर। षटभेष=यती, योगी, संन्यासी, जंगम, चारण और ब्राह्मण—इन्हें राजस्थान में षटभेष कहा जाता है अर्थात् छः प्रकार के वेष धारण करने वाले विभिन्न व्यक्ति। माँन=सम्मान। राजद्रुग्गह=राजदुर्ग, राजमहल। हुजर=हुजूर, समक्ष, सामने। यह अरबी शब्द है।

व्याख्या—दिल्ली के निकट अष्टभुजा देवी के मंदिर में पहुँच कर पृथ्वीराज ने ब्राह्मणों को बुलवा कर विवाह की लग्न निकालने के लिए कहा। ब्राह्मणों ने (गणना कर) विवाह की शुभ घड़ी निश्चित की। हरे बाँसों का मंडप बनाया गया और फिर वर-वधू का अर्थात् पृथ्वीराज और पद्मावती का ग्रन्थि बन्धन कर भाँवरें डालीं। होम (यज्ञ) की वेदी के पास, जहाँ वधू को वर की प्राप्ति होती है, ब्राह्मण वेदमंत्रों का उच्चारण कर रहे थे। पद्मावती अनुपम दुल्हिन (वधू) थी और नरश्रेष्ठ पृथ्वीराज दूल्हा (वर) थे। (विवाह कार्य सम्पन्न होने के उपरान्त) पृथ्वीराज ने बादशाह शहाबुद्दीन को यह दंड दिया कि वह उसे आठ हजार श्रेष्ठ सुन्दर घोड़े (दंड स्वरूप) दे। इसके उपरान्त पृथ्वीराज ने षटभेष अर्थात् यती, योगी, संन्यासी, जंगम, चारण और ब्राह्मण आदि

छः प्रकार के व्यक्तियों को दान देकर उनका सम्मान किया और फिर सामने अपने राजदुर्ग के ऊपर चढ़ गए। अर्थात् राजमहल में प्रवेश किया।

टिप्पणी—(१) **अलंकार**—देहरी दीपक, छेकानुप्रास।

(२) पंचम पंक्ति में 'डंड्यौ' के स्थान पर 'मंड्यौ' पाठान्तर मिलता है, जिसका अर्थ है—मंडन किया, प्रसन्न किया। इसके अनुसार इस पंक्ति का अर्थ इस प्रकार होगा—बादशाह शहाबुद्दीन ने आठ हजार सुन्दर तथा श्रेष्ठ घोड़े पृथ्वीराज को देखकर उनको प्रसन्न किया।

(३) इस पद की भाषा इससे पूर्व के दोहों की भाषा से बहुत भिन्न है। इसमें प्राचीन भाषा के लक्षण हैं। एक ही ग्रन्थ में भाषा के ये विविध रूप, जो भाषा-विकास की दृष्टि से स्पष्टतः दो भिन्न कालों की भाषा का प्रतिनिधित्व करते हैं। ग्रन्थ की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न कर देते हैं।

(७०)

कवित्त—चढ़िय राज प्रथिराज, छाँड़ि साहाबदीन सुर।
त्रिपत[1] सूर सामंत, वजत नीसान गजत धुर॥
चंद्रबदनि मृगनयनि, कलस लै सिर सनमुष्ष जष।
कनक थारं अति[2] बनाय, मोतिन बँधाय[3] सुष[4]॥
मंडल मयंक वर नार सब, आनन्द कंठह गाइयब।
ढोरंत चँवर किक्कर करहिं, मुकट सीस तिक जु दियब॥

पाठान्तर—१—त्रिपत, निपत। २—आरति। ३—बनाय। ४—मुख।

शब्दार्थ—सुर=असुर, म्लेच्छ। त्रिपत=तृप्त, सन्तुष्ट। जगत=गर्जन करते हुए, गूँजते हुए। धुर=जोर-जोर से, धरा, पृथ्वी। चन्द्रबदि=चन्द्र-मुखी। कलस=कलश। सनमुष्ष=सन्मुख, सामने। जुष=जोखना, स्वागत करना। अति बनाय=खूब अच्छी तरह से सजा कर। आरति बनाय=आरती सजा कर। बँधाय=बाँध कर अर्थात् भर कर। सुष=सुखपूर्वक। मंडल=घेरा, समूह। मयंक=चन्द्रमा। वर नार=श्रेष्ठ नारियाँ। कंठह=कंठ से।

गाइयव=गाया, गाने लगीं। ढोरंत=डुलाना। किक्कर=किंकर, दास, सेवक। करहिं=हाथ से। तिक=तिलक, टीका। जु=जब। दियत्र= लगाया।

व्याख्या—असुर (म्लेच्छ) शहाबुद्दीन को मुक्त कर राजा पृथ्वीराज दुर्ग के ऊपर चढ़ गए। यह देख कर उनके सम्पूर्ण योद्धा एवं सामन्त पूर्ण सन्तुष्ट हुए। भाव यह है कि पृथ्वीराज को सकुशल दिल्ली गढ़ में प्रवेश करते हुए देख कर उनके समस्त योद्धाओं एवं सामन्तों को पूर्ण सन्तोष प्राप्त हुआ। चारों ओर पृथ्वी को कंपा देने वाले नगाड़े बज उठे। अथवा घोर गर्जन करते हुए नगाड़े बजने लगे। चन्द्रमुखी, मृगनयनी नारियाँ अपने सिर पर कलश रख कर पृथ्वीराज का स्वागत करने के लिए उन के सम्मुख आईं। उन्होंने स्वर्ण थाल को खूब अच्छी तरह से सजाया और सुखपूर्वक उसमें मोती भरे। अथवा उन्होंने स्वर्ण थाल में आरती सजाई और उसमें सुखपूर्वक मोती भरे। चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाली समस्त श्रेष्ठ नारियाँ समूह बाँध कर अर्थात् पृथ्वी-राज के चारों ओर घेरा बाँध कर आनन्दित कंठ से स्वागत के मंगलगीत गाने लगीं। जब पृथ्वीराज के शीश पर मुकुट पहनाया गया और मस्तक पर तिलक लगाया गया तब सेवकगण उनके ऊपर चँवर डुलाने लगे।

टिप्पणी – (१) **अलंकार**—वाचक धर्म लुप्तोपमा, छेकानुप्रास, रूपक।

(२) द्वितीय पंक्ति में 'न्रिपत' तथा 'निपत' पाठान्तर भी मिलते हैं। 'न्रिपति' का अर्थ है 'राजा'। अर्थात् राजा, योद्धा एवं सामन्त। परन्तु यहाँ 'त्रिपत' पाठ ही अधिक संगत एवं शुद्ध प्रतीत होता है। यदि 'निपत' पाठ को स्वीकार किया जाय तो अर्थ भिन्न हो जाता है। 'निपत'=नि+पत अर्थात् कान्तिहीन, मलीन। भाव यह है कि जब पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन को मुक्त कर दिया तो भावी संकट की आशंका कर उनके शूरवीर एवं सामन्तों का मुख मलीन होगया। अर्थात् उन्हें पृथ्वीराज का यह काम अच्छा नहीं लगा।

(३) चतुर्थ पंक्ति में 'अति' के स्थान पर 'आरति' पाठ ही अधिक शुद्ध प्रतीत होता है क्योंकि स्वर्ण थाल में आरती सजाने का उल्लेख पहले भी आ चुका है। इसी पंक्ति के उत्तरार्द्ध में 'बनाय' तथा 'भुष' पाठान्तर मिलते हैं।

इनके अनुसार इसका अर्थ इस प्रकार होगा—स्वर्ण के थाल में, जिसका मुख अर्थात् अग्रभाग मोतियों से सजाया गया था, आरती सजाई। यदि 'वँधाय' के स्थान पर 'बधाय' पाठ माना जाय तो अर्थ होगा—स्वर्ण के थाल में आरती सजाई तथा मोतियों से वधावा दिया अर्थात् मोती न्यौछावर कर पृथ्वीराज को वधाई दी।

(७१)

दूहा—चढ़े राज द्रुग्गह न्रिपति, सुमत राज प्रथिराज।
अति अनंद आनंद सैं, हिंदुवाँन सिरताज॥

शब्दार्थ—न्रिपति=नृपति, राजा। सुमत=बुद्धिमान, ज्ञानी। अनंद=आनन्दित होकर। आनन्द=हर्ष। सिरताज=शिरोमणि।

व्याख्या—हिन्दुओं में शिरोमणि, बुद्धिमान राजा पृथ्वीराज अत्यन्त आनन्दित होकर हर्ष के साथ दुर्ग के ऊपर चढ़ गए।

टिप्पणी—(१) अलंकार—अनुप्रास।

X:o:X

Mr. RAJ KRISHEN KOUL.
+ GANGOO.
KASHMIR UNIVERSITY.
oh God give us
SUCCESS or DEATH.
GOD HELPS THOSE WHO
HELP THEMSELVES.

BOMBAY, April 2 (UNI).

Holders Punjab Police from Jullundur today bowed out of the Bombay Gold Cup Hockey Tournament losing in the tie-breaker 3-4 to another Jullundur side, Signals, in thhe quarter-finals. Bombay's Tata Sports Club stroked out Jullundur's Army Supply Crops 4-3 in another quarter-final match.

Punjab Police were lucky to earn the tie-breaker as, after trailing for the major part in the second half, they managed to secure the equaliser just three minutes before the final whistle.

The Jullundur policemen dominated play most of the time, especially in a speedy second half but gritty Signals held on to their lead. The first half, played at a leisurely pace, hardly provided anything noteworthy, except for two attempts by the holders. Immediately after the bully-off, left-winger Bhajan Singh, taking a pass from centre-forward Gurdeep Singh, dashed through the defence but lost control over the ball after he had beaten the entire defense. In the eight minute, inside-left Gurjit Singh moved into the circle but his attempt to score was foiled by Signals' goalkeeper Ramesh.

After the interval, Signals took the lead within three minutes when a free hit by right-winger Tiwari had left-winger Tigga rushing in and tapping into the goal.

The goal inspired the holders to speed up the game and attack more vigorously and the Gurdeep-Gurjit combination posed many a threat but a crowded defense and some bad shooting by the Punjab forwards saw all their dangerous moves thwarted.

With just three minutes left for the final whistle, Punjab Police found the elusive goal through left-half Prithpal Singh whose stinging shot from top of the circle sounded the boards.

In the tie-breaker, Tiwari, Kongori and Balwant Singh scored for the winners, while for Punjab Police only Gurjit and Gurdeep scored as Signals' goalkeeper Ramesh diving to the right saved